दृष्टान्त-सागर

प्रथम भाग



प्रकाशक—
श्यामलाल वर्मा

॥ ओ३म् ॥

दृष्टान्त-सागर

प्रथम भाग ।



जिसको

श्रीमान् पं० हनुमानप्रसादजी शर्म्मा

अवैतनिक उपदेशक, शिवली

ज़िला कानपुर ने रचा

और

महाशय श्यामलालजी वर्म्मा

आर्य्य बुकसेलर, बरेली

ने

लखनऊ-निवासी

श्रीमान् पं० चान्द्रिकाप्रसादजी गुप्त

से शुद्ध कराकर प्रकाशित किया ।



षष्टमावृत्ति १००० प्रति | सन् १९२५ ई० | मूल्य १।=)

विषय-सूची ।

—— ०:○:० ——

॥ ओ३म् ॥

दृष्टान्त-सागर।

प्रथम भाग।

❀ मङ्गलाचरण ❀

विश्वानि देवन देव जग-करतार नाथ गुणागरम्।
दुर्गुण दुर्व्यसन पाप अरु सन्ताप दुख सब भंजनम्॥
कल्याणकारी वस्तु गुण कर्मादि साधन दायकम्।
स्व प्रकाशरूप प्रकाशयुत सूर्यादि ग्रह सब साधकम्॥
प्रभु जगत के उत्पन्न होने पूर्वमपि थे उपस्थितम्।
हो आत्मज्ञान शरीर आदिक शक्ति के दाता परम्॥
तुव ध्यान धरते योगि ज्ञानी देव ऋषि मुनि आदिकम्।
पावें परमपद मोक्ष जो है जन्म-मरण-विनाशकम्॥
इस दास को निज भक्त जानि कृपा करो करुणाकरम्।
सब दुःख दारिद दूरि कर राखो शरण शरणागतम्॥

१—ईश्वर-विश्वास।

परमात्मा पर सच्चा प्रेम रखते हुये जो मनुष्य उन पर सच्चा विश्वास रखता है और पुरुषार्थ करता है उसकी सम्पूर्ण अभिलाषाओं को परमेश्वर पूर्ण करते हैं। यथा—

एक अनाथ बेवा स्त्री अत्यन्त ही दीन और धर्मज्ञ थी। उसके दो बालक थे—एक ६ वर्ष का, दूसरा ८ वर्ष का। बेचारी बेवा दीनता के कारण दूसरे पुरुषों की सेवा, पीसना कूटना करके अपने लड़कों का पालन पोषण किया करती थी, परन्तु बच्चों को नित्य दूध बताशे तथा उत्तम भोजन खिलाया करती थी और उसने उनके पढ़ने आदि का पूर्ण प्रबन्ध तथा पढ़ने के व्यय का भार भी उठा रक्खा था, और अपना निर्वाह केवल सूखी रोटियों से करती थी। और किसी-किसी दिन वह भी पेट भर नहीं मिलती थी। बच्चे बड़े धर्मात्मा और सुशील थे। नित्य जिस समय वे पाठशाले से पाठ पढ़कर आते थे तो आते ही माता से दूध बताशे माँगते थे। एक दिन ऐसा अवसर आया कि माता को कहीं काम न लगने के कारण कुछ न मिला और बच्चों ने पाठशाला से आते ही नित्य की भाँति माता से दूध बताशे मांगे। माता ने उत्तर दिया कि-"बेटा, आज तो मेरे पास कुछ नहीं, आज तो तुम्हें परमेश्वर ही दूध बताशे देगा तो पाओगे, नहीं तो मेरा कोई उपाय नहीं।" बच्चों ने पूछा- "माता, परमेश्वर कौन है ?" माता ने कहा-"बेटा, वह सबका पिता, सबका पालन पोषण करनेहारा है।" यह सुनकर बच्चों ने कहा-" तो माता, वह हमें दूध बताशे देगा ?" माता ने कहा-" अवश्य।" अब तो बच्चों के हृदय में सच्चा विश्वास हो गया कि माता ही दूध बताशे देनेवाली नहीं किन्तु माता के इतर और दूसरा परमेश्वर भी देनेवाला है। बच्चों ने पुनः माता से पूछा कि-" माता, वह परमेश्वर कहां रहता है ?" माता ने साधारण ही ऊपर को अँगुली उठादी बच्चे चुपचाप पुस्तक उठाकर पाठशाला को चल दिये और मार्ग में परस्पर दोनों भाई यह सम्मति करते जाते थे-" भाई, उस परमेश्वर तक ऊपर कैसे चलें कि जो उससे दूध बताशे मांगें?" दूसरे

ने कहा-" भाई, ऊपर पहुंचना तो कठिन है परन्तु हमने एक बात सोची है कि परमेश्वर को हम तुम दोनों एक चिट्ठी लिखें और पंडित जी से छुट्टी मांग, चलकर डाक में डाल आवें।" पहले ने कहा-" यह बहुत ही ठीक है।" दोनों पाठशाला पहुंच पत्र लिखने लगे—

पत्र।

पिता परमात्मा! आप सबके पालन पोषण करनेहारे हो, हम दोनों भाई आपको नमस्कार करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि आध सेर दूध और एक छटाँक बताशे हम दोनों भाइयों को कृपा कर नित्य भेज दिया कीजिये, हम आप के बच्चे हैं, हमें आपने बनाया है, इस से हमारा पालन भी कीजिये। अस्तु

आपके सेवक,

दो बच्चे, जिनको आप जानते हैं।

चिट्ठी का सिरनामा यानी पता यह था—

चिट्ठी पहुँचे पिता परमात्मा के पास—

बच्चे पंडितजी से छुट्टी मांग पोस्टआफ़िस में चिट्ठी डालने गये। डाकबाबू से पूछा-"बाबूजी, यह चिट्ठी कहां डालें?" बाबू ने कहा-"उस लेटरबक्स में डालदो।" लड़कों का शरीर छोटा था और लेटरबाक्स ऊँचे पर गड़ा हुआ था। बच्चे ऊपर को उछल उछल कर चिट्ठी डालते थे परन्तु वे उसे लेटरबाक्स में न डाल सके। बाबू ने लड़कों को देखकर कहा "लाओ, हम तुम्हारी चिट्ठी डाल देंगे।" बच्चों ने चिट्ठी देदी। बाबू पत्र हाथ में ले पता पढ़कर अत्यन्त ही चकित हुआ और उसने बच्चों की ओर देखा। बच्चे सारे दिन के भूखे मलीन मुख अति दुखित थे। बाबू ने कहा-"तुम किसके बेटे हो, यह चिट्ठी किसने लिखी है?" बच्चों

ने कहा-"हम अमुक बेवा के लड़के हैं। हम घर में नित्य दूध बताशे पाते थे, आज हम दोनों घर गये और माता से दूध बताशे माँगे तो माता ने कहा-'बेटा, आज तो तुम्हें परमेश्वर ही दूध बताशे देगा तो मिलेंगे नहीं तो मेरे पास नहीं ।' हम दोनों ने आज कुछ भोजन भी नहीं खाया और घर से भूखे ही पाठशाला को चल दिये और पाठशाला में आकर हम दोनों ने पिता परमात्मा को यह पत्र लिखा है, सो डालने आये थे ।"

बाबू—तुम जानते हो परमेश्वर कहां है ?

बच्चे—माता ने बताया है कि ऊपर है ।

बाबू—क्या हम तुम्हारे इस पत्र को खोल कर पढ़ें ?

बच्चे—हाँ बाबूजी, पढ़ लीजिये ।

बाबू ने पत्र खोलकर पढ़ा और बच्चों को दुखी देखकर कहा कि "तुम दोनों नित्य आध सेर दूध और एक छटांक बताशे हम से ले जाया करो ।"

वृत्त्यर्थं नाति चेष्टेत सा हि धात्रैव निर्मिता ।
गर्भादुत्पतितो जातौ मातुः प्रस्रवतस्तनौ ॥

२—झूठे आडम्बर में सच्चा ध्यान ।

एक कुम्हार का युवा लड़का एक राजा के यहां पात्र देने गया । वहां राजा की युवती मनमोहनी राजपुत्री को छत पर देख वह चकित होगया और उसके हृदय में इस प्रकार काम-बाण लगे कि घर आकर वह उस मोहनी के शोक में व्याकुल हो लेट रहा और खान पान सभी भुलाकर केवल उस सुन्दरी के ध्यान में हाय-हाय करने लगा । उसके घर के सम्पूर्ण लोगों ने उसे

पूछा कि—"तुम्हारी क्या दशा है, तुमको क्या हो गया, क्या कुछ रोग है ?" परन्तु युवक ने किसी से कुछ न कहा। थोड़ी देर के बाद उसकी माता ने उससे पूछा तो उसने अपनी माता से सच्चा-सच्चा वृत्तान्त कह सुनाया कि—"मैं आज राजा के यहाँ पात्र देने गया था, वहाँ राजपुत्री को देख मेरी यह दशा हो गई, सो चाहे मेरे प्राण चले जायँ परन्तु जब तक मुझे उस राजपुत्री के पुनः दर्शन न मिलेंगे तब तक भोजन न करूँगा।" माता ने कहा—"उठो, आज भोजन करो। आज से ६ मास के पश्चात मैं तुमको राजपुत्री का दर्शन करा दूँगी।"

भोजन करने के पश्चात उसकी माता ने कहा कि—"तुम यहाँ से कहीं ६ मास के लिये चले जाओ और ६ महीने बाद जब आना तो साधू का भेष रखकर आना और आकर राजा की फुलवारी में ठहरना, तुम्हें राजपुत्री के दर्शन होजायँगे।" कुम्हार के बच्चे ने वैसा ही किया। जब ६ महीने के पश्चात् राजा की बाटिका में साधू आया तो उसने एक मनुष्य के द्वारा अपनी माता को बुलवाकर कहा कि—"अब राजपुत्री के दर्शन कराओ।" माता ने कहा—"तुम आँखें बन्द करके ध्यान से बैठ जाओ, मैं अभी तुम्हें दर्शन कराती हूँ।" उस कुम्हार की माता ने गाँव भर में यह हल्ला कर दिया कि—"एक बड़े पहुंचे हुए महात्मा आये हैं और उनसे जो माँगो सो देते है।" यह सुन ग्राम के सम्पूर्ण नर नारी जाने लगे। यह बात राजा तथा राज-महलों में भी पहुंची। राजा अपनी रानी तथा राजपुत्री-सहित महात्मा के दर्शनों को गये। ज्यों ही राजा, रानी और राजपुत्री इसके सामने पहुंचे तो कुम्हार की माता ने पीछे से संकेत में कहा कि—"बेटा, राजा रानी और राजपुत्री आगे खड़ी हैं अब दर्शन कर लो।"

कुम्हार के लड़के ने सोचा कि आज जब कि मैं झूठा साधु महात्मा बना हुआ हूं तब तो मेरे आगे तमाम गाँव के नर नारी तथा राजा, रानी और राजपुत्री खड़ी हैं और यदि मैं सच्चा साधु महात्मा बन जाऊँ तो न जाने मुझे क्या-क्या फल प्राप्त होंगे? ऐसा सोचकर कुम्हार के लड़के ने पुनः ध्यान से आंखें न खोलीं और सम्पूर्ण आयु के लिये वह परमात्मा का सच्चा भक्त बन गया।

असतो मा सद्गमय तमसोमां,
ज्योतिर्गमय मृत्योर्मा अमृतंगमयेति ।

३—जा पर जेहि कर सत्य सनेहू ।
सो तेहि मिलै न कछु सन्देहू ॥

यो समर्थं प्रार्थयते यमर्थं घटते त्रयः ।
सोऽवश्यं तमवाप्नोति न चेच्छ्रान्तो निवर्त्तते ॥

एक राजा के बहुत-सी रानियां थीं। राजाजी किसी कार्य्य वश विदेश को गये। यहां उन्हें बहुत समय तक रहना पड़ा। रानियों ने सुना कि राजा जिस देश में हैं वहां की अमुक अमुक वस्तुयें अच्छी होतीहैं। ऐसा सुन किसी रानी ने महाराज को लिखा कि वहां की कंठश्री बहुत अच्छी होती है, आप हमारे लिये अवश्य लायें। किसी ने लिखा कि वहां की पँचलर बहुत अच्छी होती है, आप अवश्य लायें। किसी ने लिखा वहां की फुलवर बहुत अच्छी होती हैं. आप अवश्य लायें। इस प्रकार सम्पूर्ण रानियोंने नाना प्रकार की वस्तुयें लिखीं, पर एक रानी ने यह लिखा कि—"मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं

मुझे तो बहुत काल से आपके दर्शन नहीं मिले, आपके दर्शनों की आवश्यकता है सो दासी को आ कृतार्थ कीजिये।" राजा ने सम्पूर्ण रानियों के पत्र पढ़े और उनकी याचनाओं के अनुसार भृत्यों से वस्तुयें मँगवाईं और अपनी इच्छानुसार भी जो चाहा वह मँगवाया। घर आतेही उन्होंने सम्पूर्ण रानियों के प्रार्थनापत्र खोले और जिसने जो वस्तु मांगी थी उसको वह वस्तु दी। शेष वस्तुओं को, जिन्हें राजाजी अपनी इच्छानुसार लाये थे, लेकर उस रानी के गृह में गये जिसने लिखा था कि मैं केवल आपको चाहती हूँ। यह देख अन्य रानियों ने बहुत कुछ ईर्षा की और सबने महाराजा से कहा कि—"महाराज, हम लोगों ने क्या अपराध किया था, जो आप हमारे यहाँ नहीं आये और हमको क्यों एक ही एक वस्तु दी गई? इस रानी को आपने क्यों बहुत सी वस्तुयें दीं?" महाराज ने उत्तर दिया—"तुम अपने अपने प्रार्थनापत्र देखो. तुम ने जिसे चाहा वह तुम्हें मिला; और इस रानी का प्रार्थनापत्र देखो, इसने जिसे चाहा वह इसे मिला।"

बस इसी प्रकार संसार में जो मनुष्य जिस वस्तु की उपासना करता है उसको परमेश्वर वही वस्तु देता है—अर्थात रुपये की उपासना करने वाले को रुपया, स्त्री की उपासनावाले को स्त्री, मिट्टी की उपासनावाले को मिट्टी, जल की उपासनावाले को जल, पत्थर की उपासनावाले को पत्थर; किन्तु परमात्मा के उपासक को परमात्मा और परमात्मा के सम्पूर्ण पदार्थ प्राप्त होते हैं। इसलिये, वस्तुओं की उपासना छोड़ परमात्मा की उपासना कीजिये।

—— :o:——

४—ईश्वर जो कुछ करता है अच्छा ही करता है ।

एक राजा के मन्त्री का यह सच्चा विश्वास था कि ईश्वर जो कुछ करता है अच्छा ही करता है । एक बार राजा औ॰ मन्त्रीजी आखेट के लिये किसी भयानक बन में पहुंचे । वहाँ सिंह पर शस्त्र प्रहार करने से राजा की एक अँगुली कट गई । राजा ने मन्त्री से कहा—" मन्त्रीजी, हमारी अँगुली शस्त्र से कट गई । " मन्त्री ने कहा —" परमेश्वर जो कुछ करता है, अच्छा ही करता है । " राजा यह बात सुन बहुत अप्रसन्न हुये और उन्हों ने कहा कि—"हमारी तो अँगुली कट गई और तू यह कहता है कि परमेश्वर जो कुछ करता है अच्छा ही करता है ।" यह कहकर मन्त्री को उसी समय निकाल दिया । मन्त्री बन से अपने घर लौट गया । राजा एक दिन आखेट खेलते-खेलते एक दूसरे राज्य में पहुंचे । वहां के राजा को बलिप्रदान के लिये एक मनुष्य की आवश्यकता थी । *दूत इन राजाजी को पकड़ ले गये । जब वहाँ के पंडितों ने इन राजाजी को देखा तो इनकी अँगुली कटी हुई पाई । पंडितों ने कहा—"यह तो मनुष्य अङ्ग भङ्ग है । अङ्ग भङ्ग की बलि नहीं दी जाती ।" अतः राजाजी छोड़ दिये गए और प्राण लेकर वे अपने घर को चले । मार्ग में राजा ने सोचा कि मंत्री सच कहता था कि—ईश्वर जो कुछ करता है अच्छा ही करता है ।" यदि मेरी अँगुली आज कट न गई होती तो मेरा बलिप्रदान कर दिया जाता ।

घर आते ही उसने मंत्री को बुलवाया । मंत्री डरते-डरते कि राजा न जाने मुझे क्या करेंगे, राज-सभा में आये और प्रणाम कर बैठ गये । तब राजा ने मन्त्री से कहा—"मन्त्री, तुम्हारा यह

* कुछ समय पहले मूर्ख और नीच लोगों में यह परिपाटी था ।

कहना नितान्त सत्य है कि ईश्वर जो कुछ करता है अच्छा ही करता है, क्योंकि जब हमने वन से आपको निकाल दिया तो हम आखेट खेलते खेलते एक राज्य में पहुंचे। वहाँ के राजा को बलिप्रदान के लिए एक मनुष्य की आवश्यकता थी। इससे उसके दूत मुझे पकड़ ले गये। पर मेरी अँगुली कटी होने से वहां के पण्डितों ने मुझे अङ्ग भङ्ग जान छोड़ दिया। मेरी अंगुली कटने से तो ईश्वर ने अच्छा यह किया कि मेरे प्राण बचे, पर आपको जो मैंने निकाल दिया और इतने दिन तक नौकरी से पृथक किया तो आपके लिए ईश्वरने क्या अच्छा किया ?" मन्त्री ने कहा—"महाराज, यदि आप मुझे न निकाल देते और मैं आपके साथ रहता तो आप तो वहां अङ्ग भङ्ग होने के कारण बलिप्रदान से बच आये, पर मैं अङ्ग भङ्ग न होने से बलिप्रदान से कभी न बचता।

५—ईश्वर हमारा सुख देख न सका।

एक सिपाहीराम २० वर्ष नौकरी करके घर आरहे थे। घर के लिए एक कच्चे रंग की चुनरी अपनी स्त्री के लिए और कच्चे ही रंग के खिलौने अपने लड़कों के लिए और कुछ बताशे भी ला रहे थे। पर मार्ग में वर्षा होने लगी, इससे सिपाहीराम की चुनरी और खिलौनों का रंग छूट२ कर बहने लगा और बताशे सब पानी में घुल गये। यह दशा देख सिपाहीराम ने कहा— "ससुरो अब हीं सरग करिबे की रहै। हाय! २० वर्षके बादतो एक कच्ची चुनरी, खिलौने और कुछ बताशे बच्चों को लाये वह भी परमेश्वरसे देखा न गया।" थोड़ेही दूर वे चले थे कि क्या देखते हैं कि एक नाले में दो डाकू बैठे हैं और वे इन पर बंदूक

की गोली चला रहे हैं। पर बन्दूक़ टोपीदार है और पानी हो
के कारण बन्दूक़ रंजक खा गई, गोली नहीं चलती। तब त
कहते हैं—"धन्य हो परमात्मा, यदि इस समय वर्षा न होत
तो हमारे प्राण ही जाते और हम अपने बाल बच्चों का मुख म
न देख पाते। यह चुनरी खिलौना यहीं पड़े रहते। अब इ
विपत्ति से छुटकारा मिले तो मैं सकुशल अपने घर पहुंच क
बाल-बच्चों से मिलूंगा। इसलिए, हे भगवन्! मैंने अज्ञानता
आपको जोकुछ कहा हो, उस अपराध को आप क्षमा कीजिये।

स एव धन्यो विपदि स्वरूपं यो न मुञ्चति।
त्यजत्य र्ककरैस्तप्तं हिमदेहं न शान्तिताम्॥

६—मुख्य कोष की प्राप्ति।

एक बेचारे महा दरिद्री पुरुष ने द्रव्य की अभिलाषा
चारों ओर बड़े-बड़े नीच ऊंच दुर्गम से दुर्गम स्थानों में टक्करें
मारीं पर उसे एक कौड़ी भी कहीं प्राप्त न हुई। वह महान
क्लेशित और निराश हो घर की ओर लौटा आ रहा था।
अनायास मार्ग में एक महात्मा से भेट हो गई। उस दीन पुरुष
ने महात्माजी को प्रणाम किया और महात्माजी के पूछने पर
सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। महात्माजी ने उस दीन की दशा
देखकर कहा कि—"तू इस मन्दिर को जो सामने गिरा पड़ा
है एक कुदारी और एक तलवार ले, कुदारी से मन्दिर को
खोद और तलवार से जो तेरे इस कार्य में बाधक हों उनको
बध करता जा, अन्त में तुझे एक बड़ा भारी कोष प्राप्त होगा।
दीन पुरुषने कुदारी और तलवार ले मंदिर को खोदना आरम्भ
किया। थोड़ा ही खोदा था कि उसमें से एक स्त्री निकली

जिसको देख दीन ने पूछा—"तू कौन है और कहाँ रहती है?" स्त्री ने उत्तर दिया कि—"मैं ब्राह्मणी हूँ और मेरा नाम लज्जा है और नेत्रशाला में रहती हूँ।" यह सुन दीन ने कहा कि—"तू पृथक् बैठ।" और पुनः खोदने लगा। थोड़ी ही देर के पश्चात् एक और स्त्री निकली। उससे भी दीन ने प्रश्न किया कि—"तू कौन है और तेरा क्या नाम तथा कहाँ रहती है?" स्त्री ने उत्तर दिया—'मैं ब्राह्मणी हूँ, मेरा नाम दया है और द्वारपुर में रहती हूँ।" उससे भी कहा—"तू पृथक् बैठ।" ऐसा कहकर दीन पुनः अपनी राम धुन में लग गया। कुछ ही खोदने के पश्चात् एक तीसरी स्त्री निकली दीन ने उससे भी वैसे ही प्रश्न किये। स्त्री ने उत्तर दिया कि—'मैं ब्राह्मणी हूँ, मेरा नाम कीर्ति है और मैं अन्तःपुर की निवासिनी हूँ।" दीन उसे भी पृथक बैठा अपना कार्य्य करने लगा। कुछ ही काल के पश्चात् एक और चौथी स्त्री निकली। दीन ने उससे भी उसी भाँति पूछा। स्त्री ने उत्तर दिया कि—"मैं ब्राह्मणी हूं मेरा नाम धृती है और मैं मनुआंपुर की निवासिनी हूँ।" इसे भी दीन ने अलग बिठा खोदना आरम्भ किया, परन्तु उस बीमारी ने पीछा न छोड़ा और अबकी स्त्री के स्थान में एक बिल्लड़दास हाथ पैर मारते हुये निकले। दीन ने प्रश्न किया कि "आप रूप कौन हैं, कहाँ आपका निवास है?" पुरुष ने उत्तर दिया—"मेरी जात पांति का तो कुछ ठीक नहीं परन्तु हाँ मेरा नाम काम है और मैं नेत्रशाला का बासी हूं।" दीन ने कहा—"वहां तो एक स्त्री, जिसका नाम लज्जा है, रहती है।" काम ने कहा कि—"वह तो मेरी स्त्री ही है।" तब तो दीन ने कहा—"रे दुष्ट जहां लज्जा है वहां तेरा क्या काम?" ऐसा कह शीघ्र तलवार के द्वारा उसका सिर धड़ से अलग किया और पुनः कुदारी ले खोदने लगा। कुछ ही काल में एक मुस्टण्डराम लाल आँखें

किये होंठ फरफराते हुये निकले। दीन ने यह भयंकर मू
देखकर इससे भी वही प्रश्न किया। इन्होंने कहा हम जा
के चाण्डाल और हमारा नाम क्रोध और द्वारपुर के वासी
दीन ने कहा कि—"वहाँ तो एक स्त्री जिसका नाम दया
बसती है।" क्रोध ने कहा कि—"वह तो मेरी स्त्री ही है
तब तो दीन ने कहा कि—"रे दुष्ट, जहाँ दया रहती है व
तेरा क्या काम?" ऐसा कह इन्हें भी तलवार की धार से अल
किया और पुनः खोदना आरम्भ किया। कुछ ही खोदने के ब
एक और धिङ्गनाथ चकमक देखते हुये आ बिराजे। दीन
इनको भी देख वही अपना पुराना प्रश्न किया। धिङ्गनाथजी
उत्तर दिया कि—"हम जाति के वैश्य हैं और हमारा ना
लोभ है तथा हम अन्तःपुर के वासी हैं।" यह सुन दीन
कहा कि—"वहाँ तो एक स्त्री कि जिसका नाम कीर्ति है र
करती है।" लोभ ने कहा कि—"वह तो मेरी स्त्री ही है
तब तो दीन ने कहा कि—"ऐ नीच! जहाँ कीर्ति है, वहाँ ते
क्या काम?" ऐसा कह तलवार से इन्हें भी मौत के समर्प
किया और फिर खोदना प्रारम्भ किया कि थोड़ी ही देर में ए
बुद्धू और निकल खड़े हुये। उन्हें भी देख दीन ने पूर्ववत् प्रश्न
किये। बुद्धू ने उत्तर दिया कि—"मैं जाति का भिल्ल और मे
नाम मोह और मनुआँपुर का वासी हूँ।" यह सुन दीन
कहा कि—"वहाँ तो एक स्त्री जिसका नाम धृती है रहती है।
मोह ने कहा कि—वह तो मेरी स्त्री है तब तो दीन ने कहा—
"रे मूर्ख, जहाँ धृती है वहाँ तेरा क्या काम?" ऐसा कह इन
भी तलवार से उड़ाकर वह सोचने लगा कि—"ये स्त्रियाँ क्या
मेरा साथ देंगी? इन से भी कार्य में हानि ही दीखती है।
कभी-कभी इनकी ओर देखने लगता हूँ और यह भी कि एक
स्त्री से आपत्ति होती है फिर चार-चार कौन निबाहेगा

ऐसा सोच समझ उसने कहा कि—"लज्जा भी कभी-कभी पाप करा देता है यथा सम्बन्धियों के भय से बरातों में नाच इत्यादि ले जाना; और कीर्त्ति भी दोष उत्पन्न कर देती है; तथा दया भी कभी-कभी अधर्म तथा बन्धन का हेतु बन जाती है यथा—

असाधन्तनु चिन्तनं बन्धय भरतवत्।

इसलिए इन तीनों को तलवार से मार धृती को अपने साथ ले वह फिर खोदने लगा। अब आगे एक अत्यंत ही कठिन वज्रवत् शिला आ पड़ी। किंतु उसे वह धृती के साथ खोदने लगा। कुछ काल के बाद वह शिला लौट गई और उसे एक महान् कोष प्राप्त हुआ जिसे पा, घर आ वह अपने जीवन को आनन्द पूर्वक व्यतीत करने लगा।

यह तो हुआ दृष्टान्त, पर इसका दार्ष्टान्त यों है कि यह दीनरूप विवेकाश्रमजी मोक्षरूपी मुख्य कोष की प्राप्ति के लिए यत्र-तत्र भटकते हुए पूर्णयोगी से मिले योगी ने इनसे कहा-" तुम इधर-उधर व्यर्थ परिश्रम क्यों करते हो? तुम इस शरीररूप मन्दिर को ही ज्ञानरूपी कुदार और वैराग्यरूपी तलवार ले खोदना प्रारम्भ करो और तुम्हारे इस कार्य में बाधा डालनेवाले जो शत्रु मिलें उनको वैराग्यरूपी तलवार से काटते हुए अपने कार्य-साधन में लगे रहना।" ऐसा सुन विवेकाश्रमजी इधर उधर भटकना छोड़ ज्ञानमयी कुदार ले आत्मा में ही परमात्मा की प्राप्ति का यत्न करने लगे। जब उस यत्न में इनको काम क्रोध, लोभ, मोह आदि ने सताया तब इन्होंने उन चारों को वैराग्यरूपी तलवार से काट डाला। अब आगे विवेकाश्रमजी को लज्जा, कीर्त्ति, दया आदि ने भी आ घेरा तब तो इन्हों ने लज्जा, दया, कीर्त्ति इन तीनों से हानि समझ इन्हें भी उसी वैराग्यरूपी तलवार से काट केवल धृती को साथ लेकर जो आग अहङ्काररूपी वज्रवत् शिला

जमी हुई थी उसको ज्ञानरूपी कुदार से काटना प्रारम्भ किया क्योंकि इसी शिला के बाद वह ब्रह्मरूप कोष है जिसके लिए मुण्डक में कहा है—

हिरण्यमये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्म विदोविदुः॥

अर्थ—चमकीले पदार्थों के परे अहङ्काररूपी शिला के नीचे भीतरी हृदय कोष अविद्यादि दोषों से रहित निरवयव वह शुद्ध ब्रह्म ज्योतियों का भी ज्योति विद्वानों के जानने योग्य है, उसे विद्वान जान सकते हैं। पुन विवेकाश्रमजी शिला कट जाने पर मुण्डकयानुसार ब्रह्मानन्द रूपी मुख्यकोष प्राप्तकर मोक्ष सुख में आनन्द करने लगे। इससे आप लोग भी विवेकाश्रम की भाँति हृदय रूपी मंदिर में ही परमेश्वर को प्राप्तकीजिये। देखिये, एक भाषा के कवि ने क्या ही अच्छा कहा है—

व्यापक ब्रह्म सदा सब ठौर।
व्यर्थ चार धामों की दौर॥
देखु न कस हृद नैन उघारि।
कनियाँ लड़िका गाँवगोहारि॥

तथापि—" हिरण्यरूप निधि निहितं अक्षेत्रज्ञा उपरि संचरन्तो न विन्देयुः श्वमेव इमाः सर्वाः पूजाः अहर अहर मच्छन्त्य हृताः एवं ब्रह्मलोकं न विदन्ति अनृते नहि।" छा० उ०

———

७–धर्म के सिवा और हमारा संसार में दूसरा साथी नहीं

एक साहूकार का लड़का बड़ा दुराचारी था। एक दिन उसकी पतङ्ग टूटकर उड़ते-उड़ते एक महात्मा के पास एक बन में जा गिरी। वह साहूकार का लड़का पतङ्ग के पीछे महात्माजी के पास पहुँचा और महात्माजी को देख पतङ्ग भूल महात्माजी के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। कुछ काल में जब महात्मा जी ने ध्यान से नेत्र खोले तो इसकी ओर उनकी दृष्टि पड़ी। इसे हाथ जोड़े देख महात्मा ने पूछा कि—"बच्चा, तुम कौन हो, यहाँ कहाँ आये ?" महात्मा को देख साहूकार के बेटे के हृदय में कुछ श्रद्धा उत्पन्न हो गई और उसने सम्पूर्ण सच्चा-सच्चा वृत्तान्त कह दिया और अन्त में नेत्रों में जल भर के गद्-गद् हो बोला कि—"महाराज, मुझे कोई ऐसा उपाय बतलाइये कि जिस में इन सम्पूर्ण कुकर्मों से बच सतकर्मों का अनुष्ठान करूँ।" महात्मा ने कहा—"बच्चा, जैसा तुम इस समय मेरे सामने सत्य बोले हो ऐसा ही सर्वत्र सदैव बोला करो। यही तुम्हें सम्पूर्ण दुष्कर्मों से बचायेगा।" साहूकार के लड़के ने वहीं से प्रतिज्ञा की कि—"मैं आज से चाहे कुछ ही हो, असत्य कभी न बोलूँगा।" दूसरे दिन घर आ शराब की बोतल ले आबकारी की दूकान को चला। मार्ग में उसका बड़ा भाई मिला और उसने इससे कहा—"भैया, कहाँ जाते हो ?" इस प्रश्न के होते ही इसे बड़ा सङ्कट हुआ। इसने सोचा कि मैं यदि सत्य कहता हूँ तो भाईजी फजीता करेंगे और झूठ कहता हूँ तो व्रत छूटता है, अतः उत्तर न दे वहीं से लौट आया। इसी प्रकार तीसरे दिन वह वैश्या के घर जा रहा था। मार्ग में चचा

त्योंही उस बेटे की माँ, बहन, स्त्री, कुटुम्बी, पड़ोसी सभी रोने और यह कहने लगे कि "महात्माजी, चाहे हम लाग मर जायँ पर यह लड़का जी जाय।" महात्माजी ने सब को धैर्य्य दे कहा कि--"आधसेर कपिला गौ का दूध शीघ्र ले आओ। जब दूध आया तो जो पिसी हुई मिश्री की पुड़िया महात्माजी के हाथ में थी, सब को दिखाकर महात्माजी ने कहा कि 'यह संखियाहै और उसे दूध में डाल प्रथम लड़के की माताको बुलाया और कहा कि तुम अभी कहती थीं कि चाहे हम मरजागँ पर हमारा बेटा जी जाय, इससे इस ज़हर को तुम पीलो सो तुम तो अभी मर जाओगी पर तुम्हारा बेटा जी जायगा।" माताने कहा—"महाराज, हमारी जन्मपत्री तो देखो. हमारे और बेटे होंगे या नहीं?" महात्माजी ने कहा--"तुमने उसे नौ मास पेट में रक्खा और पाला पोसा है, इससे कनिया का जाय और पेट का आसरा, वाली बात मत करो। इस दूध को पीलो।" माता ने कहा--"महाराज, हमें आप पहले यह बतादें कि हमारे और बेटे होंगे या नहीं?" महत्माजी ने समझ लिया कि यह दूध नहीं पी सकती. बातों में टाल रही है, अतः माता को अलग कर पिता को बुलाया और कहा कि--"आप हमारे यहां दौड़े गये थे और यह कहते थे कि चाहे हम मरजायँ पर हमारा बेटा जी जाय, इस लिये आप इस दूध को पी लें। आप तो अभी मर जायँगे पर बेटा आपका अभी जी जायगा।" पिताने कहा—"महाराज, हमारी अवस्था तो अभी इस प्रकार की है कि और बच्चे हो सकते हैं।" महात्मा ने इन्हें भी पीछे हटा साहूकार के बेटे की स्त्रीको बुलवाकर कहा कि-"तुमने इसके साथ भांवरें फिरी हैं और तुम्हारी शोभा इसीसे है और तुम भी अभी यही कहती थीं कि चाहे हम मरजायँ पर हमारा पति जीजाय, इसलिये तुम इस दूधको पीलो। तुम तो अभी मर जाओगी और तुम्हारा

पति जी उठेगा ।" स्त्री ने कहा—"महाराज, यह जिया न जिया, हमारे माँ बाप के यहां बहुत धन है, मैं वहां चली जाऊँगी और वहीं अपना जीवन व्यतीत कर दूँगी ।" महात्मा ने उसे भी अलग किया । अब टोला महल्ला वालों ने सोचा कि साहूकार के माता पिता स्त्री सब से तो महात्माजी कह चुके, अब हम लोगों की बारी आई, इस कारण सबके सभी टरक गये । अब केवल वहाँ ५ मनुष्य शेष रह गये—महात्मा, साहूकार का बेटा, उसकी माता, पिता, स्त्री । तब तो महात्माजी ने यह सब देख कहा कि "दूध हम पीलें ?" माता पिता आदिक ने उत्तर दिया कि--"महाराज, महात्माओं का तो परोपकार के ही लिए जीवन होता है" तब महात्मा ने बेटे की माता से कहा--"यदि तुम प्रतिज्ञा करो कि यदि हमारा बेटा जी उठेगा तो यह सब यथार्थ बृत्तान्त हम अपने बेटे से कह दूंगी, तो हम दूध पी लें ।" माता ने प्रतिज्ञा की । महात्मा ने मिश्री पड़ा दूध आनन्द से पी लिया और साहूकार के बेटे को प्राणायाम से जगा दिया और उसकी माता से कहा कि--"अब इससे सम्पूर्ण बृत्तान्त यथार्थ-यथार्थ कहो ।" माता ने कहने में कुछ संकोच किया । महात्मा ने कहा--'यदि तुम संकोच करोगी तो शाप देकर तुम, तुम्हारे पति, बहू तथा इस बेटे सबको अभी भस्म कर दूंगा ।" ऐसा सुन साहूकार के बेटे की माँ को विवश हो सब कहना पड़ा । बच्चे ने सुनकर यह समझ लिया —

एकः पापानि कुरुते फलं भुंक्ते महाजनः ।
भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्ता दोषेण लिप्यते ॥

संसार में सिवा धर्म तथा ईश्वर के सचमुच अपना कोई नहीं । ऐसा जान मोह छोड़ महात्माजी के साथ जा

समाधि सीख, समाधि लगा उसने मोक्ष-सुख को प्राप्त किया । सच है, भर्तृहरिजी ने कहा है कि —

प्राप्ताः श्रियः सकल काम दुघास्ततः किं,
दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम् ।
सन्मानिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किं,
कल्पं स्थितं तनुभृतां तनुभिस्ततः किम् ।

अर्थात् —इन नश्वर शरीरधारियों ने सब कामनाओं की दुहनेवाली लक्ष्मी पाई तो क्या, शत्रुओं के शिर पर पग दिया तो क्या, धन से मित्रों का सन्मान किया तो क्या, फिर इस देह से कल्प भर जिये तो क्या अर्थात् परलोक न बनाया तो कुछ न किया ।

जीर्णा कंथा ततः किं सितममलपटं पट्टसूत्रं ततः किं,
एका भार्या ततः किं हयकरिसुगणैरावृतो वा ततः किम् ।
भक्तंभुक्तं ततः किं कदशनमथवा वासरांते ततः किं,
व्यक्तज्योतिर्नवांतर्मथितभवभयं वैभवं वा ततः किम् ॥

अर्थात् – पुरानी गुदड़ी धारण की तो क्या, उज्ज्वल निर्मल वस्त्र वा पीतांबर धारण किया तो क्या, एक ही स्त्री पास रही तो क्या, अथवा घोड़े हाथी सहित करोड़ स्त्रियां रहीं तो क्या, अच्छे व्यञ्जन भोजन किये वा कुत्सित अन्न सायंकाल को खाया तो क्या, जिससे भव-भय नष्ट हो जाय ऐसी ब्रह्म की ज्योति हृदय में न जगी तो बड़ा विभव ही पाया तो क्या ?

८—परमात्मा को पाप पुण्य का द्रष्टा और दण्डदाता जान पापों से क्यों न बचो ?

पापों की पूँजी कभी पच नहीं सकती।

एक माली ने एक बाग़ बहुत ही अच्छा लगा रक्खा था जिसमें हर प्रकार के फल-फूल उपस्थित थे और माली स्वयमेव अपने बाग़ का रक्षक था। एक बाबू साहब एक बहुत ही अच्छा कोट जिसमें कई एक पाकिट,भीतरी चोरगल्ले तथा कई पाकिट बाहर भी थे और पतलून भी बड़ी बढ़िया पहिने हुये एक क़ीमती टोपी दिये तथा हाथ में छड़ी लिये हुए उस बाग़ीचे को देखने के लिए पहुंचे और माली से पूछा कि—"हम आपके बग़ीचे को देखना चाहते हैं?" माली ने कहा—"आप बग़ीचे को प्रसन्नता-पूर्वक देखिये परन्तु आप कृपा कर उसमें कोई फल-फूल न तोड़ें, बाबू साहब ने कहा—"वाहजी,यह भी कोई भलेमानसों की बात है, भला यह आप क्या कहते हैं, कभी ऐसा हो सकता है?" बाबू साहब बग़ीचे के भीतर जा रविशों पर टहलने लगे और नाना प्रकार के वृक्ष, पत्र, पुष्प, फल देख बाबू साहब का मन ललचाया और बाबू साहब ने यह सोचा कि यदि हम कुछ फल तोड़अपने भीतरी चोरगल्लों में रख लें तो यहाँ माली किसी भाँति न देख सकेगा, अतः बाबू साहब ने फल तोड़ २ भीतरी चोरगल्ले तो ख़ूबही ठूँसर कर भर लिये और बाहरीपाकिटों में यह समझ कि यदि हम इनमें कुछ कुछ फल डाल लेंगे तो यह मालूम पड़ेगा कि कपड़ा फूला हुआ है. ऐसा सोच कुछ फल उनमें भी तोड़ २ कर डाल बग़ीचे से चलकर निकलने लगे तो बग़ीचे का माली बग़ीचे के दरवाज़े पर बैठा था, उसने कहा—"बाबू साहब, इस बग़ीचे का यह नियम है कि जो

मनुष्य देखने जाता है, बिना झारा दिये नहीं जाने पाता है।" बाबू साहब ने कहा—"आप देख लीजिये, मैं खड़ा हूँ।" तब तो माली ने कहा—'इस प्रकार झारा नहीं लिया जाता, यहाँ तो आप इस कोट को उतारकर अलग रखिये और मैं इसके एक एक पाकिट में हाथ डाल कर देखूंगा।' अब तो बाबू साहब हैं हैं करने लगे। माली ने कहा—"हैं-हैं से कुछ न होगा। इस कोट को उतारिये।" अतः बाबू साहब को विवश हो कोट उतारना पड़ा और जब माली ने पाकिटों में हाथ डाल देखा तो फल तो मौजूद ही थे। अब तो माली ने बाबू साहब को पकड़ अपने नियम के अनुसार दण्ड दे पुलिस के हवाले कर जेल को भेज दिया।

पाठको, दृष्टान्त तो यह हुआ परन्तु दार्ष्टान्त इसका यह है कि परमात्मारूपी माली प्रकृतिरूप जीव को ले—

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।

नाना भाँति का संसाररूपी बग़ीचा रचकर स्वयमेव अपने आप ही संसार का रक्षक हो रहा है। यह जीवात्मा शरीररूपी कोट पहिर बाग़ीचे की सैर करने आता है, परन्तु उस माली ने कहा था कि—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥
—य० अ० ४०।

बग़ीचा तो देखने जाते हो पर यह जो कुछ संसाररूपी बाग़ है सब मुझ से भरा है, अतः बाग़ीचे में जा किसी वस्तु पर हाथ न डालना। ऐसा कह पुनः आज्ञा दी कि—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं ् समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥

—य० अ० ४०।

ऐसा जानकर यह स्मरण रखते हुये कि बागीचे में किसी वस्तु को न छुयें, सैर कर आइये' पर इसने यहाँ आकर नाना भाँति के मद्य, मांस, हिंसा चोरी, जारी आदि कुकर्मों से खूब ही पेट रूप चोरगल्ले भरे। इसने सोचा कि यहां मुझे कोई देखनेवाला थोड़े ही है, यह न सोचा कि—

एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण मन्यसे।
नित्यं हृद्य तस्थेषु पुण्य पापेक्षिता मुनिः ॥

वह परमात्मा सर्वत्र तथा आत्मा में भी पुण्य पाप का देखने वाला मौजूद है, जीवात्मारूप बाबू बगीचे के बाहर चलकर नाना भाँति के रूप बना अपने को यह दर्शा कर कि मैं बड़ा धर्मात्मा हूं बगीचे से अच्छी तरह निकलना चाहता है, पर यह साधारण मनुष्यों में तो चल जाती है कि चाहे जैसे अधर्म करो पर एक उत्तम सफेद पोशाक पहरने, रूप बनाने, धन होने से संसारिक लोग प्रतिष्ठा दे दिया करते हैं, क्योंकि संसारिक मनुष्य तो व्यापक नहीं जो भीतरी दशा जान सकें, किन्तु परमात्मा के यहाँ यह आडम्बर नहीं चलता जिस समय में संसार रूपी बागीचे के चिता रूप द्वार पर मनुष्य पहुंचता है तो इस का शरीररूपी कोट माली उतरवाकर अलग रखवा लेता है और एक २ पाकिट हड्डी पुरजे देखता है, यदि कोई चोरी नहीं तो उसे पारितोषिक और यदि कुछ फल फूल तलाशीमें बरामद हुए तो दण्ड दे नाना प्रकार के योनिरूपी जेलखानों में अपने नियमरूपी दूतों के हाथ भेज कर्म का फल देता है।

६—पारस मणि की बटिया ।

एक महात्मा ने एक साहूकार को एक ऐसी पारसमणि की बटिया दी कि जिसको लोहे में छुआते ही लोहा सोना बन जाता था, परन्तु महात्मा ने यह कहा था कि बटिया मैं तुम्हें सात दिन के लिए देता हूँ, सात दिन पूरे होने पर मैं तुमसे यह बटिया ले लूँगा। साहूकार ने बटिया पाते ही सोचा कि मेरे घर तो लोहा सिवा हसिया; खुरपी, फावड़ा कुदार के और है ही नहीं और बटिया केवल सात ही दिन को मिली है, अतः उसने सोचा कि अभी दिन तो सात पड़े हैं इतने में लोहा खरीद कर आसकता है, ऐसा समझ एक आदमी कलकत्ता दूसरा बम्बई भेजा और उन आदमियों से कहा कि लोहा जल्दी खरीद कर लाना, दो दिन में गाड़ी कलकत्ता आई, दो या ढाई दिन में बम्बई पहुँचो। पुनः वहाँ लोहा खरीदते गाड़ियों में लदाते हुए दो दिन बीत गये। पुनः दो दिन में फिर यहाँ रेलगाड़ियां आईं। इस भाँति छै दिवस बीत गये। सातवें दिन साहूकार ने मालगाड़ियों से माल उतरवा कर सोचा कि यदि यहाँ पारस पथरी छुआये देते हैं तो तांतिया भील या दरांव सरीखे डाकू सब लूट लेंगे अतः लोहे को घर में भर कर तब पारस पथरी छुआयें ऐसा समझ लोहा बैलगाड़ियों में भरा घरलाये। घर में दरवाज़े से लोहा बैलगाड़ियों से उतरवा २ घर में भर रहे थे (यह समय सातवें दिन बारह बजे रात का था) तब तक महातमाजी बटिया लेने के लिये आगये। साहूकार ने महात्माजी का बहुत कुछ आदर सत्कार किया। महात्माजी ने कहा—"वह बटिया लाइये।" साहूकार ने कहा-' महाराज, अब तक तो हम लोहा ही खरीदते ही रहे, कुछ काल गम खाइये। महात्माजी ने कहा—मैं एक मिनट भी नहीं गम खा सकता, बटिया



छुआइये।" साहूकार ने कहा—"महाराज, अच्छा हम अभी जाकर लोहे में छुआये लेते हैं।" महात्माजी ने कहा—"बस, आपकी अवधि हो गई, अब बटिया दे दीजिये।" साहूकार ने कहा—"अच्छा ये लो, हम छुआये लेते हैं।" महात्मा ने हाथ पकड़ बटिया छीन ली।

इस दृष्टान्तका दार्ष्टान्त यह है कि जीवात्मा रूप साहूकार को परमात्मा रूपी महात्मा ने यह शरीररूपी पारसमणि की पथरी सात दिनके लिये (सात दिन का तात्पर्य्य यह है कि दिन सात ही होते हैं) दी थी कि इस पारसमणि पथरी से माया जंजाल विषयों से अलग हो मोक्षरूपी सोना बना लेना। पर यह जीवात्मा-रूपी साहूकार सातो दिन यानी सदैव लोहाही खरीदता रहा अर्थात् विषयों में ही फँसा रहा। जब महत्मा इनसे अवधि आने पर बटिया लेने गया तब कहते हैं परमेश्वर दो वर्ष या एक वर्ष या छै मासकी और आयु दे तो हम कुआँ बनवालें, यज्ञ कर लें, योग साधन करलें परन्तु वहाँ अवधि के पश्चात् एक मिनट की भी मोहलत नहीं, जैसा किसी कविने कहा है—

श्वःकार्यमद्य कुर्वीत पूर्वान्हे चापरान्हकम्।
नहि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्यन्यथा कृतम्॥

जो काम करना हो उसकी आगे की प्रतीक्षा न करके अभी करे क्योंकि मौत यह नहीं देखती कि इसका यह काम शेष पड़ा है, इससे इसे इतने दिन के पश्चात भक्षण करेंगी। अतः इस पारसमणि पथरी को योंही व्यर्थ मत खोइये। यह मनुष्य शरीर बार-बार नहीं मिलता। देखिये किसी कवि ने कहा है—

जन्मेदं वन्ध्यतां नीतं भवभोगोपलिप्सया।
काँच मूल्येन विक्रीतो हन्त चिन्तामणिर्मया॥

अर्थ—यह जन्म सांसारिक भोगों की लालसा से बन्धन में डाल दिया। हाय! मैं ने चिन्तामणि को काँच के समान बेच डाला। दूसरा कवि कहता है—

महता पुण्यपरायेण क्रीतेयं कायनौस्त्वया।
पारं दुःखो दधेर्गन्तुं त्वरयावन्नभिध्यते॥

अर्थ—बड़ी पुण्यरूपी हाट से तूने यह मनुष्य देहरूपी नाव संसाररूपी समुद्र से पार जाने के लिए ली थी, जब तक यह टूट न जाय तब तक इस समुद्र से पार जाने का शीघ्र-शीघ्र यत्न कर।

१०—कुछ आगे के लिये भी भेजिये।

एक राज्य में यह नियम था कि उसका प्रत्येक राजा १० वर्ष राज्य करनेके पश्चात् बनको भेज दिया जाताथा। एक राजा उस गद्दी पर बैठे परन्तु इस दुःख से वे इतने दुखी थे कि जिसका पारावार नहीं और सोचते रहते थे कि यह सब सामान अब केवल हमारे पास ४ वर्ष है, २ वर्ष है, १ वर्ष है, ६ मास है। इस दुःख से उनका खाना पीना और आनन्द सभी बन्द थे। अनायास राजा साहब के यहाँ एक महात्मा आ गये। महात्मा ने कहा—"राजा, तू इतना दुखी क्यों है?" राजा ने कहा—"महाराज, ६ मासके पश्चात् बनको भेज दिया जाऊँगा और ये राज्य के सम्पूर्ण पदार्थ छूट जायँगे, तब मुझे बड़ा कष्ट होगा। इसी कारण दुखी रहता हूँ।" महतमा ने कहा—"राजन् इसके लिए इतना दुःख क्यों करते हो, यह तो थोड़ी सी बात है। आपको ६ मास के बाद जिस बन को जाना है, अभी

से राज्य के सम्पूर्ण पदार्थ क्यों नहीं धीरे-धीरे उस बन को भेज देते हो ताकि वहाँ कष्ट न हो।" राजा ने वैसा ही किया और वह वन में जा आनन्द भोगने लगा।

इसका दार्ष्टान्त यों है कि इस जीवात्मारूपी राजा को कुछ कुछ दिनों के पश्चात् अन्य योनियों वा अन्य शरीरों की प्राप्ति हुआ करती है और वह शरीर तथा शरीर के साथ उपलब्ध पदार्थों एवं संबन्धियों के छूट जाने के शोक में शोकित होता है; कि जाने दूसरे जन्म में मिलें या नहीं। महात्मा ने तो उसके लिये बतलाया कि यज्ञादि तथा दान धर्म द्वारा क्यों न तू अपने पदार्थ धीरे-धीरे इस प्रकार पहुँचा दे, कि तुझे पुनर्जन्म में वे सम्पूर्ण पदार्थ प्राप्त हों।

यावज्जीवेन तत् कुर्य्यात् यना मुत्र सुखं भवेद्।

११—वैराग्य

एक राजा का मंत्री अत्यन्त योग्य और बड़ा ही चतुर था तथा महाराज की सेना भी बड़ी प्रबल और पुष्ट थी। सभी अपना काम बड़े नियत समय पर किया करते थे परन्तु मंत्री के पालसे-बाज़ होने और वरगलाने से सम्पूर्ण सेना मंत्री से मिल गई थी जिससे राजा को हर समय भय रहता था कि जाने किस समय यह मंत्री सेना ले मुझ पर धावा कर दे। एक दिन राजा रानी दोनों आनन्द में लेटे हुये थे तो रानीजी ने महाराज से कहा कि—" महाराज, मंत्री का विरुद्ध रहना अच्छा नहीं, न जाने कस समय वह सेना ले धावा कर दे। इससे कल प्रातःकाल आप अपने बेटे को भेजें कि वह मंत्रीजी के मैल को हटा दे और वह आपसे विरोध करना छोड़ आपके अनुकूल हो जाय।"

इसका दार्ष्टान्त यह है कि जीवात्मा-रूपी राजा का मन-रूपी मंत्री बड़ा ही योग्य और चतुर है, जिसके ही द्वारा सम्पूर्ण कर्म जीव के होते हैं । इन्द्रिय रूप सेना से मन रूप मंत्री जिस प्रकार चाहता है कर्म कराता है । परन्तु यह मन इतना चंचल है कि इसके लिए कहा है—

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

देखिबे को दौरे तौ सटकि जाय वाही अरु सुनिबे को दौरे तौ रसिक सरताज है । सूँघिबे को दौरे तौ अघाय ना सुगन्ध करि खाइबे को दौरे तो न धावे महराज है ॥ भोगिबे को दौरे तो तृपति हू न काहू होय हनुमंत कहै याको नेक हू न लाज है । काहू को न कह्यो करे, अपनी ही टेक धरे, मन सों न कोऊ हम देख्यो दगाबाज है ॥ १ ॥

बस, इस मंत्री ने इन्द्रियरूप सेना अपने वशीभूत कर जब जीवात्मा रूप राजा पर धावा करना चाहा तो बुद्धिरूपी स्त्री ने जीवात्मा रूप राजा से कहा—"महाराज, आप अपने बेटे वैराग्य को मंत्री मन के पास भेजिये ताकि बेटा वैराग्य जाकर मंत्री के मन के मैल को हटा दे और मंत्री आपके अनुकूल हो जाय। ऐसा ही हुआ । बेटे के जाते ही मंत्री अनुकूल हो गया और जीवात्मा-रूपी राजा का विजय हुआ ।

१२—अब के न तब के

एक बार एक राजा ने अपने मन्त्री से कहा कि आप ८ मनुष्य इस तरह के लाइये कि २ तब के और २ अब के और २

अब के न तब के। मंत्री यह प्रश्न सुन चकित हो गया परन्तु कुछ काल सोचने से मंत्री महाराज की समझ में यह बात आ गई अतः उन्होंने ग्राम में आकर संन्यासी महात्माओं से प्रार्थना की कि आप कृपाकर कुछ देर के लिए हमारे राजा के यहाँ तक चलिये और दो राजाओं को बुलवा कर साथ लिया और दो हम में तुम में से ले जाकर राजा साहब से कहा-"महाराज वे ६ ओं मनुष्य आ गये।" महाराज ने कहा-"लाओ।" मंत्री ने प्रथम राजाओं को खड़ा किया और कहा कि-"महाराज, ये तब के हैं यानी पूर्व जन्म में किया था सो अब भोग रहे हैं।" पुनः दोनों संन्यासी महात्माओं को खड़ा किया और कहा-"ये अब के हैं, यानी अब ये योगादि अङ्गों का पालन कर रहे हैं जिसका फल आगे पावेंगे।" और दो हम में तुम में से ले जाकर खड़े कर दिये और कहा-"ये अब के न तब के, अर्थात् न इन्होंने पूर्व जन्म में ही ऐसा कुछ सुकृत किया था जिससे कुछ ऐश्वर्य प्राप्त करते और अब भी इनके ऐसे ही कर्म हैं कि दूसरे जन्म में ऐश्वर्य्य पाना तो एक ओर रहा वरन् मनुष्य जन्म भी नहीं पा सकते।"

एक कवि का वाक्य है—

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम्॥

१२—देह में खुजली

एक अन्धा किसी बड़े भारी मकान के भीतर पड़ गया अब बेचारे को मार्ग मिलना कठिन हो गया, परन्तु अन्धे ने एक युक्ति सोची कि यदि दीवार पकड़े-पकड़े इसके सहारे . मैं चलूँ।

तो दर्वाज़ा अवश्य मिल जायगा और अन्धे ने ऐसा ही किया। परन्तु दीवार पकड़े पकड़े जभी वह दर्वाज़े के सामने आता तो उसकी देह में ऐसी खुजली उठती कि वह दोनों हाथों से दीवार का सहारा छोड़ खुजलाने लगता। इसी भाँति उसने सैकड़ों चक्कर लगाये, पर हर बार दर्वाज़ा निकल जाता था और वह यों ही हाथ मलता रह जाता था।

इसका दार्ष्टान्त यों है कि यह जीवात्मारूपी अन्धा पुरुष योनि-रूपी मकान के घेरे में पड़ उससे निकलने का उद्योग करता है। यह ज्ञात रहे कि योनि-रूपी घेरे के अंदर से निकलने का दर्वाज़ा एक मात्र मनुष्य योनि ही है। पर इस जीवात्मारूप अन्धे को जब-जब मनुष्य योनि प्राप्त होती है तब-तब उसमें इसे पंच विषय रूप खुजली उठा करती है और विषयों में ही इसकी उम्र व्यतीत हो जाती है और मनुष्य-शरीर-रूप दरवाज़ा निकल जाता है। इसलिये, सज्जनो! विषयों में इस दर्वाज़े को न निकालिये नहीं तो योनिरूपी मकानों के घेरे में ही चक्कर खाया करोगे। जैसा कि कवि ने कहा है—

तृष्णाया विषयैः पूर्त्तिर्नैव कश्चित् कृतापुरा।
करिष्यन्ति न चान्येतै भोगतृष्णा ततस्त्यजेत॥

१४—देह होते हुये विदेह नाम क्यों?

एक बार महाराज जनकजी के मंत्री ने उनसे पूछा कि—"महाराज, आपके देह होते हुए भी आपका नाम विदेह क्यों है?" महाराज ने कहा—"इसका उत्तर हम तुम्हें कुछ दिवस बाद देंगे।" जब कुछ दिन व्यतीत हुए तो महाराज ने एक दिन उस मंत्री का निमन्त्रण किया और घर में सम्पूर्ण पदार्थ ऐसे

बनवाये कि जिनमें किसी में भी नमक न पड़ा था और मंत्रीजी के भोजन करने के प्रथम ही एक ढिंढोरा इस प्रकार का पिटवा दिया कि "आज ४ बजे उक्त मंत्री को फाँसी दी जायगी" और ढिंढोरा पीटनेवाले से कहा कि "मंत्रीजी के द्वार पर तीन आवाज़ें लगा देना कि जिसमें मंत्रीजी सुन लें।" ऐसा ही हुआ। पश्चात् दो बजे महाराज जनकजी ने मंत्री को भोजनों के निमित्त बुलाया और बड़े आदर से भोजन कराया। जब मंत्रीजी भोजन करचुके तब महाराज जनकजी ने कहा—"मंत्रीजी, यदि आप हमें यह बता दें कि किस-किस भोजन में कैसा-कैसा लवण था तो मैं आपको सूली से मुक्त कर दूँ।"

मंत्रीजी ने उत्तर दिया कि—"महाराज मुझे मौत के भय से यह ज्ञान न रहा कि किस भोजन में लवण है, किस में नहीं। मैं कैसे बताऊँ?" तब तो महराज जनकजी ने मंत्री से कहा—"सुनिये, आपकी सूली का समय चार बजे था और दो बजे आप भोजन करने बैठे थे, भोजन के समय से मौत के समय तक दो घण्टे की ज़िन्दगी की आपको पूर्ण आशा थी परन्तु फिर भी आपको लवण का ज्ञान शरीर, स्मरणशक्ति, जिह्वा और ज्ञान आदि के होते हुए भी न रहा किन्तु मुझे तो एक मिनट की भी ज़िन्दगी की पूर्ण आशा नहीं, अतः जिस प्रकार तुम दो घण्टे का समय होते हुए भी देह होते हुए विदेह हो गये इसी प्रकार एक मिनट की भी आयु की आशा न रखता हुआ मैं सदैव विदेह रहता हूँ। जनकजी का वाक्य है कि—

अनंतवत मेवित्तं यस्य मे नास्ति किंचन।
मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे किंचन दह्यते ॥

——

१५-विषयों की असलियत।

एक राजपुत्र एक दिन अपने ग्राम में घूमने गया। एकाएक राजपुत्र की दृष्टि एक महल के ऊपर पड़ी। महल पर एक सोलह वर्ष की कन्या अत्यन्त ही रूपवती स्नान करके अपने केश सुखा रही थी। यह कन्या उसी राजपुत्र के पिता राजा साहब के मंत्रीजी की कन्या थी। राजपुत्र उसे देख तुरन्त ही मूर्छित हो गया और कुछ काल के पश्चात् जब उसकी मूर्छा जागी तो फिर इसकी दृष्टि महल की ओर गई परन्तु फिर इसे वहाँ वह रूपवती न दिखलाई पड़ी। राजपुत्र अपने घर लौट आया, परन्तु घर आकर वह सब खान पान एकदम छोड़ शोक-भवन में लेट रहा। बहुत कुछ पूछने पर इसने सच्चा-सच्चा हाल कह दिया। राजा अपने पुत्र की यह दशा देख बड़े ही शोक में पड़ गया। मंत्री राजाजी की यह दशा देख अपने घर गया और अपनी कन्या से सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा। कन्या ने अपने पिता से कहा—"पिता जी, इसके लिए राजा और राजपुत्र क्यों दुःखी हैं? आप जाकर राजपुत्र से कह दीजिये कि आप उठिये, स्नान भोजन कीजिये, मेरी कन्या आप से परसों मिलेगी।" मंत्री ने ऐसा ही किया। राजपुत्र ने यह सन्देशा सुन अत्यन्त प्रसन्न हो उठकर स्नान भोजन किये। मंत्रीजी जिस समय अपने घर गये तो उनकी कन्या ने उनसे कहा कि—"पिताजी मुझे एक जमालगोटा और ८० कूंड़े मिट्टी के और ८० रूमाल रेशमी आज ही मँगवा दीजिये।" पिता ने उसी समय ये सब चीज़ें मँगवा दीं। रूपवती ने ज्योंही जमालगोटे का जुल्लाब लिया कि उसे दस्त पर दस्त आने प्रारम्भ हो गये। रूपवती हर बार उन्हीं कूंड़ों में पाख़ाने जाती और हर कूंड़े पर जिसमें कि वह पाखाना हो आती थी एक रेशमी रूमाल ओढ़ा दिया

करती थी। इस प्रकार वे सभी कूंड़े सज गये और रूपवती की यह दशा हो गई कि उसका सम्पूर्ण शरीर पीला पड़ गया और इतनी दुबली हो गई कि माना चारपाई में लग गई थी। वह टूटी-सी खाट पर लेटी हुई थी और उसके चारों ओर मक्खियाँ भिनक रही थीं और मल-मूत्र सने कपड़े पहने थी। इस अवस्था में स्थित उसने अपने पिता मंत्री से कहा कि—"पिताजी अब आप राजपुत्र को ले आइये।" राजपुत्र पूर्णरूप से सज-धज बड़ी उमंग के साथ मंत्री के साथ चल दिये। जब मंत्रीजी के महलों में प्रवेश करने लगे और ज्योंही भीतर पहुँचे तो कुछ दुर्गन्धि आई। राजपुत्र ने रूमाल से अपनी नाक दबा कहा "मंत्री जी, दुर्गन्ध काहे की आती है?" मंत्री ने कहा—"होगी किसी चीज़ की. आप चले आइये।' पर बड़ी कठिनता से दुर्गन्ध सहन करते हुये राजपुत्र रूपवती तक पहुँचे। रूपवती की वह दशा देख राजपुत्र दंग रह गया कि—"अरे! इसकी क्या दशा हो गई! मैंने परसों इसे उस रूप में देखा था, आज क्या हो गया?" रूपवती ने कहा—"महाराज आइये।" परन्तु राजपुत्र को रूपवती के पास जाना तो क्या बल्कि वहाँ खड़े रहने में मिनट-मिनट में इतनी तकलीफ़ हो रही थी कि जिसका पारावार नहीं। रूपवती ने कहा—"महारज, आपकी प्रीति यदि मुझ से थी तो यह दासी आपकी सेवा में उपस्थित है और यदि मेरी ख़ूबसूरती से प्रेम था तो वह कूँड़ों में भरी रक्खी है।" परन्तु इस मूढ़ राजपुत्र को फिर भी बोध न हुआ। इसने समझा कि ख़ूबसूरती कोई वस्तु है जो कूंड़ों में भरी रक्खो होगी। और ऊपर रेशमी रूमाल देख इसे ख्याल हुआ कि ख़ूबसूरती कोई बड़ी उत्तम वस्तु होगी जिस पर कि रेशमी रूमाल पड़े हैं। राजपुत्र ने जाकर ज्योंही रूमाल खोले तो वहाँ पाखाना देख नाक दबाकर चल दिया और इस दृश्य से उसे ऐसा वैराग्य हुआ

कि तमाम उमर उसने योगादि अङ्गों का पालन कर मोक्ष सुख को प्राप्त किया।

प्रिय सज्जनो ! आप लोगों ने संसार के पदार्थों की खूबसूरत तथा चमकीलेपन की असलियत समझ ली होगी। किसी कवि ने कहा है—

कदलीस्तम्भ निस्सारे संसारेसाग मार्गणाम्।
यः करोति ससम्मूढ़ो जलबुदबुद सन्निभा ॥

संसार के चमकीले पदार्थों में सार ढूँढना इसी भांति है जैसे केले, प्याज या करमकल्ले उधेलते जाइये, बक्कल ही बक्कल मिलेंगे।

१६—अष्टावक्र

एक बार महाराज जनकजी ने एक सभा की जिसमें बड़े-बड़े विद्वानों को बुलाकर कहा कि हमें कोई ऐसा उपाय बताओ कि जिसमें २ घंटे में ईश्वर प्राप्त हो जाय। इस प्रकार वहाँ बहुत से पंडित एकत्र हुए थे। उसी सभा में महाराज अष्टावक्र के पिता भी गये थे। महाराज अष्टावक्र जिस समय बाहर से घर आये तो अपनी माता से पूछा कि—"माताजी, आज पिताजी नहीं दिखलाई पड़ते, कहाँ गये हैं ?" माता ने कहा कि—"आज महाराज जनक की सभा में इस प्रकार का विषय उपस्थित है, तुम्हारे पिता वहाँ गये हैं।" महाराज अष्टावक्र ने कहा—"माताजी, आज्ञा हो तो भोजन के पश्चात् हम भी राजा जनक की वह सभा देख आवें?" माता ने अष्टावक्र से कहा कि-"बेटा प्रथम तो तुम्हारी आठों गाठें टेढ़ी हैं. हाथ पैर से अपाहिज हो कहां कढ़िलते हुये जाओगे ? दूसरे तुम्हें देख सब हँसेंगे।" पर अष्टावक्रजी तो बड़े विद्वान् थे अतः माता से आज्ञा ले, वे राजा

जनक की सभा में जा पहुँचे। इनके पहुँचते ही इन्हें आठों गाँठ टेढ़ा देख सम्पूर्ण सभा के लोग हँस पड़े; पर महाराज अष्टावक्र-जी सभा के लोगों से दुगने हँसे। तब तो सभा के लोगों ने महाराज अष्टावक्रजी से पूछा कि "आप क्यों हँसे?" महाराज अष्टावक्रजी ने सभा के लोगों से कहा—"आप क्यों हँसे?" सभा के लोगों ने कहा—"हम तो आपका आठों गाँठ टेढ़ा रूप देखकर हँसे।" तब तो महाराज अष्टावक्र ने कहा कि - "हम यों हँसे कि तुम सब चमार हो, क्योंकि हड्डी चमड़े की परीक्षा चमार ही को होती है।" किन्तु राजा जनक ने महाराज अष्टावक्रजी का बड़ा सत्कार किया और अपना प्रश्न महाराज अष्टावक्रजी से भी किया। महाराज अष्टावक्रजी ने कहा कि—"राजन्, यदि हम आपको दो घंटे में ईश्वर प्राप्त करा देंगे तो आप हमें क्या देंगे?" महाराज जनक ने कहा—हम तुमको अपना सम्पूर्ण राज्य दे देंगे।" महाराज अष्टावक्र ने कहा कि-"क्या राज्य तुम्हारा है? क्या जिस समय आप पैदा हुये थे, राज्य साथ लाये थे? आपतो खाली हाथ क्यहाँ-क्यहाँ करतेहुये उत्पन्न हुये थे।" तव तो महाराज जनक ने कहा कि—"महाराज राज्य के सिवाय तो हमारे पास कुछ नहीं है, हम आपको क्या दें?" महाराज अष्टावक्र ने कहा कि-"कोई अपनी चीज़ दीजिये।" महाराज जनक ने कहा कि—"हमारे पास हमारी चीज़ और क्या है?" महाराज अष्टावक्र ने कहा कि-'आप अपना मन हमें दे दीजिये तो हम आपको ईश्वर से मिला दें।" बस जहाँ महाराज जनक ने अपना मन ठहराया, वहीं महाराज को ब्रह्मानन्द का अनुभव होने लगा और बड़ा ही आनंद प्राप्त हुआ क्योंकि कठोपनिषद् में कहा भीहै-

मनसैवेदमाप्तव्यं नेहनानाऽस्तिकिंचन।
मृत्योःसमृत्युमाप्नोति यइह नानेव पश्यती॥

अर्थात्—शुद्ध मन से ही परमेश्वर प्राप्त हो सकता है।

१७–क्या करें फुरसत नहीं मिलती

एक लालाजी से एक महात्माजी जब कभी यह कहते कि लालाजी कुछ संध्या, गायत्री, होम, यज्ञ परमेश्वर का भजन किया करो तब-तब लालाजी तुरन्त ही यह उत्तर दे देते थे "क्या करें जनाब, फुरसत नहीं मिलती" महात्मा ने सोचा कि यह इस तरह न मानेगा, अतः एक दिन लालाजी जब कि पाखाने जा रहे थे महात्मा जी ने गाँव में जाकर यह शोर कर दिया कि एक शैतान इस क़िस्म का (बस इस क़िस्म के वर्णन में महात्माजी ने लाला की सब हुलिया वर्णन कर दी) आया है, उसने कई समीप-समीप के गाँवों में कितने ही मनुष्य मार डाले और खा गया और वह शैतान अगर गाँव में घुस जाता है तो फिर निकाले नहीं निकलता है, इसलिये सब गाँव के लोग तैयार हो जाओ। बस गाँव वाले कोई लाठी, कोई डंडा, कोई ढेले ले-ले तैय्यार हो गये। और ज्योंही लालाजी आये तो गाँव के लोगों ने लालाजी को बेहद पीटा। लालाजी ने सब कुछ कहा कि मैं इसी गाँव का रहनेवाला लाला हूँ, लेकिन किसी ने न सुना। यहाँ तक कि लालाजी के घरवालों ने भी न पहिचाना और लालाजी को मारते रहे। जब लालाजी ने देखा कि अब प्राण ही जाते हैं तब भाग खड़े हुए और वन में जा एक स्थान में बैठ रहे। पश्चात् महात्मा जी जिस ओर लालाजी भग कर गये थे, जाकर लालाजी से मिले और कहा—"कहो लालाजी, फुरसत है?" लालाजी ने महात्मा से कहा—"महाराज, हमसे जो कहो सो करें, हमें तमाम दिन फुरसत है। पर अब ऐसा उपाय कोजिये जिससे कि मैं अपने घर तो जाने पाऊँ।" महात्मा ने कहा कि—"तो प्रतिज्ञा करो कि हम आज से नित्य पूजा पाठ, सन्ध्या अग्निहोत्र, परमात्मा का भजन करेंगे।" लालाजी ने प्रतिज्ञा की। महात्माजी ने लालाजी को अपने साथ ले उनके घर पहुँचा दिया।

इसका दार्ष्टान्त यों है कि जीवात्मारूपी लाला को परमात्मा-रूपी महात्मा ने उपदेश दिया था—

अहरहसन्ध्यामुपासीत तस्ताऽरहोरात्रस्य संयोगे ब्राह्मणः सन्ध्यामुपासीत उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमाविध्यायन नतिष्ठति तु यः पूर्वां सायं-सायं ग्रहपातिर्नो प्रातः-प्रातः ग्रहपातिर्नो।

नित्य प्रातःकाल से उठते ही ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, नृयज्ञ, अहिंसाधर्म का पालन, सब से मेल-मिलाप किया करो, पर इन्हें तो 'आदित्यस्य गता गतैरहरहाः' सांसारिक कामों तथा विषयों से फुरसत ही नहीं। परमात्मा ने सोचा कि इस प्रकार यह न मानेगा अतः उसने अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अति शीत, अति ऊष्ण, नाना प्रकार के प्लेगादि रोगों के द्वारा इस फुरसत न पानेवाले पापी जीवात्मा शैतान को खूब ही ठीक कराया। तब तो यह दुःख में पड़ महात्मा के चरणों में गिर कर बोला कि "महाराज, जो कहो सो करें।" जैसे आजकल संसार में वैसे तो कभी नाम नही लेते पर दुःख पड़ने पर 'हाय राम हाय राम! हे ईश्वर!' कहीं कथा मानते हैं, कहीं होम मानते हैं, परन्तु किसी भाषा कवि ने कहा है—

दुख में सुमिरन सब करें, सुख में करै न कोय।
सुख में जो सुमिरन करै, तो दुख काहे को होय॥

इससे क्यों न हम सब लोग आगे से ही अपने कर्त्तव्य कर्मों का पालन करें ताकि इस दुःख के देखने की नौबत ही न आये।

१८—ऋषि सन्तानों का त्याग

महात्मा कणाद् जब सब काश्तकार अपने खेत काट लते थे और उनका शीला बीन लिया जाता था और इन खेतों में पशु चर जाते थे और जब देखते कि अब इस खेत में काश्तकार का कुछ नहीं रहा तब वे एक एक कण बीन कर अपना निर्वाह किया करते थे, इस लिये उनका नाम कणाद् (अर्थात् 'कणन् तीति कणादः' कण बीन बीनकर खानेवाले-कणाद) हुआ। इस भांति तो महात्मा अपना निर्वाह करते और हमारे लिये 'वैशेषिक दर्शन' जैसा रत्न कितने-कितने भारी कष्ट उठाकर रच गये, जिसको हम आज पढ़ते भी नहीं है। ये महात्मा केवल शरीर में एक लँगोटी लगाये नङ्ग धड़ङ्ग वन में रहा करते थे। परन्तु जिस वन में ये रहा करते थे जब उस वन के राजा के यहाँ ख़बर पहुँची कि आपकी राज्य में एक महात्मा इस प्रकार से रहा करते हैं और शास्त्रों में लिखा है कि यदि किसी राजा की राज्य में कोई सच्चा महात्मा कष्टित रहे तो राजा का सम्पूर्ण राज्य तथा पुण्य, दान, धर्म, तप सबका सभी नष्ट हो जाता है। ऐसा जान राजाजी ने अपने कामदारों के हाथ कुछ द्रव्य महात्मा कणाद् की सेवा में भेजा। ये कामदार जाकर द्रव्य ले सामने खड़े हो गये। जब कुछ काल के पश्चात् महात्मा ने ध्यान से कपाट खोले तो पूछा-"तुम कौन हो, और कहाँ आये हो?" कामदारों ने कहा-"महाराज, आपके लिए यहाँ के राजा साहब ने कुछ द्रव्य भेजा है।" महात्माजी ने कहा—"तुम जाकर किसी कँगले को दे दो।" कामदार यह शब्द सुन हैरान थे कि इस महात्मा के पास केवल एक लँगोटी है, पर यह कहता है कि तुम यह द्रव्य जाकर किसी कँगले को दे दो। कामदारों ने राजा से आकर वैसा ही कह दिया।

राजा ने इस बात को अपनी सभा में उपस्थित किया। वहाँ यह निश्चय हुआ कि राजा साहब की हैसियत के अनुसार यह सत्कार न था, इस लिये महात्माजी ने लौटा दिया है। ऐसा सोचकर उस द्रव्य को दुगुण कर पुनः कामदारों को राजा साहब ने भेजा। पर महात्माजी ने फिर भी यही कहा कि तुम जाकर किसी कँगले को दे दो राजा साहब ने पुनः इस बात को सभा में प्रगट किया। अबकी बार यह निश्चय हुआ कि राजा साहब स्वयमेव इसका चौगुना द्रव्य और बहुत सा सामान दुशाले आदि लेकर जाँय और ऐसा ही हुआ। जब राजा साहब पहुंचे और उन्होंने सब सामान महात्माजी के सन्मुख उपस्थित किया तो, महात्माजी ने कहा-"तुम इस सामान को जाकर किसी कँगले को दे दो।" राजा ने हाथ जोड़ कर कहा-"महात्माजी, अपराध क्षमा हो, आपके पास सिवाय एक लँगोटी के और कुछ तो दीखता ही नहीं और आप इस सामान के लिए यह कह रहे हो कि तुम जाकर किसी कँगले को दे दो। हमें तो आप से विशेष कँगला और कोई दीखता नहीं।" महात्मा ने फिर वही कहा "कि तुम जाकर किसी कँगले को दे दो।" राजा विवश हो लौट आया और जब रात में अपनी चित्रसारी पर जाकर लेटा तो उसने अपनी रानी से सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा। रानीजी ने कहा कि-"आपने बड़ी भूल की। ऐसे विद्वान् तत्त्वदर्शी को आप द्रव्य और दुशाले दिखलाने गये थे। उनके पास क्या नहीं है ? और दूसरी भूल यह की कि ऐसे महात्मा के पास पहुँच कर कुछ रसायन विद्या न सीख आते जिससे की राज्य के सैकड़ों ग़रीबों का काम चलता इससे अब भी कुशल है, आप महात्मा के पास जाकर पूछ आइये।" आधी रात का समय है। राजा उसी समय उठकर महात्माजी के पास गया। ज्योंही राजाजी पहुँचे कि महात्माजी ने पूछा-" कौन है ?" राजा ने उत्तर दिया कि-"वही दिन वाला

आपका सेवक राजा है।" महात्मा ने कहा-"आप इतने समय क्यों आये? राजा ने कहा-"महाराज, हमारा अपराध क्षमा हो जो हम आपको अपनी दौलत दिखाते रहे। अब हमें आप कोई ऐसी रसायन विद्या बता दें जिससे हमारे राज्य के दीनों का पालन हो और हम और बहुत कुछ पुण्य दान कर सकें।" महात्माजी ने कहा-"राजन्, मैं दिन में तेरे दर्वाज़े नहीं गया, लेकिन अब आधी रात का समय है और तू मेरे दर्वाज़े खड़ा है। अब बतला मैं कँगला हूँ या तू कँगला है?" राजा साहब ने महात्मा के चरणों पर सिर नवा क्षमा माँगी। पुनः महात्मा ने राजा को रसायन-विद्या यानी ब्रह्म-विद्या का उपदेश किया और विषय रूपी लोहे को सोना बनाना बता दिया।

१६-महात्मा कैयट का त्याग।

संसार में ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो महात्मा कैयट से विदित न हो। आपका महाभाष्य-तिलक जगद्विख्यात है। जिस समय आप महाभाष्य-तिलक बना रहे थे उस समय आपकी यह दशा थी कि आप स्वयं महाभाष्य-तिलक बन में लिखा करते थे और आपकी धर्मपत्नीजी बन से मूंज लाकर उसकी रस्सी बटतीं और उसे बेंच अन्न ले उसे कूट पीस भोजन तैयार कर कहतीं कि "प्राणनाथ स्वामिन् भोजन तैयार है।" ऐसा सुन महात्मा कैयट अपनी लेखनी रख भोजन करने जाते थे। एक दिन वहाँ के राजा ने महात्मा कैयट की यह दशा सुनी तो वह स्वयं उनकी सेवा में जा हाथ जोड़ उपस्थित हुआ। महात्मा कैयट नीचे सिर झुकाये लिख रहे थे। कुछ काल के पश्चात् जब उन्होंने सिर उठाया तो तुरन्तही राजा ने प्रणाम कर कहा-"महाराज, आप हमारे राज्य में इतना कष्ट उठा रहे हैं, इससे हमें बड़ा भारी

पाप लगता है ।" इतना सुनते ही महात्मा कैयट ने अपनी धर्मपत्नी से कहा कि—"यदि हमारे रहते हुये राजा को पाप लगता है तो उठाओ चटाई, यहाँ से चलें ।" यह सुन राजा ने कहा कि—"महाराज ! मेरा यह प्रयोजन नहीं कि आप चले जायँ, मेरा तो यह अभिप्राय है कि यदि आपके रहते हुये हम आपका सत्कार न करें और आप इतने कष्ट भोगें तो हम पापी हैं ।" और राजा ने हाथ जोड़, महात्मा से कहा कि—"महाराज, आप जो-जो पदार्थ कहें या जो आज्ञा हो उसके लिये यह आप का सेवक उपस्थित है ।" महात्मा कैयट ने राजाजी से कई बार यह कहला लिया कि—"आप हमारी आज्ञा मानेंगे ?" राजा ने कहा—"महाराज,कहिये ।" महात्मा कैयट ने कहा—"हम यही आपसे माँगते हैं कि आप इसी समय यहाँ से चले जाइये ।"

२०—एक ब्राह्मण ।

एक बार एक वेदशास्त्रों का ज्ञाता, शुद्ध ब्राह्मण एक वन में तपस्या कर रहा था । महाराज अर्जुन ने उसका समाचार सुन अपना एक दूत ब्राह्मण को निमंत्रण देने के लिये भेजा । ब्राह्मण के पास ज्योंही वह दूत पहुँचा और उसने ब्राह्मण से निवेदन किया कि—"महाराज, आपको आज महाराज अर्जुन ने निमंत्रण भेजा है ।" तो ब्राह्मण यह सुन दूत को कुछ भी उत्तर न देकर तुरन्त ही रोने लगा । कुछ काल के पश्चात् दूत वहाँ से चला गया और उसने जाकर महाराज अर्जुन से कहा कि—"महाराज, ब्राह्मण से ज्योंही मैंने जाकर निमंत्रण को कहा त्योंही वह रोने लगा ।" यह सुनतेही महाराज अर्जुन भी रोने लगे । दूत यह चरित्र देख और आश्चर्य को प्राप्त हुआ और वहां से चल कर

२१—अतिथि सत्कार

कुरुक्षेत्र में कपोती नाम का एक संन्यासी ब्राह्मण रहता था, जो कुछ वृत्ति से अपने कुटुम्ब का पालन करता था। ब्राह्मण के परिवार में चार मनुष्य थे—ब्राह्मण, उसकी धर्मशीला स्त्री, पुत्र और पुत्रबधू। ब्राह्मणी तथा उसकी बहू आज कल की कर्कशा स्त्रियों के समान पतियों पर दाँत पीसनेवाली न थीं, न वे यही जानती थीं कि पति के सिवा पैराट या जखई मदार भी संसार में देवता हैं। पुत्रवधू पति की सेवा के सिवा सास ससुर के इशारे में चलती और उनको अपना पूज्य मानती तथा श्रद्धा से उनकी सेवा करती थी। ब्राह्मण का पुत्र भी बाप की बात काटने और मूछ उखाड़ने में उजड्ड न था वरन् पिता की आज्ञा का पालन करना, उनके गौरव के अनुकूल वर्तना ही अपना कर्तव्य जानता था। इस प्रकार धर्मतापूर्वक बर्ताव होने से दीनता होते हुये भी इस कुल को कुछ दीनता का दुःख न था। सच है, धर्म ऐसी ही वस्तु है कि जिसके धारण से निर्बल बलवान, हो जाता है, निर्धन धनवानों की अपेक्षा अधिक सुख पाता है और भूखा अघाने के समान सुखी रहता है। ब्राह्मण और उसके परिवार के लोग भीख नहीं माँगते थे, न कहीं बुलाने से भी दान लेने जाते थे। खेत कट जाने पर जो उसमें अन्न झड़ पड़ता था उससे पेट पालते थे। व्रतादि ये छठे दिन करते थे, यदि इस समय अहार न मिले तो फिर दूसरे छठे दिन अन्न ग्रहण करते थे। व्रतकाल में इन लोगों का यही नियम था और इसके पालन करने में वे दृढ़ थे। ब्राह्मण के देश में एक बार अकाल पड़ा और जो कुछ संचित उंछ था वह सब चुकगया। भिक्षावृत्ति धर्म नहीं, अब आवे तो कहाँ से आवे। उंछ तो तभी मिलता है जब खेतों में अन्न उपजता है। ब्राह्मण

को तपोनिष्ठ जान लोग अन्न-पान पहुंचाने लगे, परन्तु तो भी यथासमय आहार न मिलने से यह सब परिवार भूखों मरने लगा । इस परम कष्ट को धैर्य्य से सहन करते हुये ब्राह्मण ने कालक्षेप किया, किन्तु अपने कर्त्तव्य में तिल भर भी अन्तर न आने दिया । दुःख पर बड़े-बड़े मोटे हिल जाते हैं, भार्या पेट की मार से स्वेच्छाचारिणी हो जाती है, पुत्र वा पुत्रियाँ साथ छोड़ अपने सुभीते की राह लेती हैं, माताओं ने भूख के मारे अपने नयनों के तारे एक मात्र बालक बेच दिये वा मार्ग में पटककर आत्महत्या कर ली । सच कहा है—

वासुदेव जरा कष्टं कष्टं निर्धन जीवनम् ।
पुत्रशोक महाकष्टं कष्टात्कष्ट तरं क्षुधा ॥

अर्थात् प्रथम तो बुढ़ापा ही दुःखदाई है, निर्धन जीवन और भी दुःखदाई है, पुत्र का स्मरण महा क्लेश है और क्षुधा तो सबसे महान् कष्ट है । गांधारी ने सौ पुत्रों का मरण देखने पर भी भूख से विह्वल हो भोजनोपाय किया था तो इस दीन ब्राह्मण का परिवार विचलित हो जावे तो क्या आश्चर्य्य है ? किंतु ऐसा नहीं हुआ । ब्राह्मण अपने नियतधर्म्मपर सकुटुम्ब स्थिर रहा । यद्यपि वह और उसकी पत्नी क्षुधार्त्त रहने से सूखकर ठठरी रह गई; पर उनका आत्मा बलवान् था अतएव वे अपने व्रत से न डिगे। इसी प्रकार पुत्र वा पुत्रवधू ने भी मर्य्यादा रक्खी । अस्तु इसी भूख समय में एक दिन सेर भर जौ ब्राह्मण को प्राप्त हुये, उसने उनके सत्तू बनवाये और पाव-पाव सेर स्त्री पुत्रादि को बाँट दिये और पाव भर अपने लिये रख छोड़े कि इतने में—

कृत जप्याह्निकास्तेतु हुत्वा चाग्नि यथाविधि ।
कुडवं कुडवं सर्व्वे व्यभजंत तपस्विनः ॥

—अश्वमेध प० अ० ९० ।

अर्थ—जप और अग्निहोत्र करके ब्राह्मण भोजन करने के विचार में ही था कि इतने में कुरीज़ में मुल्ला की भाँति द्वारपर कुछ आहट हुई। जान पड़ा कि कोई अतिथि अभ्यागत है। यदि और कोई होता तो ऐसे समय कुढ़ जाता और किवाड़ न खोलता, परन्तु कपोती इसके विरुद्ध प्रसन्न हुआ। उसने सहर्ष द्वार खोल दिया और अतिथि को बड़े आदर से कुटी में लिवा लाया। ब्राह्मण को अर्घपाद्य से अर्चित कर भोजन के लिये निवेदन किया अतिथि के आने से छै दिन का भूखा सारा परिवार खानेसे रुक गया। आर्य-धर्म शास्त्र की यही मर्यादा है कि अभ्यागत को जिवाने के पीछे घरवाले भोजन करें। कपोती ने अपने भाग के सत्तू उस अतिथि के भोजनार्थ परोस दिये जिन्हें वह रखते ही चाट गया और उसका पेट न भरा। अतिथि की और इच्छा देख कपोती विचारने लगा कि अब कहाँ से दिया जाय जो यह तृप्त हो। कपोती को चिन्ताकुल देख उसकी वीर पत्नी ब्राह्मणी ने कहा-"महाराज, क्यों चिन्ता करते हो? मेरा भाग भी दे दीजिये।" यह सुन कर ब्राह्मण चहुँक उठा। वह जानता था कि ब्राह्मणी छै दिन की भूखी है। कपोती कहने लगा कि-"भार्य्ये, एक तो तुम वृद्ध हो तिस पर आपत्काल में यथा समय अन्न न पाने से कृश हो रही हो। तुम्हारी आकृति पर श्रम और ग्लानि भासित होतीहै। माँस तुम्हारे शरीर पर नहीं रहा, केवल अस्थि चर्म अवशिष्ट है और तुम उठने बैठनेमें कंपित-कलेवर होरही हो, अतएव तुम्हारा भाग देते हुये मुझे ग्लानि होती है। पखेरू और दूसरे जानवरों के मादा भी बचाने और पालन करने योग्य होते हैं, कारण कि सन्तानोत्पत्ति की भूमि नारी है। उसी से नरों का पालन होता और लोक परलोक सम्बन्धी कार्य्य चलते हैं।

न॰ ा ि कर्मतो भार्य्यां रक्षको यो नृपः पुमान्।
अयशो महादा प्नोति नरकांश्चैव गच्छति॥

अर्थ—जो पुरुष स्त्री की रक्षा करने में असमर्थ होता है वह बड़ा अपयश पाता है और नरकों में भेजा जाता है। यह सुन-कर वृद्ध तपस्वी ने उत्तर दिया—

इत्युक्त्वा सा ततः प्राह धर्मार्थौ नौ समौ द्विज।
सक्तु प्रस्थ चतुर्भागं गृहाणेमं प्रसीद मे॥
सत्यं रतिश्च धर्मश्च स्वर्गश्च गुणनिर्जितः।
स्त्रीणां पतिसमाधीनं कांक्षितं च द्विजर्षभ॥
ऋतुर्माता पिता बीजं दैवतं परमं पतिः।
भर्त्तुः प्रसादान्नारीणां रति पुत्र फलं तथा॥
पालनाद्धि पतिस्त्वं मे भर्त्तासि भरणाच्च मे।
पुत्रदानाद्वरदास्तस्मात्सक्तून प्रयच्छ मे॥

अर्थ—हे द्विजश्रेष्ठ! मेरा और आपका धर्म में साथ है। स्त्री के व्रत धर्म पति अधीन होते हैं। ऋतु माता पिता जब परम देवता पति धर्मशास्त्र में कहा है। भक्ति ही के प्रसाद से स्त्री को सुख और पुत्र लाभ होता है। मेरा आप पालन करते हैं इस कारण पति, और भरण करने से भर्त्ता हैं, और पुत्र दान देने से वरदायी हैं। सो कृपया सत्तुओं का देना स्वीकार करें। अभ्यागत का सद् गृहस्थ के घर से असंतुष्ट जाना शास्त्र-विरुद्ध है, अतएव मेरे जीवन मरण का विचार छोड़ अतिथि को तृप्त कीजिये।

वस्तुतः विदुषी ब्राह्मणी का यह उत्तर धर्म सहोदर था। अब ब्राह्मण को कोई बात दोहराने योग्य प्रतीत न हुई। सचमुच धर्म में स्त्री पुरुष का संग और साझा है, इसी कारण यह अर्धाङ्गिनी कहाती है। विवाह के समय होमाग्नि के निकट

चार भलेमानसों में बैठ स्त्री-पुरुष यही प्रतिज्ञा करते हैं कि हम दोनों एक मन होकर रहेंगे, परस्पर एक दूसरे की प्रसन्नता से कार्य करेंगे और धर्म के कामों में समानता से भाग लेंगे। पति ने अपना आहार अतिथि को खिला दिया है, वह अब छै दिन तक अपने नियम के अनुसार भोजन नहीं कर सकता, पति भूख से व्याकुल रहे स्त्री पेट भर कर सुख की नींद सोवे, यह बात पतिव्रता ब्राह्मणी को किसी प्रकार स्वीकार न हुई। उसने अपना भाग अतिथि को खिला दिया परन्तु इतने पर भी अतिथि की उदर-दरी न भरी, तब ब्राह्मण और ब्राह्मणी सोच में पड़े। माता पिता को सोच विचार में डूबा जान कर पितृभक्त आज्ञाकारी पुत्र भी अपना भाग देने लगा। उसने इस बात पर किञ्चित् ध्यान न दिया कि मेरा प्राण रहेगा वा पलायन कर जावेगा, कल माता से 'मा' कह कर पुकारने की शक्ति रहेगी वा नहीं। पिता का प्रण रहना चाहिये। पिता ने जिस अतिथि को सादर बुलाया वह कुटी से भूखा जायगा, यह बड़ी ग्लानि और मानहानि की बात है। पिता का प्यारा पुत्र कहने लगा—

सक्तू निमान् प्रगृह्य त्वं देहि विप्राय सत्तम।
इत्येवं सुकृतं मन्ये तस्मादेतत् करोम्यहम्॥
भवान्हि परिपाल्योमे सर्वदैव प्रयत्नतः।
साधूनां कांक्षितं यस्मात्पितुर्वृद्धस्य पालनम्॥
पुत्रार्थो विहितो ह्येष वार्द्धक्ये परिपालनम्।
श्रुतिरेषाहि विप्रर्षे त्रिषु लोकेषु शाश्वती॥

अर्थ—इन सत्तुओं को भी जो मेरे भाग के हैं अतिथि को खिला दीजिये, इसको मैं परम सुकृत मानता हूँ। आपने मुझे पाला और सदा रक्षा की है, यह शरीर आपही का है, वृद्ध

पिता की आज्ञा पालन करना शिष्ट सम्मत है, पुत्र के होने का प्रयोजन यही है कि वह वृद्ध पितरों की सेवा करे, श्रुति निरन्तर तीनों लोक के लिये यही उपदेश करती है।

पुत्र की अमायिक भक्ति और ज्ञान भरे वचन सुनकर वृद्ध पिता की आँखें डबडबा आईं। वह सोचता है कि आज आहार न मिलने से पुत्र को आगामि षष्ठ काल तक २ दिन का अन्तर पड़ेगा, इस बीच यदि चिरंजीवि को कुछ अनिष्ट हुआ तो मैं पुत्रघ्न कहाकर किस प्रकार मुँह दिखाऊँगा और यह ब्राह्मणी किसका मुँह देख जीवन धारण करेगी? बुढ़ापे में एक मात्र अन्धों की एक लकड़ी है, पुत्रवधू की जवानी की नदी पार करने को यही नाव है और अपने वंश की भावी उन्नति का यही मार्ग है। पुत्र की अमंगल वार्ता जान उसकी वधू भी प्राण विसर्जन करेगी संसार में मेरा अपयश होगा। मेरी आँख का तारा क्या मुझे छोड़ जायगा! मैं किस प्रकार प्राण रक्खूँगा? बूढ़े की आँखों के आगे अँधेरा छा गया। पुत्र-निधन वार्ता के स्मरण ने उसे फिर एकाएक चौंका दिया मानों स्वप्न देख कर नींद खुली हो। बुड्ढे ने आँख उठा कर देखा तो पुत्र सत्तू लिये हाथ जोड़े खड़ा है। वह उसे आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा। पुत्र को अक्षत देख पिता का ढाढ़स आया और ज्ञान का तेज उसके हृदय पर फिर अपना प्रभाव करने लगा। तपस्वी को धीरज हुआ। ज्ञानियों पर भी कभी अज्ञान आक्रमण करता है, परन्तु वे क्षणभर ही में सचेत हो जाते हैं, क्योंकि उनका आत्मा बलवान् होता है। यह आत्मिक उन्नति प्राचीन समय में हमारे देश में बहुत थी। यदि ऐसा न होता तो राम कभी वन को न जाते एवं लक्ष्मणजी उस घोर विपत्ति में उनका साथ न देते, न हरिश्चन्द्र अपने मृत पुत्र को गोद में लिये प्यारी भार्य्या से कर माँगते। अस्तु, पिता ने चैतन्य हो पुत्र को आशीर्वाद

हुए कहा कि–"प्राण प्रिया, दीर्घायु होकर सुपुत्रोंको उत्पन्न करनेवाले हो। पुत्र से अन्य पुत्रों की उत्पत्ति होने पर पिता कृतकृत्य होता है किन्तु तेरे भूखे रहने से बलक्षय होगा और आगामि कुल-वृद्धि रुक जावेगी। बालकों की भूख बलवती होती है। मैं बूढ़ा हूं मुझे क्षुधा बहुत नहीं सताती। मैं चिर-काल से आहार पाने में उपेक्षा करता आया हूँ, इस कारण भूख प्यास रोकने में सहनशील हो गया हूँ। तेरे रहते हुए मुझे मरने का भय और सोच नहीं।"

पाठक विचारिये तो सही, कितनी कठिन बात है कि पिता अपने पुत्र को नहीं नहीं अपने हृत्पिंड को भूखा देखे और प्राणों से अधिक प्यारे का भाग सहसा किसी को दे दे! पशु पक्षी तक अपने बच्चों को चराते हैं, क्या पुरुष क्या स्त्री, सारा जगत् मोह-सरिता में गोते खा रहा है। पिता को धर्म-संकट में पड़ा देख पुत्र ने फिर कहा—

अपत्यमस्मत पुंसस्त्राणात्पुत्र इतिस्मृतः।
आत्मापुत्रस्मृतस्तस्मा त्राह्यात्मानिमहात्मना॥

अर्थ—हे पिता! मैं तेरा संतान हूँ, पिता की रक्षा करने ही से वह पुत्र कहाता है आत्मा ही पुत्र कहा है और मैं तेरा आत्मा हूं, इस कारण आत्मा ही से आत्मा का त्राण होना चाहिये।

यह धार्मिक बचन पिता के मन में बैठ गया। उसका आत्मा पूर्व से जाग्रत था। दशरथ ने मोह ममता छोड़ यज्ञ की रक्षा के लिए विश्वामित्र के साथ राम को कर दिया था तो इस तपस्वी ज्योती ने भी प्राणोपम पुत्र का बारह दिन तक क्षुधा-पीड़ित रहना स्वीकार किया किन्तु अतिथि को संतुष्ट करने से मुँह नहीं मोड़ा। "हे सते हे सते! पुत्र का भाग भी अभ्यागत को खिला दिया किन्तु अतिथि न जाने कब का भूखा था, यह भी

सत्तू पोंछ कर खा गया पर उसकी भूख न गई"। कपोती लज्जित और बिस्मित हुआ। अतिथि को तृप्त करना धर्म है जिसके लिए ब्राह्मण अपना और अपनी प्रिय भार्या का भाग दे चुका है, प्राणप्रिय पुत्र की होनहार गति की कुछ भी चिन्ता न करके उसका भाग भी खिला दिया है। सारा परिवार किस प्रकार दिन कटेगा, इसका भी उसे कुछ सोच नहीं है। सोच है तो केवल इस बात का कि अतिथि भूखा न रहे। यही बात उसे व्याकुल कर रही है। धन्य तपस्वी का हृदय! कपोती यही सोच रहा था कि उसकी साध्वी पुत्रवधू सन्मुख आकर उपस्थित हुई। लज्जा से उसकी दृष्टि नीची है सत्तू की पोटरी हाथ में है, नम्रता से शरीर झुक रहा है, न उसको इस समय भूख है न आगे भूख लगने की चिन्ता है। पतिव्रता तपस्वीनी देख चुकी है कि उसके सास ससुर ने अपना अपना भाग अतिथि को सानन्द खिला दिया है, पति-देव ने भी देह-स्नेह छोड़ अपना हिस्सा जिमा दिया है, फिर यह साध्वी कब रह सकती है? वह भी अपने पति की अनुगामिनी है, सास ससुर की मर्यादा पर चलनेवाली है। पुत्र-बधू ने हाथ जोड़ कर कहा कि—'ये पाव सेर सत्तू मेरे पास हैं इन्हें भी अतिथि को खिला कर सन्तुष्ट कीजिये।' वृद्ध स्वसुर उसकी आकृति देख दया के मन्दिर में जाता है, सहसा कुछ कहने को समर्थ नहीं होता। जो नाना प्रकार की खाद्य वस्तुओं से लाड़ लड़ाने योग्य है, उसका आहार हरण कर दूसरे को देना कैसे कष्ट की बात है। अपनी बहू बेटी का खिलौना भी अन्य को देते मनुष्य का मन नहीं पुसाता फिर भूखी का भोजन छीन कर अपरिचित को दे देना कैसा नृशंह और कठोर व्यापार है, विशेषतः स्त्री जाति का जो अपने आश्रय हैं। पुत्रबधू के कहने पर ब्राह्मण सम्मत न हुआ। उसने कहा किः—

वातातप विशीर्णांगीं त्वाविवर्णां निरीक्ष्यवै ।
कर्शितां सु व्रताधार क्षुधाविह्वल चेतसम् ॥
कथं सक्तून गृहीष्यामि भूत्वा धर्मेऽपघातकः ।
कल्याण वृत्ते कल्याण नैवत्वं वक्तुमर्हसि ॥
षष्ठे काले व्रतवतीं शौचशीलतपोन्विताम् ।
कृच्छ्रवृत्ति निराहारां द्रक्ष्यामि त्वां कथं शुभे ॥
बाला क्षुधार्त्ता नारी च रक्ष्यात्वं सततं मया ।
उपवास परिश्रांता त्वं हि बांधवनन्दिनी ॥

अर्थ—हे प्यारी बधू धूप से कुम्हलाई हुई लज्जावंती वनस्पति के समान मैं तुझको उदास देखता हूँ । व्रत आचार करते करते तेरा भी तन क्षीण हो गया है । भूख से तेरा चित्त विह्वल लज्जित होता है । निराहार कृच्छ् व्रत करने से तेरे हाड़ निकल आये हैं । मांस के सूखने से हाथों की रगें खुल रही हैं बाला, क्षुधार्त्त और नारी होने से निरन्तर दयापात्री है, तिस पर छै दिन के उपवास से परिश्रान्त हो रही है । मैं धर्म का घातक हो कर किस प्रकार तेरे सत्तुओं को ग्रहण करूँ ? तुझको आग्रह न करना चहिये ।

इसके उत्तर में पुत्रबधू ने कैसा धर्म सम्मत वचन कहा है जो हमारी प्यारी बहनों के ध्यान देने के योग्य । वे इस आदर्श में अपना मुख देखें और विचार करें कि हमारे बीच धर्म का भाव कितना है ? हम कहाँ तक सास ससुर की आज्ञा मानती हैं और कितना पति के कहे में चलती हैं ?

गुरोर्मम गुरुस्त्वं वै यतो दैवत दैवतम् ।
देवातिदेवः तस्मात्त्वं सक्तूनादत्स्वमे प्रभो ॥

देहः प्राणश्च धर्मश्च शुश्रूषार्थमिदं गुरो।
तव विप्र प्रसादेन लोकान्प्राप्स्यमहे शुभाम् ॥

अर्थ—बहू ने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया कि हे महाराज! आप मेरे गुरु के गुरु हैं (यह उनका संकेत पति के ओर था अर्थात् आप मेरे पति के पूज्य अथवा गुरु होने से गुरु के गुरु हैं), इसी प्रकार देवताओं के देवता हैं। हे गुरो, देह और प्राण सब आपकी सेवा के लिए हैं, धर्म का फल भी आपके निमित्त है, आपकी प्रसन्नता ही से उत्तम लोकों की मुझे प्राप्ति है, इस कारण सत्तू अतिथि को खिला दीजिये।

प्रेम भक्ति एवं धर्म से भरे बहू के वचन सुन कर ससुर का हृदय उमड़ आया। उसकी आँखों से पवित्र प्रेमाश्रु चलने लगे और कण्ठावरोध हो गया। बृद्ध ने अपने को बहुत सँभाल कर गद्गद् कठ से इतना ही कहा कि—"तू धर्म बृत्ति और बड़ों की सेवा ही के लिए अमायिक भाव से स्थिर है। तुझे प्राणोंसे धर्म अधिक प्रिय है, इस कारण सत्तू स्वीकार करता हूं।" यह कह कर बधू के दिये सत्तू अतिथि को खिला दिये। उसने सन्तुष्ट हो कर बहुत आशीर्वाद दिया। ब्राह्मण के परिवार की देवता और ऋषिओं ने प्रशंसा की धर्मज्ञ पुरुषों ने विमानारूढ़ होकर उस पर पुष्प-बृष्टि की।

पाठक! विचारिये, प्राचीन समय कैसा था? धर्म को प्राणों से भी अधिक चाहनेवाले लोग उपस्थत थे। उनकी प्रतिष्ठा और प्रशंसा भी शुद्ध भाव से लोग करते थे। पुष्प-बृष्टी और साधुवाद से धर्मात्मा का मान! क्या अद्भुत समय था जब भारत-जननी की गोद में ऐसे पुरुष रत्न खेला करते थे। पुत्र धर्म के लिए प्राण देने को तत्पर हैं, माँ खड़ी देख रही है,

उसका पेट मुचता है पर पति के आगे चूं नहीं करती। अब वह समय है कि बेटे को बाप सुधारना चाहता है तो माँ मुँह देती है, कहती है "मेरे को बायदण्डी ही रहने दो। नहीं पढ़ता तो अनपढ़ा ही भला है, गुरूजी मारिये नहीं।" जब विद्या वा साधारण चाल-चलन की यह दशा है तो सच्चा धर्मात्मा बनना कितना कठिन है। भारत धार्मिक सुपुत्रों से वञ्चित हो गया। यहाँ वालों का जीवन मरण हो रहा है और मरना तो इनको आता ही नहीं है। देश वा धर्म के वास्ते पूर्वजों का प्राण देना आता था। ऐसा दृष्टान्त इस समय पृथ्वी के आतिथ्य सत्कार में विरला ही कदाचित् मिले। तीन सौ बरस हुए रूम का बादशाह ईरान, जब अपनी प्रजा की जाँच के लिये वेष बदल कर, निकला था तो क्षुधार्त्त होने पर उसने बड़े बड़े महाजनों से भिक्षा के लिये कहा, परन्तु किसी ने उसकी दीन दशा पर दया न की। अन्त को वह एक ग़रीब किसान के घर गया और कहा कि मैं थक गया हूं और भूख के मारे अधमरा हो रहा हूँ, कृपा करके मुझे आज की रात यहाँ ठहरने की आज्ञा दीजिये। फलतः किसान ने उसका आतिथ्य सत्कार किया जिसके बदले बादशाह ने जन्म भर उसके परिवार का पालन किया। यूनान के प्रसिद्ध विद्वान् सोलन ने लेडिया के बादशाह क्रीसस से एक लड़के की इस बात की बड़ी प्रशंसा की थी कि आरबोस निवासी दो सगे भाई बैल न मिलने पर आपही अपनी माँ की गाड़ी मंदिर तक खींच ले गये। यहाँ के इतिहास बतलाते हैं कि भारत के सपूतों ने माता पिता के वचन और व्रत पालन के लिये जानें दे दीं। धन्य आर्य्यभूमि ! और धन्य आर्य्यशिक्षा !!

२२—धार्मिक राज्य

एक मुसलमान बादशाह ने हिन्दुस्तान के एक दक्षिणी राज्य पर चढ़ाई की और राज्य के धुर पर पहुँच कर अपना एक दूत राजा के पास भेजा और यह संदेशा कहला भेजा कि-"या तो तू अपना राज्य खाली कर दे या मेरे साथ युद्ध करने को तैयार हो जा।" राजा ने यह संदेश सुन दूत से कहला भेजा कि—"हम राज्य को अपने सुख के लिये नहीं करते हैं किन्तु प्रजा के सुख के लिये करते हैं और नितान्त धर्मपूर्वक ही राज्य-कार्य होता है। यदि इसी भाँति तुम्हारा बादशाह करना स्वीकार करे तो हम राज्य को छोड़ने के लिये तैयार हैं, हम लड़कर मनुष्यों का नाश नहीं करना चाहते।" दूत ने यह सम्पूर्ण वृत्तान्त जाकर बादशाह से कहा। बादशाह उस राजा की न्यायोक्त वार्त्ता सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुआ और उसके हृदय में उस राजा से मिलने की अभिलाषा उत्पन्न हुई और वह स्वयम् राजा की सभा में आकर उपस्थित हुआ। सभा लगी हुई थी और दो कृषकों का अभियोग प्रविष्ट था। अभियोग यह था कि एक कृषक ने दूसरे कृषक के हाथ अपनी कुछ भूमि विक्रय की थी, कुछ काल के उपरान्त उस क्रय की हुई भूमि में एक बड़ा भारी कोष निकला, तब तो मोल लेनेवाला कृषक बेचनेवाले से कहने लगा कि आपकी भूमि में एक कोष निकला है सो वह अपना कोष आप चल कर ले लीजिये, क्योंकि हमने तो केवल भूमि मोल ली है न कि कोष। इस पर विक्रय करनेवाला कृषक कहता है कि यदि भूमि बेचने के पहिले हमारी भूमि होते हुये कोष निकलता तो निःसन्देह वह मेरा कोष था, परन्तु जब हमने वह भूमि आपको बेच दी तब वह कोष भी आपका ही है। राजा ने इन दोनों वादी प्रति-वादियों का यह निर्णय किया कि—"तुम दोनों में जिस किसी

के लड़का और जिस किसी के लड़की हो परस्पर उनका ब्याह कर यह सम्पूर्ण कोष उन लड़के लड़की को दे दो।" बादशाह इस न्याय को देख दंग हो गया। राजा ने बादशाह से पूछा कि—"कहिये, आपकी राय में यह न्याय कैसा हुआ?" बादशाह ने कहा-"यह बिलकुल वाहियात हुआ।" राजा ने कहा—"भला, आप इसे कैसा करते" बादशाह ने कहा कि— "हम तो इन दोनों को कारागार में भेज सम्पूर्ण कोष अपने कोष में भेज देते।" यह सुन राजा ने पूछा—"भला आपकी राज्य में पानी बरसता है, जाड़ा गर्मी आदि ऋतुयें ठीक-ठीक समय पर होती हैं, अन्न आदि उत्पन्न होते हैं?" बादशाह ने कहा—"ये सब होता है।" राजा ने पूछा कि—"आपकी राज्य में केवल मनुष्य ही रहते हैं या और कोई पशु पक्षी आदि भी रहते हैं?" बादशाह ने कहा—"सब जीव रहते हैं।" तब राजा ने कहा कि "उन्हीं पशु पक्षियों के भाग्य से चाहे आपके यहाँ वर्षा, जाड़ा, गर्मी, अन्न आदि भले ही होता हो; नहीं तो आप वा आपके सदृश आपकी प्रजा के भाग्य से तो वहाँ वर्षा, जाड़ा, गर्मी अन्न आदि होने की मुझे आशा नहीं है।

२३-अहिंसा

जिस समय महाराणी कुन्ती दुस्साशन के अत्याचार करने पर अपने पाँचों पुत्रों को ले राजा विराट के एक ग्राम में रही थीं। उस समय वहाँ एक दानव इस प्रकार का लगा करता था जो सम्पूर्ण ग्राम के ग्राम नष्ट किये देता था यह उपद्रव देख ग्रामवालों ने यह नियम कर लिया था कि हममें से एक नित्य आपके पास आ जाया करेगा, पर आप ऐसा उपद्रव न

करें कि एक ही दिन में ग्राम का ग्राम नष्ट कर दें और ग्रामवालों ने अपनी-अपनी बारी क्रमपूर्वक बाँध ली थी। एक दिन एक बुढ़िया ब्राह्मणी की, जिसके एक ही बेटा था, बारी आई और महाराणी कुन्ती उस दिवस किसी प्रयोजनार्थ बुढ़िया के यहाँ गई। बुढ़िया को रोता देख महाराणी कुन्ती ने उससे रोने का कारण पूछा। बुढ़िया ने सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। महाराणी कुन्ती ने बुढ़िया को अत्यन्त दुखी देख कहा कि—"तेरे एक ही बेटा है पर मेरे पाँच हैं आज मैं तेरे बेटे के बदले अपने बेटे को भेज दूँगी। तू दुःखी न हो।" पर बुढ़िया को विश्वास न आता था कि भला ऐसा कौन होगा कि जो अपने बच्चे को दूसरे के बच्चे के लिए मरवा डाले। बुढ़िया सोच ही रही थी कि इतने में महाराणी कुन्ती ने अपने पाँचों पुत्रों को बुला यह वृत्तान्त कहा। पुत्रों में से प्रत्येक जाने को उद्यत था। महाराणी कुन्ती ने भीम को आज्ञा दी। भीम गदा ले दो घंटे पहले से जा विराजे।

ग्रामवालों का यह भी नियम था कि जब दानव की पूजा के लिए बहुत से नर नारी घी गुड़ बताशे छोटी-छोटी पूड़ियाँ गुलगुले आदि ले जाते थे और ये भी सबके सब जिस जगह दानव आता था पहले ही से जाकर एकत्र हो रहते थे। भीम भी वहीं पहुंचा और उन सबसे पूछा—"यहाँ सब क्यों बैठे हो?" लोगों ने उत्तर दिया कि—"हम लोग यह सब सामान ले दानव को पूजा करने आये हैं।" भीम ने कहा—"हम उसके खाने के लिए आये हैं सो तुम लोग क्यों व्यर्थ बैठे हो? ये सामान सब हमें क्यों न खिला दो? जब दानव हमें खायेगा तो यह सामान भी उसके पेट में पहुँच जायगा।" गाँव वालों ने वैसा ही किया। भीम ने सम्पूर्ण घी गुड़ बताशे पूड़ी गुलगुले खाये और ज्यों ही

दानव आया तो उसका एक पैर इस हाथ में, एक पैर उस हाथ में पकड़ उसकी टाँगें फाड़कर गदा उठा गर्जता हुआ माता के चरण कमलों को आकर प्रणाम कर कहा—"माता, उसे तो मैं जन्म भर के लिए सैंत आया।" माता ने आशीर्वाद दिया, परन्तु बुढ़िया के हृदय में यह शंका उत्पन्न हुई कि भीम मौत के भय से भाग आया है, अतः दानव कोपित आता होगा और मेरे बच्चे को खा जायगा। महाराणी कुन्ती ने कहा—"बुढ़िया तेरे ये क्या विचार हैं ये सिंहनियों के बच्चे हैं। भला तुझे यह मान्य नहीं होता कि जो दूसरे के बच्चे के लिए अपना बच्चा भेजे उस पर कभी आँच आ सकती है?" बुढ़िया आश्चर्य-चकित रह गई।

आज कल बकरा, भेंड़ा, सुवर, मुर्गा आदि के बच्चे मरवा कर लोग अपने बच्चों का कल्याण चाहते हैं। हाय री भारत की अविद्या! कहाँ महाराणी कुन्ती सरीखी मातायें, भीम सरीखे पुत्र और कहाँ आज घर घर हत्यारे पैदा हो भारत में खून खच्चर कर रहे हैं!! इन मूढ़ों को यह नहीं सूझता कि जब एक अँगुली में दर्द होता है तो चाहे कितने ही उपाय करो दूसरी अँगुली में तब्दील नहीं हो सकता, तो दूसरे के बच्चे कटाने से हमारा बच्चा कैसे अच्छा हो जायगा? अच्छा तो दूर किनार, हाँ मर अवश्य जायगा क्योंकि कहा है—

जो और को चेतै बुरा, उसका भी होता है बुरा।
जो और के मारे छुरी, उसके भी लगता है छुरा॥

———

२४—अहिंसा ।

यूनान के बादशाह के यहाँ यह नियम था कि यदि कोई मनुष्य भारी अपराध करता था तो किसी सिंह को पिंजड़े में बन्द कर कई दिन भूखा रख उस भूखे सिंह के सामने उस पुरुष को ला सिंह उस पर छोड़ सिंह से खिला दिया जाता था। एक मनुष्य ने बादशाह के यहाँ एक बड़ा भारी अपराध किया और वहाँ से भग खड़ा हुआ और भाग कर वह एक बड़े भयङ्कर बन में जा छिपा। उस बन में एक सिंह जिसके पैर में एक बड़ा बिकराल काँटा लग जाने के कारण उसका पैर पक गया था और वह बेचारा अत्यन्त ही दुखित था पैर उठाये मुख मलीन किये खड़ा था। इस अपराधी ने चुपके-चुपके पीछे से जा शेर के पैर का काँटा निकाल दिया। शेर को इतना सुख हुआ कि जैसे कोई जान निकलते हुये जान डाल दे। शेर ने आँख उठाकर उस पुरुष की ओर देखा और वह उसी के पीछे पीछे बन में फिरने लगा। एक दिन वह अपराधी उस बन से पकड़ आया। बादशाह ने कहा—"एक शेर जङ्गल से पकड़ लाओ।" दैवगति, वही शेर पकड़ आया और उने कई दिवस भूखा रख उस अपराधी को शेर के सामने ला शेर उस पर छोड़ा गया। शेर बिगड़ता हुआ अपराधी पर टूटा। पर पास जाकर उस अपराधी को पहिचाना तो शेर उसके चरणों पर लोटने लगा। धन्य हो ऋषि पातञ्जलि, आपने क्या ही सच कहा है—

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर त्यागः।

२५—मांस-भक्षण।

एक चौबेजी महाराज एक मुसलमान तहसीलदार साहब के यहाँ मिलने के लिये गये। तहसीलदार साहब बहुत खुश इख़्लाक़ और हँसमुख थे और मज़हबी तहक़ीक़ात में भी उनकी बड़ी रुचि थी। आपने चौबे जी से वार्त्तालाप करते हुये यह प्रश्न किया कि—"चौबेजी, आप अपने को देवता और हमें म्लेक्ष क्यों कहते हो?" यह सुन चौबेजी महाराज बोले कि—"जमना मैया की जै बनी रहे, यजमान तुम मिट्टी खाते हो इस लिए म्लेक्ष कहलाते हो।" तब तो तहसीलदार साहब ने हँस कर पूछा कि—"चौबेजी, मिट्टी किसको कहते हैं?" चौबेजी ने कहा—'जै हो जमना मैया की, यजमान मिट्टी गोश्त को कहे हैं।" तहसीलदार साहब ने उलटकर जवाब दिया कि—"चौबेजी, गोश्त तो तुम भी खाते हो क्योंकि शाक भाजी और अन्न वग़ैरह में तुम भी जीव मानते हो।" इसपर चौबेजी ने कहा कि—"यजमान की जै बनी रहे, हम जो अन्नादि खाते हैं वह शुद्ध जल से उत्पन्न होता है और तुम जो मांस खाते हो वह मूत से पैदा होता है। बस, हम में और आप में इतना ही भेद है, जितना मूत्र और जल में। इसीलिए हम देवता और आप म्लेक्ष हैं।"

२६—हिम्मत और धुनी।

एक बार एक सियार ने किसी को कहते हुये यह शब्द सुन लिया कि—'हिम्मत मर्दा मदद खुदा।" उसने इसे अपना आदर्श बना लिया और हर बात में वह अपनी स्त्री सियारिन से कह दिया करता था कि—"हिम्मत मर्दा मदद खुदा।'

कुछ दिनों के बाद उसकी स्त्री सियारनी गर्भिणी हुई। उसने अपने पति सियार से कहा कि—"अब मुझे कहीं ऐसे स्थान में ले चलो जहाँ मैं अपने बच्चों को अच्छी तरह से उत्पन्न करूँ और मुझे सुख मिले।" सियार ने सियारिन को ले जाकर एक सिंह की सथरी में जहां सिंह ने अपने आराम के लिए फूस फास बिछा रक्खा था, ठहराया और कहा—"तू यहां अपने बच्चे उत्पन्नकर।" शेर कई दिन तक न आया। इतने में सियारिन ने बच्चे उत्पन्न किये। एक दिन सियार और सियारिन मए अपने बच्चों के बैठे ही थे कि इतने में सिंह डहकता हुआ आया सियार ने शेर को आते देख अपनी स्त्री सियारिन से कहा कि—"अपने बच्चे शीघ्र उठा कर चल, जल्दी भग चल।" सियारिन ने कहा कि—"आज वह 'हिम्मतमर्दां ममद खुदा' कहां गया?" सियार को बड़ी शर्म मालूम हुई और वह अपने आगे के दोनों पैर ऊपर को उठा खड़ा हो गया। शेर इसे देख हैरान था कि यह कौन है! यद्यपि मैं रात दिन जंगल ही में रहता और जंगल का राजा हूँ पर ऐसा जन्तु मैंने आज तक नहीं देखा कि इतने में सियार अपनी स्त्री सियारिन से बोला कि—"अरी बनककरी!" सियारिन ने उत्तर दिया—"कहो, सब जग के बैरी!" यह शब्द सुन सिंह के होश हवास उड़ गये और वह सोचने लगा कि सब जग में तो मैं भी हूँ अरे यह कोई बड़ा ही बलवान् जन्तु है। ऐसा समझ सिंह भग खड़ा हुआ। सियार के सन्मुख से सिंह को भगते देख जंगल भर के जीवों को आश्चर्य हुआ कि आज गज़ब हो गया कि सियारों के सन्मुख से सिंह भगने लगे। एक बन्दर जो यह चरित्र देख रहा था, बनराज शेर के सन्मुख जा हाथ जोड़ बोला कि—"महाराज, यह सियार है, जिसके सामने से आप भगे जाते हैं।" शेर ने कहा—"तू बिलकुल झूठ कह रहा है, क्या सियार हमने देखे

नहीं ? सियार ऐसा नहीं होता।" बन्दर ने कहा—"महाराज, वह ऊपर को पैर उठाये खड़ा था। आप चलिये वह अभी भाग जायगा।" बंदर के बहुत कुछ समझाने पर शेर ने बंदर से कहा-"अच्छा तू आगे चल तो चलूं।" बंदर तो यह निश्चय जानताही था कि वहाँ सियार है, वह निर्भय आगे चला। सियार ने जाना कि यह बंदर जानका घातक हुआ, लेकिन अपने उस वाक्य को याद कर कि—"हिम्मत मर्दा ममद खुदा" फिर खड़ा हो गया। जब बन्दर और शेर दोनों कुछ समीप पहुँचे तब फिर सियार ने कहा—"अरी बन कूकरी।" सियारिन ने कहा-"कहो, सब जग के बैरी।" सियार ने कहा-"तेरे बच्चे क्यों रोते हैं ?" सियारिन ने कहा-"मेरे बच्चे शेर खाने को मांगते हैं।" वनराज शेर यह सुन कर फिर भग खड़ा हुआ। बंदर यह दशा देख हैरान था कि जब शेर इस सियार के सन्मुख से भागता है तो हम लोगों का कैसे गुज़ारा होगा, अतः बन्दर फिर शेर के पीछे पड़ा और हाथ जोड़कर बोला कि "महाराज, आप व्यर्थ भाग उठते हो। वह निश्चय सियार है, आपके चलने से ही भग जायगा।" सिंह ने कहा कि-"सियार के बच्चे कहीं सिंह खाने को माँगते हैं?" बन्दर ने कहा-"महाराज, यही तो गीदड़ भबकी है।" अतः शेर को बन्दर ने जब बहुत समझाया तो शेर ने कहा—"अबकी बार हम तब चलेंगे जब मेरी पूँछ से तू अपनी पूँछ बाँध और तू आगे चल। नहीं तू जात का बन्दर बड़ा चालाक, तेरा क्या ठीक। मुझेवहाँ मौत के मुख में झोंक भग खड़ा हो।" बन्दर को कुछ भय तो था ही नहीं, उसने वैसा ही किया और दोनों शेर की सथरी के ओर चले। जब सियार ने इन दोनों को इस भांति आते देखा तो कहा---"अबके प्राण गये, अब नहीं बच सकता।" परन्तु इसे अपनी कहावत फिर याद आई कि-"हिम्मत मर्दा ममद खुदा।" अतःयहफिर उसी भांति

खड़ा हो गया और सियारिन से बोला—"अरी बनकूकरी!" सियारिन ने कहा—"कहो, सब जग के वैरी!" सियार ने कहा—"तेरे बच्चे क्यों रोते हैं?" सियारिन ने कहा—"मेरे बच्चे शेर खाने को माँगते हैं।" सियार ने कहा—'तो तू गुस्सा क्यों होती है?" सियारिन ने कहा—"इस लिये कि बन्दर को भेजा था कि दो शेर ले आ, सो प्रथम तो वह आया ही बड़ी देर में है, दूसरे दो के बदले एक ही पूँछ में बाँध कर लाया है।" शेर इतना सुनते ही बन्दर की पूँछ तक उखाड़ के भग खड़ा हुआ। सच है हिम्मत मर्दा मदद खुदा।

बहुत से मनुष्य आपत्ति आने पर कुएँ में गिर पड़ते, ज़हर खा लेते, कोई आग लगने पर कोने में घुस पड़ते, कोई निकल कर रास्ता भूल प्राण दे देते, कितने ही शेर और भालू का नाम सुन काठ के खिलौने से खड़े रहजाते और उन्हें आकर वे खा भी जाते हैं, कितने ही घबराये पथिकों के समूह दो चार डाकुओं से लूट लिये जाते हैं, पर एक धीर पुरुष सिंह के छक्के छुड़ा देता है। किसी ने ठीक कहा है—

त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि काले,
धैर्यात्कदाचित् स्थिति माप्नुयात्सः।
यथा समुद्रेऽपि च पोतभंगो,
सायात्रिको वाञ्छति तर्तु मेव॥

अर्थ—आपत्ति का समय आने पर भी धैर्य्य नहीं छोड़ना चाहिये, क्यों कि कदाचित् धैर्य्य से स्थित प्राप्ति होजाय जैसे कि समुद्र में जहाज़ डूबने का समय आ जाने पर भी उद्योग करने पर बच जाता है।

———

२७—क्षमा ।

एक रामनाथ नामक साधु ब्राह्मण अत्यन्त सदाचारी पुत्र पौत्रों से युक्त और बड़ा ही धनाढय किसी ग्राम में रहता था। उसके घर के पास जो दो चार पड़ोसी रहते थे वे सब के सभी महान् दुष्टप्रकृति के थे और उसके धन ऐश्वर्य तथा प्रतिष्ठा को देख कुढ़ा करते थे और सदैव इसी चिन्ता में निमग्न रहते थे कि किसी न किसी भाँति रामनाथ को क्लेश पहुँचावें और कभी कभी वे अपनी आशा को पूरी भी कर लिया करते थे । बिशेष कहाँ तक लिखा जाय बिचारे रामनाथ की वही दशा थी जैसी कि लंका के मध्य बिभीषण ने हनुमान से अपनी दशा कही थी—

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी ।
जिमि दशनन-बिच जीभ बिचारी ॥

इसी भाँति साधु रामनाथ रहा करते थे और वे दुष्ट इन्हें सदैव कटु बाक्य और गालि प्रदान तथा ऐसे ऐसे अड़ङ्गा लगाये रहते थे कि रामनाथ बोलें और वे इनकी पूरी पूरी ख़बर लें । परन्तु साधु रामनाथ को जब दुष्ट लोग गालि प्रदान करते तो वे उसके उत्तर में कहा करते थे कि—

ददतु ददतु गालिर्गालिवन्तो भवन्तो,
बयमिह तदभावाद् गालिदानेऽप्यशक्ताः ।
जगति बिदित मेतद् दीयते बिद्यते तन,
नहि शशकविषाणं कोपि कस्मै ददाति ॥

अर्थ—देव देव गाली आप गालिवन्त हैं। कोई धनवन्त होता है कोई बलवन्त होता है, आप गालिवन्त हैं । पर मेरे पास तो

गालियों का अभाव है, कहाँ से दूँ; और संसार में यह बात विदित है कि जो बस्तु जिस के पास होती है वही मनुष्य दूसरे को दे सकता है, न होने से कैसे दे? खरगोश अपने सींग किसी को क्यों नहीं देता। भाषा में भी कहा है—

जाके ढिग बहु गाली हुइहैं, सोई गाली देहै।
गालीवालो आप कहैहै, हमरो का घटि जैहै॥

परन्तु वे दुष्ट इस वाक्य के अनुसार—

मधुना सिञ्चयेन्निम्बं निम्बः किं मधुरायते।
जातिस्वभाव दोषोऽयं कटुकत्वं न मुञ्चति॥
अर्थ—जाकी जैसी टेव छुटै नहिं जीव से।
नीम न मीठी होय सिचै गुड़ घीव से॥

उद्योग कर टिकट भी बँधवा दी और कई बार चोरों को मिलजुल कर चोरी भी करा दी, परन्तु आप जानते हैं कि क्षमा रहित पुरुषों का स्वभाव उस पानी भरे कटोरे के समान होता है जिसमें कुछ डालते ही उसका पानी गिरने लगता है; किन्तु क्षमावान् पुरुषों का स्वभाव समुद्र के समान गंभीर होता है कि चाहे उसमें पहाड़ के पहाड़ आपड़ें तो भी वह घटता बढ़ता नहीं अथवा जैसे गज राज के पीछे चाहे कितने ही कुत्ते भोंका करें तो भी वह बिचलित नहीं होता।

अन्ततोगत्वा उन दुष्टों के दुष्ट कर्मों के अनुसार उनकी यह दशा हुई कि उन को दरिद्रता ने आकर ऐसा घेरा कि वे सब के सभी दाना दाना को दुखी हो गये और भूखों मरने लगे। यह दशा देख साधु रामनाथ को दया आई वे (उन महात्मा

भाँति जिनके कि एक नदी-तट पर स्नान करते समय में एकाएक एक बिच्छू दृष्टि पड़ा और वे दया परबश हाथ से पकड़ जल से बाहर करना चाहते थे कि बिच्छू ने स्वभावानुसार उनके हाथ में डंक मार हाथ से पुनः नदी जा गिरी और वे बारंबार उसको जल से बाहर निकालते और वह डंक मार मार जल में जा पड़ती, इस चरित्र को देख ब्राह्मण ने उनसे कहा कि—"जाने दीजिये महाज! ये दुष्ट हैं।" जिसके उत्तर में महात्मा जी ने ब्राह्मण से कहा था —"यदि यह अपने स्वभावानुसार डंक मारना नहीं छोड़ता तो अपने स्वभावानुसार इसका परित्राण करना क्यों छोड़) उन्हें भोजन देने लगे और कुछ धन की सहायता कर सबको उद्यम में लगा दिय। परन्तु इन दुष्टों ने अपनी दुष्ट प्रकृति अब भी न छोड़ी। एक दिवस साधु रामनाथ का एक वर्ष का पुत्र खेलते खेलते एक बन में जो ग्राम के समीप आ पहुँचा। इन दुष्ट पड़ोसियों ने उसे मार उसके सम्पूर्ण भूषण उतार लिये। इसका पता साधु रामनाथ को पूर्णरूप मिल गया। किंतु जब वे दुष्ट रामनाथ जी की शरण आये और उन्होंने कहा कि हम कभी अब ऐसा न करेंगे हमने जो किया बहुत ही बुरा किया, पर अब आप क्षमा करें तो कवि वाक्य के अनुसार—

कोहि तुला माधि रोहति शुचिना। दुग्धेन सहज मधुरेण
कृतं मथितं तथापि यत्स्नेहमुद्गिरति॥

अर्थात्—सर्वथा मधुर रस के ग्रहण करनेवाले महोज्वल की बराबरी कौन कर सकता है? कोई नहीं, क्यों कि उसे कोई कितना ही तपावे चाहे कितना ही विकृत करे और कितना ही मथे तिस पर भी प्रहारों को सहता हुआ प्रहार-

कर्त्ताओं के लिये वह स्नेह चिकनाई घी ही देता है अर्थात शत्रुओं पर भी वह स्नेह ही करता है, साधु रामनाथ ने उन सब पर दया की ।

उन सम्पूर्ण दुष्टों ने सारी आयु साधु रामनाथ पर चोटें कीं, परन्तु इस कवि वाक्य के अनुसार—

अतृणे पतितो वन्हिः स्वयमेवोपशाम्यति ।
क्षमा खड्ग करे यस्य किं करिष्यति दुर्जनाः ॥

वे दुर्जन उनका कुछ न कर सके ।

महात्मा बुद्ध को एक पुरुष ने एक दिन आकर बहुत सी गालियाँ सुनाईं । जब महात्मा बुद्ध उस दिन गालियों को सुन न बोले तो दूसरे दिन भी उसने आकर दूनी गालियाँ सुनाईं और जब दूसरे दिन भी महात्मा न बोले तो तीसरे दिन तिगुनी और जब उस दिन भी महात्माजी न बोले तो चौथे दिन चौगुनी गालियाँ सुनाईं और जब महात्माजी फिर भी न बोले तो पाँचवें दिन वह पुरुष आकर महात्मा के पास चुपके खड़ा हो गया । तब महात्मा बुद्ध ने उससे कहा कि—"बेटा, यदि कुछ और भी तेरी इस पेटरूपी थैली में हो तो उसे भी दे दे ।" तब उसने कहा कि—"अब तो जो कुछ था वह सब मैंने सुना दिया पर इतनी गाली सुनाने पर भी आपने कोई जवाब नहीं दिया ।" महात्मा ने कहा कि—"जवाब तो मैं पीछे दूँगा पर इससे पहले तुम मेरे एक सवाल का जवाब दे दो ।" यह कह कर महात्मा ने कहा कि—"कोई किसी के पास यदि किसी वस्तु की भेंट ले जाय और वह उसे स्वीकार न करे तो उसका मालिक कौन होता है ?" उसने कहा कि—'वही, जिसकी वह वस्तु है अथवा जो उसे लाया है ।"

———

२८—दम।

एक बार महात्मा जनक के पास एक ब्राह्मण ने जाकर कहा कि—"महाराज, यह पापी चञ्चल मन हमको अपने जाल में निशिदिन नचाया करता है, हम बहुत बहुत ज़ोर लगाते हैं पर यह पापी हमको नहीं छोड़ता।" महत्मा जनक ने यह सुनते ही एक वृक्ष को पकड़ लिया और बोले कि—"अगर यह वृक्ष हमें छोड़ दे तो हम आपके प्रश्न का उत्तर दे दें।" ब्राह्मण राजा जनक की यह दशा देख हैरान हो गया कि यही राजा जनक है जिसकी ब्रह्मविद्या में प्रशंसा है? एक वृक्ष को पकड़े हुए कह रहा है कि यदि यह छोड़दे तो हम तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दें। ऐसा समझ वे बोले कि—"महाराज, जड़ वृक्ष आपको क्या पकड़ सकता है? आप ही स्वयमेव पकड़े हुये हैं। आप छोड़ दें तो वह आप ही छूट जाय।" महत्मा जनक ने कहा—"तुम्हें दृढ़ बिश्वास है कि छूट जायगा?" ब्राह्मण ने कहा—"यह तो बिल्कुल प्रत्यक्ष ही है कि आप छोड़ दें तो छूट जाय।" महात्मा जनक ने कहा—"बस, इसी भाँति मन जड़ है, यह बिचारा जीवात्मा को क्या नचा सकता है? जैसे हम वृक्ष को पकड़े थे उसी भाँति आप मन को पकड़े हुये हैं। यदि मन को आप छोड़ दें और इसके फन्दों में न आयें तो मन कुछ नहीं कर सकता यानी इस जड़ मन को चाहे आप सुमार्ग में चलायें, चाहे कुमार्ग में। यह आपके अधीन है। यह तो सब कहने की बातें हैं कि मन बड़ा चञ्चल है, कुमार्ग में जाता है। बिना जीव के मन में संकल्प नहीं हो सकते।"

———

२६—एक महात्मा ।

एक महात्मा एक ऐसे सेवक की चिन्ता में थे जो बिना वेतन लिये उनका काम करे। यह बात प्रसिद्ध है कि 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' महात्मा को सेवक मिल गया, पर सेवक ने महात्माजी से यह प्रतिज्ञा करा ली कि "आप हमको सदैव काम बतलाते रहें, यदि आपने किसी समय काम न बतलाया तो हम आपको बिना पीटे न छोड़ेंगे।" महात्मा ने प्रतिज्ञा कर ली। सेवक ने कहा कि 'महात्माजी, काम बताइये महात्माजी ने कहा कि—"शौच के लिये लोटे में पानी ले आ।" सेवक ले आया। महात्मा ने कहा—'हमें कुल्ला दन्तधावन, स्नान करा।' उसने वह भी करा दिये। महात्मा ने कहा—"यह लँगोटी फींच डाल।" उसने लँगोटी भी धो डाली। लँगोटी धो सेवक ने कहा—"महात्माजी और ?' महात्माजी ने कहा—'अब तो इस समय कोई काम दृष्टि नहीं पड़ता।" महात्मा के यह शब्द कहते ही सेवक ने सोंटा उठा धमा चौकड़ी मचानी आरम्भ की। महात्माजी रोते हुये पूजा पाठ छोड़ भग खड़े हुये। सेवक ने सोंटा ले उनका पीछा किया। कुछ दूर चल महात्मा को एक और महात्मा मिले। इन्होंने भगते हुये ही शीघ्र शीघ्र दूसरे महात्मा को सम्पूर्ण बृत्तान्त सुनाया। महात्मा ने कहा—"बस, इसी लिये आप भगे फिरते हैं? जिस समय आपके यहाँ कोई काम न रहे, इससे कह दिया कीजिये कि एक लम्बा बाँस ले आ। जब ले आवे तब कहना इसे गाड़। जब गाड़ चुके तब कहना कि जब तक हम दूसरा काम न बतलावें तब तक इस पर चढ़ा उतरा कर।" महात्मा ने ऐसाही किया। स्थान पर आ आपने सब काम करवा कर एक लम्बा बाँस मँगवा कर कहा—"जब तक हम दूसरा काम न बतलावें इसी पर

चढ़ा उतरा कर।" बस,सेवक ज्योंही दो चार बार चढ़ा उतरा कि थक कर शिथिल हो बोला—"महात्माजी, अब तो चढ़ा उतरा नहीं जाता।"

इसका दार्ष्टान्त यह है कि जीवात्मारूपी महात्मा को एक अवैतनिक सेवक की आवश्यकता होने पर इसे मनरूपी बेदाम का भृत्य मिला। परन्तु इस मन ने जीवात्मा से यह प्रतिज्ञा करा ली थी कि हमको सदैव काम बताते रहना अर्थात् सदैव काम में लगाये रखना, नहीं हम पीटेंगे अर्थात् मन जब कामसे रहित हो ठाली होगा उस समय कुमार्ग में जायगा और अपने साथ जीवात्मा को ले दुर्दशा करायेगा। इस प्रकार मन ठाली होने पर जीव को कुमार्गों में लिये हुये खेद रहा था और जीवात्मारूप महात्मा व्याकुल था कि इतने में दूसरे महात्मा ऋषि ने उपदेश किया कि—

प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य ।

तुम स्वाँस प्रस्वाँस रूप बाँस गाड़ जब यह मन ठाली हो चंचलता करे तो इस पर चढ़ाओ उतारो। बस, तीन चार बार प्राणायाम करने से मन शिथिल हो गया और इसका चंचल-पना छूट गया।

———

३०—स्तेय।

आस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोउपस्थानम्।

एक बालक नित्य पाठशाला को जाया करता था। एक दिवस पाठशाले से वह किसी विद्यार्थी की पुस्तक चुरा लाया। लड़के की माता ने पुस्तक विक्रय कर उसे आम खाने को लेदिये

इसी भाँति करते करते कुछ दिवस में वह चोरों का शिर म बन गया। एक दिन वह चोरी करते समय राजा के यहाँ पकड़ा गया और उसको राजा के यहाँ से सूली के दण्ड की आज्ञा हुई। सूली पर चढ़ते समय कितने ही पुरुष उस बालक के अव- थे आये और बालक की माता भी सब पुरुषों के साथ बालक को देखने आई। बालक ने अपनी माता से कुछ वार्ता करने की आज्ञा माँगी और माता के कानमें वार्त्ता करने के समय उसके नाक कान दोनों ही काट लिये। तब तो माता बहुत ही दुखी हुई। सम्पूर्ण पुरुष यह दशा देख बालक को धिक्कारने लगे। तब बालक ने कहा कि—"आप लोग तो धिक्कारते हैं परन्तु यदि मुझे यह चोरी न सिखाती तो आज सूली का समय न आता।"

बस, आप लोग समझ लें कि चोरी इतनी बुरी चीज़ है, इसी के त्याग को स्तेय कहते हैं।

११—शौच।

सर्वेषामेव शौचानां अर्थ शौचं परं स्मृतम्।
योर्थे शुचिः स शुचिः नमृद्वारि शुचिः शुचिः॥

एक गाँव में दो सगे भाई प्रथक् प्रथक् रहा करते थे। उनमें से एक भाई तो बाह्य शुद्धि अर्थात् शौच दन्तधावन स्नान आदि और दीन होने पर भी दूसरे तीसरे दिन अपने वस्त्र धो लिया करता था एवं जहाँ जिस स्थान में वह बैठता तो उसे अत्यन्त स्वच्छ रखता था और भीतर का भी कपटी न था जिससे कि उसकी बुद्धि भी अत्यन्त तीव्र, बड़े से बड़े गम्भीर विषयों को सहज ही में समझने को समर्थ थी और इसका मान भी बड़े पुरुषों

में था, जहाँ यह जाकर बैठता सभी प्रसन्न रहते। और दूसरा भाई यद्यपि बड़ा धनवान् था परन्तु अत्यन्त ही मलिन था, दन्त धावन स्नानादि का तो यह महीनों नाम ही न जानता, मुहँ में दुर्गन्ध आती, शरीर तथा पैर मैल से फट गये थे और फटे टूटे वस्त्र अति मैले जिनमें मक्खियाँ भिनक रही थीं पहिरे हुए पेट भी कपट की खानि सदैव 'मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यत् दुरात्मनः' के अनुसार ही इसकी वार्ता भी रहती थी, यानी कहते कुछ करते कुछ जाते कहीं, इससे इनकी न तो कोई बात ही मानता था और जिसके पास ये जाकर बैठने वह इनसे अतीव घृणा करत था और बुद्धि में भी यह बुद्धू थे, इस कारण भंग, तम्बाकू आदि नशे तो आपके एक मात्र भूषण थे। इनके रहने का स्थान भी बड़ा ही भ्रष्ट रहता था इस कारण कभी इन पर घूरे में दण्ड, कभी गदवीन में दण्ड, कभी खुद इनको मैला और बुद्धू देख लोगों ने मनमानी घूस ले ले इन्हें तबाह कर दिया। कुछ इनकी रहन ठहन से इनकी अप्रतिष्ठा के कारण इनके सब व्यवहार बन्द हो गये, अन्त में यहाँ तक हुआ कि इन बेचारे को एक एक दिन के भोजनों के लाले पड़ गये। इस लोक में तो यह दशा हुई, परलोक की ईश्वर जाने। परन्तु उक्त दूसरे भाई को सम्पूर्ण पुरुष प्रतिष्ठा करते तथा इसकी बात भी मानते थे और बुद्धि के लिये तो मैं लिख ही चुका हूँ कि विलक्षण थी, यह अपनी किसी न किसी युक्ति से एक राजा के पास पहुँच गया। राजा उसके ऊपर अति प्रसन्न हुआ और बहुत ही चाहने लगा और थोड़े ही काल में राजा ने उसे अपना मंत्री नियत किया। पुनः योगादि साधन करने से जब इसकी आत्मा में बुद्धि का प्रकाश हुआ तो राजा की नौकरी छोड़ एकान्त वन में जाकर ध्यान करने लगा। यह सब उसकी पवित्रता का कारण है।

६२—इन्द्रिय निग्रह।

एक मियाँ किसी गाँव में सकुटुम्ब रहा करते थे और मियाँजी झारा फूकी अथवा नाउती का काम किया करते थे। एक बार बर्सात में मियाँजी की तिदरी कई दिन से टपक रहीथी मियाँ की बीबी ने कहा कि-"मियां, ज़रा इस सूराख़ को बन्द कर दीजिये।" मियाँजी ने कहा कि-"बन्द कर देंगे, अभी क्या भरभर है?" इतने में मियांजी को कहीं से झारने का लावा आया और मियाँ एक बकरकसाब की छुरी ले चल दिये और मियाँजी की बीबी भी चुपके से पीछे पीछे इस लिये चलती हुई कि देखूं मुआ कैसे झारता है। मियाँजी वहाँ जाकर छुरी से भूमि खोदन लगे और पढ़ते जाते थे कि "जल बाँधौं उलहरि बाँधौं, बांधौं जल की काई, जखै मीरा सैयद बाँधूँ हनूमान की दोहाइ"–तथा-'आकाश बाँधू पाताल बाँधू दे तड़ाक छू।" इतने में बीबी ने पीछे से एक चपत दे तड़ाक की और कहा-"मुआ, यहाँ आकाश पाताल बाँधता है, घर मेंज़रा सा सूराख़ जो तिदरी में टपक रहा था सो तो तेरे बांधे नबँधा तब तू आकाश पाताल क्या बाँधेगा?"

इसका दार्ष्टान्त यों है कि जब इस जीवात्मारूप मियाँ से इन्द्रियरूपी सूराख़ शरीर रूपी तिदरी के न बांधे बंधे तो कौन आर्य्य-समाज का प्रचार करेगा? कौन सनातनधर्म का प्रचार करेगा? कौन देश भर में वेद प्रचार करेगा? कौन स्वराज्य प्राप्त करेगा? किससे आशा की जाय?

——

३३-धी।

किसी एक गाँव में दो सगे भाई रहते थे उनमें से बड़ा बेचारा साधारण उर्दू वा थोड़ी अँगरेज़ी वा साधारणतः मातृभाषा जानता था और छोटा भाई पूर्ण संस्कृतज्ञ था परन्तु बुद्धि में पूरा बुद्धू था। बड़े भाई के गौने के दिन समीप आ गये थे और उसको एक अभियोग होने के कारण न्यायालय में जाना था, अतः बड़ा भाई अपनी ससुराल नहीं जा सकता था, इस कारण उसने अपने छोटे भाई से कहा कि "तुम अमुक तिथि पर जाकर अपनी भावज को बिदा करा लाना क्योंकि मुझे उसी तिथि पर अमुक अभियोग में न्यायालय में जाना है परन्तु वहाँ जाकर ठीक तौर से बात चीत करना अर्थात् हाँ के स्थान में हाँ और नहीं के स्थान में नाहीं।" इन्होंने कहा कि-"मैं क्या इतना मूर्ख हूँ कि मुझे हाँ नाहीं का भी ज्ञान नहीं?" बड़े ने कहा-"तुम्हें ज्ञान तो है परन्तु मैं बड़ा हूँ इस लिए समझाना मेरा धर्म था, इससे समझा दिया।" परन्तु छोटे हाँ नाहीं को सिलसिलेवार लिख यानी प्रथम हाँ पीछे नाहीं भावज को बिदा कराने चले। ये ज्योंही उस गाँव के धुर पर पहुँचे तो इनके भाई की सुसराल के लोग मिले और इन से पूछा कि—"कहो, तुम्हारे गांव में कुशल है?" कहा-"हाँ।" पूछा-"तुम्हारे भाई जी तो अच्छे हैं?" कहा—"नाहीं।" पूछा-"क्या कुछ बीमार है?" कहा हां।" पूछा कि—"कुछ औषधि होती है?" कहा—"नाहीं।" पुनः कहा—"क्या बहुत बीमार है?" कहा—"हाँ।" यह सुन घबड़ा कर पूछा कि-"बचने की उम्मेद है या नहीं?" कहा—"नाहीं।" कहा कि—"क्या इतने सख़्त बीमार हैं?" कहा—"हां।" पुनः पूछा कि—"मौजूद हैं या नहीं?" कहा—"नाहीं।" इतना सुन सबके सब बड़े ज़ोर ज़ोर

रोने लगे और सबका रोना सुन ये भी रोने लगे। अब तो सबको और भी निश्चय हो गया कि इनके भाई नहीं रहे। प्रातःकाल उन्होंने कहा कि—"क्या भावज को बिदा नहीं करोगे?" उन्होंने कहा कि—" दो चार दिन और चूरी बिछुये पहने है फिर तो हम भेज ही जायँगे।" ससुरालवालों का यह उत्तर सुन यह वापिस आये। जब घर में इनके बड़े भाई आये और पूछा कि—'भावज को बिदा नहीं करा लाये?" तब इन्हों ने कहा कि—"भावज तो राँड हो गई, उसे कैसे लिवा लाते?" भाई ने कहा—"हैं हैं, यह क्या कहता है ? हम बने ही हैं और वह राँड हो गई।" इसने उत्तर दिया कि—"क्या तुम कहीं के नाहर हो? तुम बने रहे, बुआ राँड हो गई। तुम बने रहे, मौसी राँड हो गई। तुम बने रहे, बहन राँड हो गई। तुम बने रहे, चाची राँड हो गई। भावज के लिए तुम राँड होने से कैसे रोक सकते?" तब तो भाई ने कहा—"बताओ, वहाँ क्या क्या बातें हुई थीं?" तब इसने सम्पूर्ण वृत्तान्त सच्चा सच्चा कह सुनाया। बड़े भाई ने अपनी ससुराल जा सब को शान्ति दी। सच है, बुद्धि तेरी बड़ी महिमा है। देखिये—

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्।
यस्य सिंहो मदोन्मत्तः शशकेन निपातितः॥

अर्थ—एक बार एक खरहे से सिंह ने गुस्सा हो कहा—"इतनी देर तू कहाँ रहा?" खरहे ने कहा—"महाराज, एक दूसरा सिंह कहता था मैं इस बन का राजा हूँ, तू कहाँ जाता है?" उसने कहा—"चल दिखला।" खरहे ने कुँआ बतला दिया और कहा—"इसमें है।" सिंह ज्यों ही झाँका कि उस को परछाहीं भी मालूम हुई और उड़ोकने पर आवाज़ भी आई, अतः वह कुएँ में कूद पड़ा।

समुत्पन्नेषु कार्य्येषु बुद्धिर्यस्य न हीयते ।
स एव दुर्गं तरति जलस्थो वानरो यथा ॥

अर्थ—एक बार एक बन्दर एक नदी में पड़ गया । उसकी टाँग एक मगर ने पकड़ ली । दूसरे ने कहा—"क्यों, हमने कहा था ।" उसने कहा—"क्या हुआ, साले ने लकड़ी पकड़ी है और समझता है कि बन्दर की टाँग पकड़े हूँ ।" ऐसा सुन मगर ने टाँग छोड़ दी । बन्दर नदी के पार आया ।

३६—विद्या ।

एक दीन काश्तकार का लड़का नित्य पाठशाला में पढ़ने जाया करता था, परन्तु वह बहुत ही दीन था इस कारण वह अपने पढ़ने का सामान इकट्ठा नहीं कर सकता था यहाँ तक कि लेखनी, मसीपात्र और कागज़ भी नहीं ले सकता था और भोजनों के लिये भी उसे पेट भर अन्न नहीं मिलता था जिससे वह बहुत ही कृश हो रहा था किन्तु पढ़ने का उसे इतना व्यसन था कि सामानों के न होते हुए भी वह बड़े चाव के साथ पढ़ता था और अपनी कक्षा के लड़कों में बड़ा ही बुद्धिमान और होनहार प्रतीत होता था । इसकी यह दशा देख अध्यापकों के चित्त में दया आई और उन्होंने आपस में सम्मति करके चन्दा बाँध लड़के के भोजन का सामान इकट्ठा करा दिया । बालक अपने सहपाठियों से बड़ा ही मेल जोल रखता था, इससे कोई कोई सहपाठी लेखनी मसीपात्र, कोई पुस्तक भी दे दिया करते थे । पाठशाले के सिवा वह अपने घर पर भी पढ़ा करता था परन्तु कभी घर में दीनता के कारण तेल का प्रबन्ध न हो सकने

से यह वन में जा खद्योतों (जुगनू) को पकड़ अपनी टोपी में रख उनके प्रकाश से, और कभी कभी चांदनी में चन्द्रमा के प्रकाश से पढ़ा करता था। इस प्रकार बड़े बड़े कष्ट उठा उसने विद्या प्राप्त की और विद्या में ऐसा निपुण निकला कि जिसके कारण सरकार से वा पाठशाला के निरीक्षकों से कई बार अनेक प्रकार के बड़े बड़े प्रशंसनीय प्रशंसापत्र तथा पारितोषिक भी प्राप्त किये। अब तो इसकी विद्या की चर्चा चारों ओर धूम धाम के साथ विस्तृत हुई यहाँ तक कि बड़े २ राजाओं के भी कर्णगत हुई। तब तो इसे एक बड़े राजा ने बुला कर इसकी योग्यतानुसार अपने यहाँ मंत्री पद पर नियत किया। धन्य है महाराणी सरस्वती! तेरी अपार महिमा है। तूने कितने ही कँगलों को राजा और कितनेही मूर्खों को महात्मा योगिराज ऋषि, मुनि, तपस्वी तथा देवता बना दिया और मुक्ति तक प्राप्त कराई। किसी कवि ने कहा है—

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्न गुप्तंधनम्।
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणांगुरुः॥
विद्या बन्धु जनो विदेशगमने विद्या परं दैवतम्।
विद्या राज सुपूजितः न च धनं विद्याविहीनः पशुः॥

१५—छोटों की बात का तिरस्कार न करो।

कभी अभिमान में आकर छोटों की बात का तिरस्कार न करना चाहिये क्योंकि कभी कभी छोटों के ख्याल में वह बात आ जाती है जो बड़ों को स्वप्न में भी नहीं सूझती।

लंडन के एक महात्मा न्यूटन से ऐसा कोई शिक्षित व्यक्ति न होगा जो परिचित न हो। आपको बिल्ली पालने का बड़ा शौक था अतः आपने छोटी बड़ी दो बिल्लियाँ पाल रक्खी थीं जो दिन भर तो इधर उधर घूमा करती थीं और रात में महात्मा न्यूटन की चारपाई के नीचे आकर सो रहती थीं। इस कारण महात्मा न्यूटन जब रात में अपने कमरे में सोया करते थे तो कमरे के किवाड़ों की ज़ंजीर न बंद करके साधारण ही किवाड़े भेड़ लिया करते थे कि जिसमें बिल्लियां किवाड़े खोल कर चली आयें और बिल्लियां भी जब घूमकर बाहर से आतीं तो किवाड़े खोल अन्दर तो चली आती थीं पर किवाड़ों को वे बंद नहीं कर सकती थीं कि जिससे वे सारी रात जड़ाया करती थीं। यह देख महात्मा न्यूटन ने सोचा कि कोई ऐसा इन्तिज़ाम कर देना चाहिये कि जिसमें बिल्लियां जड़ाया न करें। इसके लिये उन्होंने यह विचारा कि अगर हम अपने कमरे के दोनों किवाड़ों में दो छेद यानी छोटी बिल्ली के लिये छोटा और बड़ी के लिये बड़ा करा दें और कमरे के किवाड़ों की ज़ंजीर सोने के समय बंद कर लिया करें तो बिल्लियां ठण्ढ से बच जायँ। बस यह विचार बढ़ई को बुलवाकर कहा कि—"ऐ बढ़ई! तुम सुनते हो, देखो यह जो दो बिल्लियाँ मैंने पाल रक्खी हैं सो रात में मैं तो योहीं साधारण किवाड़े भेड़ कर सो जाता हूं और बिल्लियां जब घूम कर बाहर से आती हैं तो किवाड़े तो खोल लेती हैं पर बंद नहीं कर सकतीं जिससे वे जड़ाया करती हैं। सो तुम इन हमारे कमरे के दोनों किवाड़ों में दो छेद कर दो यानी छोटी बिल्ली के लिये छोटा और बड़ी के लिये बड़ा ताकि मैं शाम से किवाड़े बन्द कर सो जाया करूँ।" यह सुन बढ़ई ने कहा कि—"हजूर इसके लिये दो छेदों की दोनों किवाड़ों में करने की क्या ज़रूरत है, एक ही बड़ा छेद एक किवाड़े में करने से दोनों

निकल जाया करेंगी।" बढ़ई ने बहुत कुछ समझाया पर न्यूटन ने न माना। तब तो बढ़ई ने छेद करना शुरू किया और प्रथम एक किवाड़े में बड़ा छेद कर के किवाड़े भेड़ दिये और उस एक ही छिद्र से दोनों बिल्लियें निकल गईं। यह देख महात्मा न्यूटन उछल पड़े और बड़े ही प्रसन्न हुए और बढ़ई को बहुत कुछ पारितोषिक दिया। ठीक है—

बालादपि गृहीतव्यं युक्तमुक्तं मनीषिभिः।
रवेर विषयं किन्न प्रदीपस्य प्रकाशकम्॥

२६---सत्य।

एक राजा की एक अत्यन्त रूपवती रानी स्नान किये हुए महल की छत पर अपने केश सुखा रही थी कि इतने में कौवे ने उसके शिर पर हग दिया। रानी को यह देख बड़ा ही क्रोध आया, और वह तुरंत जाकर कोपभवन में लेट रही। महाराज को यह रानी बहुत ही प्यारी थी, इस से महल में आते ही रानी को न देख उन्होंने दासी से पूछा--"आज रानीजी कहाँ हैं?" दासी ने कहा -"महाराज, रानीजी आज कोपभवन में हैं।" बस-" कोपभवन सुन सकुचे राऊ। भय बस आगे परत न पाऊँ।" परन्तु जैसे तैसे राजा ने वहां तक पहुँच रानी से कहा--"कहो प्यारी! क्या हुआ किसने तुम्हारे साथ अनुचित व्यवहार किया किसे कालने आकर घेरा है?" रानी ने कहा—"महाराज, आज मैं महलों की छत पर स्नान किये हुए केश सुखा रही थी कि एक दुष्ट कौवे ने मेरे सिर पर हग दिया, सो जब तक आप उस कौवे को न मरवा डालेंगे, मैं अन्न जल ग्रहण न करूँगी।" महाराज ने कहा—" अरे रानी, तू कैसी है, पक्षियों

में क्या बोध है कि यह रानी है या साधारण स्त्री है। उसने उड़ते हुए साधारणतः ही हगा होगा और वह तेरे सिर पर पड़ गया होगा। इससे तुझे हठ नहीं करना चाहिये।" पर रानीने एक न सुनी और बहुत कुछ हठ किया। तब राजा ने कहा कि- "तुम उठ कर अन्न जल करो, हम कल प्रातःकाल सब कौवों को पकड़वा उनमें से उस अपराधी कौवे को मरवा डालेंगे।" रानी यह सुनते ही मुस्करा कर बड़े नाज नखरे के साथ आंखें मटकाती हुई उठी। राजा देख फूल गया। जब दूसरे दिन प्रातःकाल आया तो राजा ने अपने भृत्यों को आज्ञा दी कि— "जाओरे, हमारी राज्य के सब कौवों को पकड़ लाओ।" भृत्यों ने ऐसा ही किया। जब भृत्यों ने आकर यह कहा कि-'महाराज सब कौवे आ गये। तब राजा ने इन कौवों से कहा—"कहो भाई कौवो, सब कौवे आ गये?" तब तो सब कौवों ने जाँच पड़ताल कर कहा—"महाराज, एक कौवा नहीं आया है, बाकी सब आ गये।" राजा ने भृत्यों से कहा--"क्यों भाई जो कौवा, नहीं आया उसे भी शीघ्र ही लाओ।" भृत्यों ने कहा— "महाराज, हम उसे कई बेर बुला आये हैं, आता ही होगा।" और कौवों ने आपस में सम्मति की कि भाई किस कौवे ने ऐसा भारी अपराध किया जिसके कारण आज बिरादरी भर को कष्ट मिल रहा है? अन्त में यह ठहरी कि हो न हो वही कौवा अपराधी है जो अब तक नहीं आया और राजा ने भी यही सोचा कि जो कौवा अब तक नहीं आया है, शायद वही अपराधी है। ऐसा समझ राजा उसपर अत्यन्त ही क्रोधित थे कि इतने में वह कौवा आ गया। कौवे के आतेही महाराज का उससे यह प्रश्न हुआ कि—"क्यों भाई कौवे, ये कौवे सब जभी आगये थे, तुमने इतनी देर कहाँ की?" कौवे ने कहा—"महाराज, अपराध क्षमा हो मेरे पास एक न्याय आ गया था, उसे चुकाने लगा, इससे

देर होगई।" राजा ने कहा—"क्या न्याय था ?" कौवे ने कहा—"महाराज, एक स्त्री अपने पति से यह कहती थी कि मैं मर्द और तू मेरी स्त्री। और मर्द कहता था मैं मर्द और तू मेरी स्त्री है। मर्द और स्त्री दोनों हमारे पास आये और मर्द ने मुझ से यह प्रश्न किया कि भाई कौवा, यह मेरी स्त्री मुझ से कहती है कि तू मेरी स्त्री और मैं मर्द हूँ, सो कभी मर्द भी स्त्री हो सकता है ? तब मैंने कहा हाँ हो सकता है, जो मर्द कामबश हो स्त्री के अनुचित कहे में आ जाय और उसके कहने में चले, वह स्त्री है।" राजा ने यह सुन सब कौवों से कहा-"अरे जाओरे कौवो, तुम सब भग जाओ।" राजा की आज्ञा पा सब कौवे चले गये। जब रानी ने वृत्तान्त सुना तो तुरन्त ही कोपभवन में जा बिराजी। जब फिर राजा महल में भोजन करने गया तो रानी को न देख दासी से पूछा। दासी ने कहा —"महाराज, रानी जी कोपभवन में हैं।" राजा ने वहाँ जा बहुत कुछ समझाया पर रानी ने कहा—"वाह ! कौवे की चले, हमारी नहीं। हम चाहे यहीं मर जायँ पर जब तक आप उस कौवे को न मरवा डालेंगे तब तक अन्न जल ग्रहण न करूँगी।" राजा ने रानी का विशेष हठ देख कहा —"हम फिर सब कौवों को बुला उसे मरवा डालेंगे। तुम उठ कर अन्न जल करो।" रानी पुनः प्रसन्न हो उठ खड़ी हुई। दूसरे दिन प्रातः काल होते ही राजा ने पूर्वत् सब कौवे पकड़ मँगवाये, परन्तु वह कौवा फिर भी नहीं आया। तब राजा ने कहा कि—"निश्चय वही कौवा अपराधी है, आते ही इस कौवे को विना बध कराये न छोड़ेंगे।" कौवा ज्योंही आया, राजा ने कहा—"क्यों रे कौवे, तू ने इतना बिलम्ब क्यों किया ?" कौवे ने कहा—"महाराज, अपराध क्षमा हो, एक न्याय आगया था, उसके चुकाने में इतना बिलम्ब हो गया। दो पुरुषों में विवाद था एक एक से कहता था कि तेरा मुँह नहीं है, पाखाने का स्थान है,

दूसरे ने कहा-मुँह कहीं पाखाने का स्थान हो सकता है? पहले ने कहा-हो सकता है। उन दोनों ने मुझ से आकर पूछा कि क्या कभी मुँह भी पाखाने का स्थान हो सकता है? तो मैंने कहा हाँ हो सकता है। जो कह कर पलट जाय या झूंठ बोले वह मुँह पाखाने का स्थान है। किसी कवि ने भी कहा है कि—

हस्तिदन्तसमानं हि निसृतं महतां वचः।
कूर्मग्रीवेव नीचानां पुनरायाति याति च॥

अर्थ-महत् पुरुषों के वाक्य हाथी के दाँतों के समान होते हैं, यानी निकले सो निकले, पर नीचों के वाक्य कछुओं की गर्दन के समान कभी बाहर और कभी भीतर। किसी भाषा कवि ने भी कहा है—

बातहिं से दशरत्थ मरे अरु बातहिं राम फिरे बन जाई।
बातहिं से हरिचन्द सहे दुख, बातहिं राज्य दियो मुनिराई॥
रे मन बात बिचारि सदा कहु, बात की गात में राखु सचाई।
बात ठिकान नहीं जिनकी, तिन बाप ठिकान न जानेहु भाई॥

२७-अक्रोध।

एक पुरुष अत्यन्त ही रूपवान् और शरीर से भी बलवान् पढ़ा लिखा विद्वान् अपने घर का धनवान् और माता पिता भाई बन्धुओं आदि से भरा पुरा था, परन्तु इसमें केवल दोष था तो इतना ही कि इसके स्वभाव में बड़ा भारी क्रोध था और वह यहाँ तक कि जिस समय इसे क्रोध आता था तो रुद्ररूप हो अप

आपे से बाहर हो जाता था । यद्यपि इसके माता पिता भाईसब ने समझाया कि भैया, यह अच्छी बात नहीं, क्रोध करना बड़ी बुरी बात है परन्तु इसने अपना स्वभाव न छोड़ा । कुछ तो इसका स्वभाव भी था और कुछ धन, बल, भाई बन्धुओं तथा विद्या आदि के कारण अपने घमंड के आगे किसी को कुछ समझता ही न था । अन्त में यह अपने विद्या के प्रताप से थानेदार हो गया । आप बड़े तेज़ तर्रार थानेदार थे । जहां जाते थे सम्पूर्ण प्रजा इनके शासन और अनुचित जुर्मों से थर थर कांपती थी और कानिष्टिबिल तथा चौकीदारों के लिये तो आप काल ही थे, यानी थोड़ा सा भी अपराध यदि किसी से कुछहो जाय वा अपराध न भी हो केवल इनकी वार्त्ता के विरुद्ध कोई कुछ कह दे कि थानेदार साहब हंटर ले उसके चूतरों की खाल काट दिया करते थे । गाली तो आपके मुख का भूषण थीं, यानी बिना गाली बात नहीं करते थे । एक दिन एक सेवक से इन्होंने गोश्त मँगवाया और कहा इसे ज़रा ज्यादा मसाला तथा घी डाल बहुत अच्छी तरह से बनाना, परन्तु सेवक से हज़ूर की तबियत के अनुसार न बना, अतः थानेदार साहब ने गालियों के तो पुल बांध दिये और पीटने में भी उधार नहीं रक्खा । परन्तु किसी कवि ने कहा है कि—

रोहते शायकैर्वृद्धिं वनं परशुनाहतम् ।
वाचादुरुक्तं बीभत्सं नापि रोहति वाक्क्षतम् ॥

अर्थ—बाण का घाव पूरित हो जाता है, कुल्हाड़ा से काटा हुआ वृक्ष फिर हरित हो जाता है परन्तु कठोरवाणी का भेदा हुआ घाव पूरित नहीं होता । बस, इस कविवाक्य के अनुसार सेवक के हृदय में थानेदार साहब के वाक्यों ने घाव कर दिये थे, अतः जब रात में थानेदार साहब सोये तो उस सेवक ने

थानेदार साहब की किर्च जो पास ही रक्खी थी मियान से निकाल हज़ारों किर्चें उनके मुँह पर मारीं यानी उनके मुँह को चावल चावल अलग कर दिया। थोड़े काल के बाद जब थाने के अन्य लोगों ने जाना तो वे इस सेवक को कैद कर ले गये और इस पर अभियोग चला। सेवक ने न्यायालय में साफ़ २ कह दिया कि हुजूर हमको इसने जिस मुख से गाली दी उस मुख को हमने काट दिया तथा जिन हाथों से मारा वे हाथ काटे। किसी कवि ने क्या ही सत्य कहा है—

क्रोधो हि शत्रुः प्रथमो नराणां
देहस्थितो देह विनाशनाय।
यथा स्थितः काष्ठगतोऽहि वन्हिः
स एव वन्हिर्दहते च काष्ठम् ॥

अर्थ—मनुष्य के शरीर में छिपा हुआ क्रोध इस प्रकार देह के नाश का हेतु स्थित है जैसे काष्ठ के भीतर छिपी हुई आग जो प्रज्वलित होने पर उसी को नष्ट कर देती है. इसी भांति क्रोध प्रज्वलित होने पर क्रोधकर्त्ता को ले मरता है। दूसरे, संसार में ऐसा कोई पुत्र चाण्डाल न होगा जो अपनी माता ही को खा जाय, पर यह चाण्डाल क्रोध जिस हृदयभूमि रूपी माता से उत्पन्न होता है प्रथम उसे ही खाता है, दूसरे को पीछे। पुनः एक कवि का वाक्य है कि—

अन्धी करोमि भुवनं वधिरीकरोमि
धीरं सचेतनमचेतनतां नयामि।
कृत्यं न पश्यति न येन हितं शृणोति
धीमानधीतमपि न प्रति संदधाति ॥

———

३:-असत्कर्म अवश्य भोगने पड़ेंगे।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि॥

एक राजा एक हाथी पर सवार बड़ी धूम धाम के साथ चला जाता था। परन्तु हाथी बहुत ही दुष्ट था, जिस समय किसी प्रयोजनार्थ राजा हाथी से उतरा कि हाथी बिगड़ गया और राजा के ऊपर सूँढ़ प्रहार करने को दौड़ा। राजा हाथी की यह दशा देख भग खड़ा हुआ और हाथी ने राजा का पीछा किया। यहाँ तक कि राजा को एक ऐसे अंधे कुएँ में ले जाकर डाला कि जिसके एक किनारे पर पीपल का वृक्ष था और वृक्ष की जड़ कुएँ के भीतर फोड़ फोड़ निकल रही थीं जो आधेकुएँ तक फैली थीं। राजा के कुएँ में गिरते ही उस का पैर पीपल की जड़ों में हिलग गया। अब राजा का सिर नीचे और पैर ऊपर को थे। राजा की दृष्टि जब नीचे को पड़ी तो वह क्या देखता है कि कुएँ में बड़े बड़े विकराल काले काले सर्प, विस-खापरे, कछुये ऊपर को मुंह बा रहे हैं जिन्हें देख राजा कांप गया कि यदि जड़ से मेरा पैर कदाचित् छूट गया और मैं कुएँ में गिरा तो मुझे ये दुष्ट जीव उसी समय भक्षण कर जायँगे। जब ऊपर की ओर उसने दृष्टि डाली तो देखा कि दो चूहे, एक काला और दूसरा सफेद जिस जड़ में उसका पैर हिलग रहा है उसे खुतर रहे हैं। राजा ने विचारा कि मैं यदि जड़ पकड़ कर किसी प्रकार ऊपर निकल जाऊँ तो मतवाला हाथी ठोकर लगाने को ऊपर ही खड़ा है और नीचे सर्पादि जन्तु हैं और जड़ का यह हाल है। निदान राजा घोर विपत्ति में फँसा। परन्तु उस पीपल के वृक्ष में ऊपर शहद की मक्खियों ने एक

छत्ता लगा रक्खा था जिससे एक एक बूँद शहद धीरे २ टपकता था और वह शहद कभी कभी इन राजा साहब के मुख में जा गिरता था जिसको कि वह ऐसी आपत्ति में होते हुये भी सारी आपत्तियों को भूल शहद चाटने लगता और यहाँ तक उस बूँद के चाटने में आसक्त हो जाता था कि उसे इन आपत्तियों का किंचित् मात्र भी ध्यान नहीं रहता कि इस जड़ के टूटते ही मेरी क्या दशा होगी।

मित्रो, दृष्टान्त तो यह हुआ पर इसका दार्ष्टान्त यों है कि यह जीवात्मारूपी राजा कर्मरूपी हाथी पर सवार है। चाहे वह इसे सुमार्ग से ले जाय चाहे कुमार्ग से। परन्तु जिस समय इस कर्मरूप हाथी से यह उतरता है उस समय कर्मरूपी हाथी इस पर प्रहार करने दौड़ता और इसे खेद कर माता के गर्भाशय रूपी अन्धे कुएँ में ले जाकर डालता है इस कुएँ में आयुरूपी वृक्ष की जड़ में इसका पैर हिलग रहता है और जब यह उस जड़ में उल्टा लटकता है (गर्भाशय में प्रत्येक पुरुष का सिर नीचे और पैर ऊपर होते हैं) और कुएँ में नीचे संसार को देखता है तो इसमें बड़े बड़े भयङ्कर सर्प. विसखापरे, कछुये यानी काम क्रोध लोभ मोह अहंकार ईर्षा द्वेष तृष्णा आदि सर्प कछुये मुँह फाड़े ऊपर को ताक रहे हैं कि यह ऊपर से गिरे और हम इसको अपना भक्ष्य बनावें। यह देख जीवरूप राजा अत्यन्त व्याकुल होता है और जब यह ऊपर की ओर दृष्टि डालता तो इसकी आयुरूप जड़ को दो काले सफेद चूहे, यानी सुफेद चूहा दिन और काला चूहा रात, इसकी आयुरूपी जड़ जिस में इसका पैर हिलगा है काट रहे हैं और जब यह विचारता है कि यदि इस कुएँ से मैं किसी प्रकार जड़ वड़ पकड़ कर निकल जाऊँ तो कर्मरूपी हाथी इसके ठोकर लगाने को ऊपर खड़ा

है। इस दशा में जो ममाखीरूपी विषय का शहद (रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श) है उसका आस्वादन करने में यह ऐसा निमग्न हो जाता है कि सारी आपत्तियों को भूल जाता है। इसे यह भी स्मरण नहीं रहता कि आयुरूपी जड़ अभी कटनेवाली है और अन्त में मैं गिरके इन सर्प कछुओं की खूराक बनूँगा। इसलिये हम क्यों न ऐसा कर्म करें कि जिससे हाथी खेद कर हमें गर्भाशयरूप कुएँ में न डाल पाये अर्थात् हम लोग ऐसे सत् कर्म करें जिससे गर्भाशयों रूप अन्धे कुओं में हमें न आना पड़े और हम मोक्ष प्राप्त करें।

३६—ब्रह्मचर्य।

एक माली बड़ी शीघ्रता के साथ दौड़ा जा रहा था। एक आदमी ने पूछा—"भाई, कहाँ इतनी शीघ्रता से दौड़े जा रहे हो?" माली ने कहा—"मुझे आज कई गाड़ी फूल तोड़ने हैं।" उस मनुष्य ने पूछा—"कई गाड़ी फूल तोड़ कर क्या करोगे?" इसने कहा—"इनका रस खींचेंगे।" उसने पूछा—"रस खींच कर क्या करोगे?" इसने कहा—"फिर रस का रस खींचेंगे।" उसने पूछा—"फिर क्या करोगे?" कहा—"फिर कई बार रस खींच कर इतर बनावेंगे।" उसने पूछा कि—"कई गाड़ियों में कितना इतर बनेगा?" इसने कहा—"एक शीशी।" उसने कहा—"फिर इस इतर को क्या करोगे?" माली ने कहा—"उसे किसी नरदबीन की नाली में फेंक देंगे।" उसने कहा—"भला तुझ सरीखा भी कहीं मूर्ख मिलेगा कि इतनी शीघ्रता से दौड़ा जा रहा है, किसी से बात तक करता नहीं फिर इतना सब कुछ परिश्रम कर इतर निकाल नरदबीन में फेंकेगा।

मित्रो, दृष्टान्त तो यह हुआ पर इसका दार्ष्टान्त यह है कि जीवात्मारूपी माली दिन रात बड़ी शीघ्रता से दौड़ रहा है, परन्तु इससे जब कोई महात्मा कहता है कि-"कहाँ जाते हो, सुनो।" तो यह कहता है-"फुरसत नहीं।" क्योंकि कई गाड़ी फूल यानी नाना प्रकार के अन्नादिक पदार्थ धन प्राप्त करना है, जिसके लिए किसी कवि ने कहा है—

नृत्यन्ति गायन्ति रुदन्तिचैव रोहन्ति वंशं च गुणे चलन्ति।
तप्तायमः पिण्ड महो लिहन्ति सर्वं कुकर्माचरितं चरन्ति॥
पतिव्रतं सत्कुलजा जहाति स्वब्रह्मचर्यं च पुमान् कुलीनः।
यस्य प्रभा प्रेक्षणमात्रलेशात् द्रव्यं सदा तच्छरणं ममास्तु॥
वृत्तान्त पत्राणि परः शतानि सु प्राञ्जलैर्लेख शतैर्युतानि।
स्वकान्यानि सदार्थयन्ति धनानि नान्यत्र न के भजन्ति॥
गतापराधानपि दण्डयन्ति कृतापराधानपि च त्यजन्ति।
यद्भ्रान्तचित्ताः किलराजकीयाः विचाय तस्मै प्रणतिर्मदीया॥
उपानत्प्रहारैरहोताडिताग्राः सुनिर्भर्त्सिताः कारगेहे निरुद्धाः।
यदर्थं व्यथास्तस्कराः सं सहन्ते धनायाद्य तस्मै नमस्ते नमस्ते॥

बस केवल एक पेट के भरने के लिये धन के लिये लोग क्या क्या नहीं करते। तब तो इनसे महात्मा पूछता है, धन कमा कर क्या करोगे? अन्नादिक नाना प्रकार के पदार्थ खरीदेंगे। उन पदार्थों को लेके क्या करोगे? रस बनावेंगे। उस रस को क्या करोगे? रक्त बनावगे। रक्त बना के क्या करोगे? मांस बनावगे। माँस बना के क्या करोगे? मज्जा बनावेंगे। मज्जा बना क्या करोगे? हड्डी बनावेंगे। हड्डी बना के क्या करोगे? सार बनावेंगे। सार बना के क्या करोगे? वीर्य्य बनावें। क्योंकि सुश्रुत में लिखा भी है —

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान मेदाः प्रजायते।
मदसोऽस्ति ततो मज्जा मज्जा शुक्रस्य संभवः॥

अर्थ—रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेदा, मेदा से मज्जा, मज्जा से हड्डी, हड्डी से सार, सार से वीर्य्य बनता है। तब तोमहात्मा ने कहा—गाड़ियों अन्नादिक पदार्थों में कितना वीर्य बनता है? इसने कहा—बहुत ही थोड़ा। फिर उसे क्या करोगे? कहा— रण्डियों की नरदबीनरूपी मोरियों में फेंक देंगे।

अब आप लोग सोचें कि जिस अन्न के प्राप्त करने में कितने पाप तथा कितने कष्ट सहे, फिर उससे वीर्य बनाने में कितने कष्ट सहे, पुनः उसे इस प्रकार व्यर्थ फेंकना कितना अनुचित है!

४०—बिना परीक्षा के ब्याह।

पर हथ बनिज सँदेसे खेती।
बिन वर देखे ब्याहैं बेटी॥

एक सेठजी ने अपनी कन्या के जिसकी अवस्था आठ वर्ष की थी, विवाह के लिए एक नाई को भेजा। नाई कुछ दूर चल कर दूसरे गाँव में पहुँचा। वहाँ एक लालाजी ने नाई को कुछ दे दिया दही बूरा खिला ब्याह निश्चय कर लौटा दिया। जब नाई लौट कर आया तो लालाजी ने कहा—"कहो नाऊ-ठाकुर, विवाह कर आये?" कहा—"हाँ लालाजी, ब्याह ठीक हो गया।" लालाजी ने कहा कि—"वर की अवस्था क्या है?" नाऊठाकुर ने उत्तर दिया—"लालाजी, बीस बीस बीस।" लालाजी ने कहा—"और धन वन?" नाऊठाकुर ने कहा—"लालाजी, धन तो इतना अंधाधुन्ध है कि कहीं कोई लिए जाता

कहीं कोई लिए जाता ! पर वह कुछ देखते ही नहीं।" लालाजी ने पूछा—"और इज़्ज़त भलमन्सी कैसी है ?" नाऊ ठाकुर ने कहा—"लालाजी चार आदमी हर समय साथ चलते हैं, इज़्ज़त मरजाद को क्या कहना।" लालाजी ने कहा—"और बर का स्वभाव कैसा है ?" नाऊ ठाकुर ने कहा—"लालाजी चाहे कोई शिकायत लावे, सुनते ही नहीं। बड़ा सीधा स्वभाव है।" लालाजी के सब संदेह दूर होगये और व्याह ठीक होगया और भी जो मध्य की रीतें थीं सब नाऊ ठाकुर कर करा आये। जब व्याह का दिन आया और लड़का भाँवरों में गया तो बरात वालों में से एक ने उसे गोद में उठा पाटे पर बिठाल दिया। तब तो लोगों न बर को देख कहा—"नाऊठाकुर, यह लड़का कैसा ? तुम तो कहते थे कि बीस वर्ष का है ?" नाऊठाकुर ने कहा—"लालाजी, आप न समझें तो मैं क्या करूँ, हमने नहीं कहा था कि—'बीस बीस बीस।" पुनः लालाजी ने कहा—"यह तो अन्धा भीहै।" नाई ने कहा—"सरकार, हमने तो यह भी कहा था कि उनके यहां से चाहे कोई कुछ ले जाय, देखते ही नहीं।" जब पंडित ने वर से कहा—"जल ले आचमन कीजिये।" बर ने सुनाही नहीं तब लालाजी ने कहा कि—"यह तो बहिरा भी है।" नाई ने कहा—"लालाजी, हमनेतो कहा था कि उनसे चाहे कोई शिकायत करे, सुनते ही नहीं, स्वभाव के बड़े सीधे हैं।" पुनः पंडित ने कहा—"आप उस पाटे पर जाईये।" तब चार आदमियों ने उठाकर बिठाया। तब तो लालाजी ने कहा—"यह तो लँगड़ा भी है।" नाई ने कहा—"लालाजी हमने नहीं कहा था कि चार आदमियों के साथ चलते हैं, वह ऐसे इज़्ज़तदार हैं।"

———

४१—जैसा करना वैसा भरना।

एक वैश्य की बहू बहुत ही कर्कशा दुष्ट प्रकृतिवाली थी। निशदिन न कुछ काम न काज, केवल अपनी सास से लड़ने का उसका काम था और यहाँ तक अपनी सास के साथ अत्याचार करती थी कि अपने उतारन फटे पुराने वस्त्र उसके पहिनने को और एक टूटी सी खाट उसके लेटने को दे रक्खी थी और खाने को भोजन जो सबसे बुरा अनाज सड़ा घुना चूनी भूसी होती थी उस की रोटियाँ और दाल मिट्टी के कूड़ों में दिया करती थी। परन्तु इस बहू के भी एक लड़का था। जब यह लड़का सयाना हुआ और इसका ब्याह हुआ और उसकी स्त्री घर आई तो वह भी अपनी सास के साथ तो दुष्ट व्यवहार करती थी, पर सास अपनी बहू को बड़े प्यार से रखती थी। परन्तु छोटी बहू अपनी सास के व्यवहार जो वह अपनी सास से करती थी नित्य देखा करती थी। यह बड़ी बहू अपनी छोटी बहू के आने पर अपनी बुढ़िया सास को इसी के हाथ कूँड़े में भोजन भेजती थी और यह छोटी बहू अपनी सास की सास यानी अजियासास को भोजन खिला कूँड़े को दीवार से औंधा देती थी। इस प्रकार करते करते बहुत कूँड़े जमा हो गये। एक दिन इस छोटी बहू की सास यानी बड़ी बहू ने कूँड़े देखे तो वे बहुत से जमा हो गये थे, तब तो वह अपनी पतोहू छोटी बहू से बोली—"बहू, ये कूँड़े क्यों इकट्ठा करती जाती है? तमाम जगह घेर रक्खी है, इन्हें फोड़ती क्यों नहीं जाती?" उसने उत्तर दिया कि—"सासजी, फिर तुम्हें आगे मैं काहे में भोजन दिया करूँगी? कहाँ से इतने कूँड़े लाऊँगी?" यह सुन कर बड़ी बहू ने अपना दुष्ट व्यवहार छोड़ दिया। सच है, किसी कवि ने कहा है—

चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम्।
प्रसादयति यो लोकं तं लोकोऽनुप्रसीदति॥

४१—मूर्ख।

बुद्ध्यैव विद्या सफला फलप्रदा,
अबुद्धि विद्या विफलाऽफलप्रदा।
यथाति मूढाश्चतुरोऽपि संगता,
गताः प्रदेशं त्वधनाः पुरावपि॥

अर्थ—बुद्धि ही से विद्या सुफल होती है और बुद्धि से रहित विद्या व्यर्थ होती है। यथा—

एक ज्योतिषी, एक वैद्य, एक नैयायिक और एक वैयाकरणी ये चारों द्रव्य प्राप्ति की आशा से विदेश को निकले। ये चारों मनुष्य यद्यपि पण्डित थे तथापि बुद्धि से शून्य थे। चलते चलते जब वे बहुत दूर निकल कर एक राजा की राज्य में पहुंचे तो ग्राम के बाहर बैठ आपस में सम्मति की कि मुहूर्त पूर्वक ग्राम में चलना चाहिये, अतः सबों ने कहा कि—"महाराज ज्योतिषी जी, कोई ऐसा मुहूर्त्त निकालिये कि जिसमें चलते ही सिद्धि प्राप्त हो।" ज्योतिषी जी महाराज ने मीन मेख वृष मिथुन कर कहा कि "रात में २ बजे ऐसा मुहूर्त्त है कि चलते ही कार्य सिद्ध होगा।" जब दो बजे रात को चलना है तो कुछ भोजनादि का प्रबन्ध करना चाहिये, अतः यह सम्मति हुई कि भोजन के लिए वैद्यजी को भेजना उचित है, क्योंकि ये सम्पूर्ण पदार्थों के गुण दोष जानते हैं, इससे ये उत्तम पथ्य रूप भोजन लायेंगे और यह

भी सम्मति हुई कि साथ में नैयायिक जी को जाना चाहिये क्योंकि यदि ये साथ होंगे तो तर्क वितर्क हो भोजन ठीक आयेगा। ऐसा सोच इन दोनों महाशयों को भोजन लेने के लिये भेजा। अब तो वैद्य जी सोचने लगे कि अमुक पदार्थ ले चलें तो वह कफ़वर्द्धक है और अमुक ले चलें तो बातबर्द्धक है और अमुक ले चलें तो पित्तवर्द्धक है। यह सोचते ही थे कि वैद्यजी को याद आया 'सर्वरोगहरो निम्बः' इसलिए नैयायिकजी से कहा—"नीम के पत्ते सर्वरोग नाशक हैं, चलिये, उन्हें तोड़ें।" निदान दो गट्ठे नीम के पत्ते तोड़े गये, वैद्यजी ने कहा—"जब तक मैं इन्हें बाँध रहा हूँ तब तक आप हाट से घृत लेते आइये।" नैयायिकजी घृत लेने गये। हाट से घृत लेकर मार्ग में चले आते थे कि अनायास ही इनके मन में शंका उत्पन्न हुई कि—"घृताधारं पात्रं यदि वा पात्राधारं घृतं।" अर्थात् घृत के आधार पात्र है वा पात्र के आधार घृत है। पुनः सोचा कि—'प्रत्यक्षस्य किं प्रमाणम् ?" यह विचार कर पात्र औंधा कर दिया। सम्पूर्ण घृत भूमि पर गिर पड़ा। कोरा पात्र ले वैद्य के पास आये। वैद्यजी ने पूछा—"घृत ले आये ?" तब उन्होंने सम्पूर्ण वृत्तान्त वैद्यजी को कह सुनाया। दोनों नीम के पत्तों के गट्ठे सिर पर रक्खे हुए पूर्व स्थान पर आ विराजे। अब तीन तो अपना अपना काम कर चुके, रहे व्याकरणी जी, उनसे कहा गया कि—"अब आप इसे पकाइये।"' व्याकरणी जी कुम्हार के यहाँ से दो नाँदे लेकर और उनमें नीम के पत्ते भर चार चार घड़ा उनमें जल डाल कर उबालने लगे। जब नीम के पत्ते "बुड़ बुड़ बुड़ बुड़" चुरने लगे, तब तो व्याकरणी जी ने कहा—"अशुद्धं न वक्तव्यं, अशुद्धं न वक्तव्यं।" परन्तु जड़ नाँद या जल क्या सुनता, कैसे चुप होता, जब वह बड़ बड़ होता ह गया तो व्याकरणीजी ने क्रोध में आ पात्र भूमि में दे मारा

और कहा—"अशुद्धं किं वक्तव्यं ?" अतः चारो तमाम दिन भूखे रहे। रात को दो बजे राजा के शहरपनाह का फाटक बन्द हो गया। दूत पहरा देने लगे। उस समय इनका मुहूर्त आया। जब ये चारो शहर को चले तो वहाँ फाटक के किवाड़े बन्द पाकर बोले कि—"फाटक की खिड़की अवश्य तोड़ना चाहिये, क्योंकि इस सायत में प्रवेश करने से बड़ी सिद्धि प्राप्त होगी।" अतः चारों ने ज्योंही फाटक की खिड़की को तोड़ा त्योंही राजदूत उन चारों को पकड़ ले गये और राजा के यहाँ से छै छै मास का कठिन कारागार हुआ। यह सिद्धि प्राप्त हुई। कहिये, इनको विद्या पढ़ाने से क्या फल हुआ? ठीक किसी भाषा कवि ने कहा है—

एरे गन्धी सुघर नर, अतर सुँघावत काहि।
कर फुलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि॥

तब गंधी ने कहा—

नहिं गंगा नहिं गोमती, नहीं राग संचार।
तू कित फूली केतकी, गंधी गाँव गँवार॥

४२—कभी कभी मूर्ख अपने मण्डल में विद्वानों को जीत लेते हैं।

एक पण्डितजी पच्चीस वर्ष काशीजी में पढ़ आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण कर आ रहे थे। वे एक मूर्खों के गाँव में से आ निकले। उस ग्राम के वासी इनकी ढीली धोती चंदन तिलक देख, बोले—"क्या आप पण्डित हैं?" उन्होंने कहा—"हाँ पण्डित हूँ"

कहा—"आप कहाँ से आ रहे हो ?" पण्डित जी ने कहा—"काशी जी से।" पूछा—"आप कहाँ तक पढ़े हैं ?" पण्डितजी ने कहा—"मैं आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण कर आया हूँ।" ग्रामवासियों ने कहा—"आप हमारे पण्डित लठा पाँड़ेजी से शास्त्रार्थ करेंगे ?" पंडितजी ने कहा—"हाँ करूँगा, आप उनको बुलाइये।" ग्रामवासियों ने कहा—"भाई इस प्रकार नहीं, पहले यह प्रतिज्ञा हो जाय कि यदि आप जीतें तो हमारे पंडित लठा पाँड़े के सम्पूर्ण पोथी पत्रा ले लीजिये और यदि हमारे पंडित लठा पाँड़े जीत जायँ तो आपके सम्पूर्ण पोथी पत्रा ले लें।" पंडित जीने कहा—"ऐसाही सही, आप लठा पाँड़ेजी को ले आइये।" ग्रामवासी लठा पाँड़े जी को इस श्लोक को भाँति—

बड़ा धोता बड़ा पोथा पण्डिता पगड़ा बड़ा।
अक्षरं नैव जानाति लपोड़संखाय नमोनमः॥

एक बड़ी भारी धोती काशी के पंडित जी से चार अंगुल नीची पहिरा कर तथा बहुत कुछ चंदन तिलक चौथिहे मटके की तरह रंग पंडित के सामने लाये। काशी के पंडित जी ने कहा—"पंडित जी, नमस्कार।" तब तो लठा पांड़ेजी ने कहा—"नमस्कार, फमस्कार, ठमस्कार, गमस्कार।" काशी जी के पंडित जी यह सुन चुप हो गये कि यथार्थ में मैं इस मूर्ख से नहीं जीत सकता। लठा पांड़ेजी ने कहा—"अच्छा आप बड़े पंडित हो तो बताओ इसका क्या अर्थ है—

"खरूख खैय्या मय्या।"

पर पंडित जी चुपके चुप ही रहे। गांववालों ने पंडित जी को चुप देख सब पुस्तकें छीन लीं। तब तो पंडित जी चुप के से सोचते विचारते हुए चल दिये। जब घर पहुँचे तो इनका

भाई जो मूर्खता में लठा पांड़े का बाप था, हल जोत कर आया और अपने भाई से मिल कर पूछा कि—"भाईजी, आप उदासीन क्यों हैं ?" भाई ने सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। यह सुनते ही वह लठा पांड़े से नीची धोती, टीका पाटा, तिलक छाप लगा एक बोरे में पक्की ईंटें भरा एक आदमी के सिर पर रखवा अपने से एक हाथ ऊँचा लट्ठ ले लठा पांड़े के गांव में जा विराजा, परन्तु वहां यह दशा थी कि—

घर की गाय गोलैंदा खाय। बार बार महुआ तर जाय॥

अतः ग्रामवासियों ने आ कर इनसे पूछा—"क्या आप पण्डित हैं ?" इन्होंने कहा—"हाँ।" पूछा—'कहाँ पढ़े हो ?' कहा—"नदिया शान्ती में।" कहा "हमारे पंडित लठा पांड़े से शास्त्रार्थ करोगे ?" कहा—"हाँ हाँ, और विद्या किस लिए पढ़ी है ?" तब तो गाँववालों ने कहा कि-"शास्त्रार्थ के प्रथम यह प्रतिज्ञा हो जाय कि यदि आप जीतें तो हमारे पंडित लठा पांड़े की आप सब पोथी पत्रा ले लें और यदि लठा पाँड़े जीतेंगे तो वह आपकी सब पुस्तकें ले लेंगे।" इन्होंने कहा—"हमें स्वीकार है, आप लठा पांड़े को लाइये।" तब ग्राम वासी लठा पाँड़े का पूर्ववत् भेष बना लिवा लाये। आते ही लठा पाँड़े ने कहा—"नमस्कार, फमस्कार, ठमस्कार, गमस्कार।" इसने कहा—'नमस्कार, फमस्कार, ठमस्कार, गमस्कार और घमस्कार।" बस प्रणाम होने के पश्चात् हो लठा पाँड़े ने कहा-"खख्ख खैया।" इसने कहा—"क्या मूर्ख है, पहिले ही खख्ख खैया ? पहिले जोतै जोतैया, बवै बवैया, सिंचै सिंचैया, गोड़ै गोड़ैया, कटै कटैया, मड़ै मड़ैया, उड़ै उड़ैया, पिसै पिसैया, पवै पवैया, तब पीछे को खख्ख खैया।" बस, यह सुनते गाँववालों ने कहा—"लठा पांड़े हार गये।" अब तो इसने लठा पाँड़े के सब पोथी

पत्रा ले गाँव के लोगों से यह कहा कि—"आज के दिन जो पंडित हारा हो, यदि उसके मूछ का एक बार अपने घर ले जाय तो घरों में जितना लोहा हो सोना हो जाय।" तब तो गाँव के सब लोगों ने दौड़ दौड़ पंडित जी की सम्पूर्ण मूछें उखाड़ लीं। अब तो पंडित जी का मुँह बिल्कुल फूल गया। एक अहीर की स्त्री ने यह खबर पीछे को सुनी और वह पंडित जी के यहाँ दौड़ी गई और पंडितजी से कहा कि—"पंडित, आपने सबको अपनी मुच्छ के बार बाँटे हैं, अतः हमको भी एक बार दो।" यह सुन पंडित बेचारे का तो वहाँ मुँह फूला हुआ था, अतः पंडित ने कुछ कटु वाक्य उस स्त्री को कहे। जब उस स्त्री का पति आया तो उसने अपने पति से यह सब वृत्तान्त कहा। यह गँवार जाकर पंडित से बोला कि—"क्यों पंडित, आज तक तू ने हमारी ही रोटी खाई और हमें एक बार भी न दिया?" और क्रोधित हो उसने पंडित की चोटी उखाड़ ली।

४४—मूर्खों के समाज में पण्डितों की दशा।

एक बार एक अहीरों के ग्राम में पशुओं की बीमारी हो गई। सम्पूर्ण पशु बाँ--बाँ चिल्ला चिल्ला जब मरने लगे तो अहीरों ने यत्र तत्र जा उनकी दवा पूछी। लोगों ने इनसे कहा कि—"कण्डों के बड़े बड़े अहेरा सुलगा, छै करछुले गरम करो, जब करछुले खूब लाल हो जायँ तब जो पशु बीमार हो उसके उन अहरों से करछुले निकाल दो चूतड़ों पर और दो पीठ पर और दो गर्दन पर दागने से पशु न मरेगा।" अहीर ऐसा ही करते रहे। इसके कुछ दिन पीछे एक सामवेदी पण्डित

ब्राह्मण बड़े सदाचारी सीधे सादे घूमते घामते अनायास उसी अहीरों के गाँव में पहुंचे और रात को एक चौधरी साहब के मकान पर सो रहे। प्रातःकाल चार बजे पण्डितजी ने उठ सामवेद सस्वर पाठ करना प्रारम्भ किया, परन्तु अहीरों को पण्डितजी को चिल्लाते देख ख्याल हुआ कि अरे राम राम, यह ब्राह्मण भी बिचारा मरा जान पड़ता है, वही पशुओं वाली बीमारी इसे भी हो गई। ऐसा समझ अहीरों ने अपने बच्चों से कहा— "ओरे जल्दी से थोड़े कण्डे और द करछुले ले आओ। बच्चों ने ला अपने पिताओं को कण्डे करछुले दे दिये। अहीरों ने अहरा लगा करछुले आग में धर दिये। पर सामवेदी जी को इस कृत्य का कुछ परिणाम ज्ञात न था, अतः वे बेचारे अपने इसी आनंद से वेदपाठ कर रहे थे। जब करछुल लाल हो गये तो उन लोगों ने पण्डितजी को एक रस्सी से बाँधा। परन्तु जब अहीर बाँधने लगे तो पण्डितजी ने कहा कि—"यह तुम लोग क्या करते हो?" कहा—"आपकी दवाई करते हैं।" कहा—"क्या हम बीमार हैं?" कहा—"बीमार नहीं तो चिल्लाते क्यों?" पण्डितजी ने कहा—"यह तो हम वेद पाठ करते हैं?" कहा—"इसी भाँति तो पशू वेद पाठ करते थे, पर वे सब मर गये।" पण्डितजी ने कहा—"हम नहीं मरेंगे हमें छोड़ दो।" तब तो सब अहीरों ने कहा—"यह तो बीमारी के मारे अंडबंड बकता है अरे भाई तुम जल्दी दागो नहीं तो बेचारा ब्राह्मण मर जायगा।" अतः अहीरों ने दो लाल तपे हुए करछुले ले पंडित जी के चूतड़ों में, दो पीठ पर और दो गर्दन पर लगा कर सब बोले कि—"पण्डितजी, अब तो शुद्ध हो?" पण्डित बेचारे तड़फड़ा रहे थे। यह सुन कर उन्होंने एक अँगुली से माथा ठोंका कि हमारी तक़दीर जो ऐसे गांव में आपड़े। परन्तु उन मूर्ख अहीरों ने समझा कि पंडितजी कहते हैं कि माथे पर भी।

उन्होंने कहा—"ओरे लाओ लाओ कण्डे करछुला" और झटपट उन्होंने करछुले तपा कर दो पण्डितजी के मस्तक में लगा दिये और फिर पूछा कि "पण्डितजी अब शुद्ध हो?" पण्डितजी ने सोचा कि अब बोले तो ये मूर्ख दो और लगावेंगे। ऐसा समझ पण्डित बिचारे चुप रह गये। तब अहीरों ने कहा—"अब शुद्ध हो गया।"

कोलाहले काककुलस्य जाते विराजते कोकिलकूजितं किम्।
परस्परं संवदतां खलानां मौनं विधेयं सततं सुधीभिः॥

एक भाषा कवि ने भी क्याही अच्छा कहा है—

जाइयो तहाँ जहाँ संग न कुसंग होय कायर के संग शूर भागे पर भागे है। फूलन की वासना सुहास भर वासन पै कामिनी के संग काम जागे पर जागे है॥ घर बसे घर पै बसो घर बैराग कहाँ काम क्रोध लोभ मोह पागे पर पागे है। काजर की कोठरी में लाखहू सयानो जाय काजर की एक रेख लागे पर लागे है॥

—(०)—

४५—मूर्ख को चाहे जितना समझाओ पर वह और का और ही समझता है।

एक वृद्ध पण्डित अपने पुत्र को पढ़ाते थे कि—

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः॥

पिता—पढ़ो बेटा पढ़ो, मातृवत् परदारेषु।

पुत्र—तो इसका क्या अर्थ हुआ?

पिता—पराई स्त्री को माता के समान जानना चाहिये।

पुत्र—तब तो पिताजी मेरी स्त्री भी आपकी माता होगी।

पिता—छिः छिः छिः क्या ऐसा कहना चाहिये? पढ़ो—पर द्रव्येषु लोष्ठवत्।

पुत्र—इसका क्या अर्थ हुआ?

पिता—पराई वस्तु को मिट्टी ढेले के समान जानना चाहिये।

पुत्र—तो अब दुष्ट हलवाई को मिठाई के दाम नहीं दूँगा, क्योंकि बरफ़ी पेड़े आदि मट्टी के ढेले के समान वस्तु के दाम ही क्या?

पिता—धिक् मूर्ख! अधिक समझ के पढ़, आगे भावार्थ में स्पष्ट हो जायगा। आगे को पढ़—'आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।"

पुत्र—इसका क्या अर्थ है?

पिता—जो अपने समान सबको देखता है, वह पण्डित है।

पुत्र—तब तो अच्छी बात है. पर को अपने ही समान समझेंगे, पराई वस्तु और पराई स्त्री भी अपनीही समझना चाहिये।

पिता—अरे जा मूर्ख के मूर्ख! इसी बुद्धि पर धर्मशास्त्र पढ़ना स्वीकार किया है। इससे तो खोनचा रखना सीख लेता तो घर का पालन तो होता?

पुत्र—हट बे मूर्ख पाजी।

पिता ने थप्पड़ मारा और पुत्र लड़कों में खेलने भग गया।

एक नवयुवा स्त्री गङ्गाजी को घड़ा लेकर जल भरने जाती थी। इतने में वह धर्मशास्त्र-शिक्षित बालक आया और उससे बोला कि—"अम्मा, अरी अम्मा !"

स्त्री बोली—क्यों बेटा, आ (मन ही मन) इस लड़के की कैसी प्यारी बोली है ?

बालक—क्यों री अम्मा, चीज़ खाने को एक पैसा तो दे ?

स्त्री—बेटा, मैं तो आप दुखिया हूँ, पैसा कहाँ से लाऊँ, घर घर पानी भर कर पेट पालती हूँ।

बालक—अरी राँड, पैसा क्यों नहीं देती ? भला चाहती है तो जल्दी दे, नहीं तो पीटता हूँ।

स्त्री—यह कैसा बालक है जो गालियें देता है।

बालक—नहीं हरामज़ादी ? (लात मारी और घड़ा फोड़ डाला।)

इतने में गङ्गा स्नान से लौट कर उस बालक का पिता घर को आता था, सो यह चरित्र देख कर बोला "क्यों रे बदमाश पुत्र!" पुत्र बोला—"यह मेरी माँ है, जो माँ के साथ किया करता हूँ, सोई इसके साथ करता हूँ, क्योंकि आपने सवेरे पढ़ाया ही था कि—"मातृवत्परदारेषु।" और स्त्री की तरफ़ देख कर बोला—'क्योंरी अम्मा, मेरे पिता को देख कर घूंघट नहीं काढ़ती ? क्या तू मेरी माँ है, तो मेरे बाप की भी माँ है ?'

आदमी आदमी में अन्तर। कोई हीरा कोई कंकर॥

—o—

४६–विषयों की आसक्तता से बेसमझी।

एक राजा को गाना सुनने का बड़ा ही शौक था। जो कोई उसके पास जाता था जिसे वह सुनता कि अमुक मनुष्य गाना गाता है तो उसे बुला कर गाना सुनता था। एक बार एक चमार को बुला के कहा—"अरे झुन्नैया, कुछ गाना तो सुना?" चमार बोला—"अरे सरकार, मैं गावबु वावुब का जानौं, मैं और जो सरकार का हुकुम होय सो खिजिमिति बजाय लावौं। सरकार मोहिका नाईं गाय आवति है।" राजा ने कहा—"अबे गा, थोड़ा ही गाना।" चमार ने कहा—"महाराज मैं नाईं जानति हौं।" राजा ने कहा—"अबे साले कहना नहीं मानता? गा, गा।" चमार ने कहा—"गरीबपरवर, मैं नाईं जानति हौं।" राजा ने कहा—"अबे साले गायेगा या पिटेगा?" चमार गाता है—

मोय मारि मारि ससुर गवावति है।
मोय मारि मारि ससुर गवावति है॥

इतने में उस चमार की स्त्री पहुंची और वह भी गाकर अपने पति को समझाती है कि—

मनमाँ है चाँदि पिटावान की।
मनमाँ है चाँदि पिटावन की॥

यह सुन चमार ने उत्तर दिया कि—

ओ ससुरा तो समझत नाहीं, तुइ ससुरी समझावति है।
मोय मारि मारि ससुर गवावति है॥

राजा गाना सुन बड़े प्रसन्न हुये और दोनों को इनाम देकर बिदा किया।

———

४७—जिन्हें भूकना सिखाओ वही काटने दौड़ते हैं ।

एक गड़ेरिया किसी भारी अपराध में फँस गया था जिसमें जज साहब उसे फाँसी देनेवाले थे। गड़ेरिये ने व्याकुल हो एक वकील साहब के पास जा अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया। वकील साहब ने कहा—"अगर हम तुझे फाँसीसे बचा दंगे तो एक लाख रुपया लेंगे।" गड़ेरिये ने कहा-"आप जो चाहें वह ले लें, पर मेरी जान बचाइये। जान के आगे एक लाख क्या चीज़ है। आप एक ही लाख ले लें, पर अब की बार बचा दीजिए।" वकील साहब ने कहा—"जब जब जज साहब तुझ से सवाल करें तब तब सिवाय 'भें भें भें' के और कुछ न कहना।" अतः दूसरे दिन जब गड़ेरिये का अभियोग प्रविष्ट हुआ और जज साहब ने कहा—"क्योंरे गड़ेरिये, तूने अमुक अपराध किया?" गड़ेरिये ने जवाब दिया—'भें'। जज साहब ने कहा—"अबे भें करता है या जो हम पूछते हैं, वह बतलाता है। बोल, तूने अपराध किया?" गड़ेरिये ने फिर भी कहा—'भें'। जज साहब ने कहा—"वकील साहब, क्या यह पागल है?" वकील साहब ने कहा-हुजूर बिलकुल पागल मालूम देता है।" जज साहब ने गड़ेरियेसे कहा—"अबे क्या तू पागलहै?" गड़ेरियेने फिर कहा—'भें'। जज साहब ने कहा—"निकालो इसको, यह पागल है।" गड़ेरिया प्रसन्न हो कचेहरी से निकल आया और वकील साहब ने भी प्रसन्न हो कचेहरी से निकल गड़ेरिये से कहा कि—"लीजिये, अब तो तुम्हारी जान बच गई। अब मेहनताना दीजिये।" गड़ेरिये ने कहा-'भें'। वकील साहब ने कहा—"अरे भाई हम से भी भें भें, अरे ऐसा क्यों करते हो?" गड़ेरिये ने फिर कहा-'भें'। पुनः वकील साहब ने बहुत कुछ कहा

तो गड़ेरिये ने उत्तर दिया—"वकील साहब क्या आप पागल हुए हैं ? भला जिस 'भें' ने मुझे फाँसी से बचाया क्या वह मुझे एक लाख रुपये से न बचायेगी ? इसलिये जाइये, आप अपना काम कीजिये, मेहनताने का ख्याल छोड़ दीजिये।"

उपाध्याये नटे धूर्त्ते कुट्टिन्याञ्च बहुश्रुते ।
एषु माया न कर्त्तव्या माया तेरैव निर्मिता ॥

४८—सत्य बचन महाराज ।

एक पंडितजी सबको कथा सुनाया करते थे, परंतु लोग जो कुछ पंडितजी कहा करते थे हर बात में 'सत्य बचन महाराज' कह दिया करते थे। एक दिन पंडित जी ने सोचा कि ये सब— 'सत्य बचन महाराज' ही कह दिया करते हैं या कुछ संभव असंभव का भी ख्याल करते हैं ? यह सोच पंडितजी बोले—"जो है सो एक समय के बीच में एक पर्वत में छिद्र होने से सहस्रों मक्खियां निकलती भईं।" लोगों ने कहा— "सत्य बचन महाराज।" पंडितजी पुनः बोले कि—"यह मक्खी जो हैं सो वहाँ से निकल करिके एक वैश्य की दूकान पर क एक गुड़ की भेली पर बैठ जाती भईं।" लोगों ने कहा— "सत्य बचन महाराज।" पंडितजी पुनः बोले कि—"वह मक्खियां एक एक गुड़ की भेली को जिस जिस पर बैठ रही थीं ले ले कर उड़ जाती भईं, श्री गोविन्दाय नमोनमः।" लोगों ने कहा—"सत्य बचन महाराज!" बस पंडित जी ने यह सुन कर समझ लिया कि ये सब बुद्धि से शून्य पूरे बुद्धू हैं।

वचस्तत्रैव वक्तव्यं यत्रोक्तं सफलं भवेत् ।
स्थायी भवति चात्यन्तं रागः शुक्लपटे यथा ॥

४६—असंभव का संभव कर दिखाना ।

एक बुड्ढे काश्तकार ने जो अपने घर का अकेला ही था और घर में उसके एक घोड़ा और कुछ असबाब था अपना असबाब कोठरी में बन्द करके तीर्थ-यात्रा करने का विचार किया और अपना घोड़ा एक वैश्य को सौंप कर तीर्थ-यात्रा को चला गया। यहाँ वैश्य ने काश्तकार का घोड़ा बेंच रुपया अण्टी में किया। जब पाँच छै मास के बाद काश्तकार लौटा तो उसने सेठजी, के पास जा कहा—"सेठजी, हमारा घोड़ा कहाँ है ? लाइये।" सेठ जी ने कहा—"आपका घोड़ा मरगया। काश्तकार चुप रह गया। परन्तु कुछ काल के बाद काश्तकार को पता लगा कि तुम्हारा घोड़ा मरा नहीं बल्कि इसने बेंच लिया है, अतः काश्तकार ने पुनः सेठ से कहा—"दिखाओ, हमारा घोड़ा कहाँ पड़ा है ?" सेठजी काश्तकार को लेकर वन में गये, वहाँ एक बैल मरा पड़ा था, उसे दिखलाकर बोले—"देखिये, आपका घोड़ा यह पड़ा है।" उसने कहा कि—"घोड़े के सींग नहीं होते, इसके तो सींग हैं। घोड़े के दाँत तो दोनों ओर होते हैं, पर "इसके तो एक ही ओर हैं।" सेठ जी ने कहा कि—"यही तो इसे बीमारी हो गई कि घोड़े से बैल हो गया।

असंभवं हेममृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभे मृगाय ।
प्रायः समापन्न विपत्तिकाले धियोऽपि पुंसां मलिनीभवन्ति ॥

५०–हमारे बाप दादे से सनातन चली आती है।

एक साहूकार का लड़का खेलते खेलते एक कुएँ में गिर-पड़ा। साहूकार लड़के के कुएँ में गिरने की ख़बर पाकर अपने घर से एक रस्सा लेकर दौड़ा और कुएँ में रस्सा लटका बेटे से कहा—"बेटा, इस रस्से को अपनी कमर में मज़बूत बाँध दे।" बेटे ने रस्सा बाँध दिया और बाप ने उसे कुएँ से खींच लिया। कुछ दिन के पश्चात् एक मनुष्य एक बृक्ष पर चढ़ गया, परन्तु चढ़ने को तो चढ़ गया पर उतरना उसे कठिन हो गया। अतः उसने हल्ला मचा लोगों को बुला कहा-"भाइयो, मैं इस बृक्ष पर चढ़ने को तो चढ़ गया हूं पर उतरते नहीं बनता इससे आप लोग कृपा करके कोई ऐसी युक्ति सोचें कि मुझे कष्ट न हो और बृक्ष से उतर आऊँ।" लोगों ने अपनी अपनी युक्तियाँ बतलाई परन्तु यह युक्तियाँ उस मनुष्य के जो कि बृक्ष पर चढ़ा था समझ में न आईं, लेकिन वह साहूकार का लड़का जिसके बाप ने उसे रस्सा बाँध कुएँ से निकाला था वहाँ पहुँच गया और इसने कहा कि—"एक लम्बा सन का रस्सा घर से मँगवाइये, मैं इसको अभी बिना परिश्रम के उतारे लेता हूँ।" लोगों ने इसे रस्सा मँगवा दिया। इस साहूकार के लड़के ने रस्सा हाथ में ले ऊपर को फेंक उस पुरुष से कहा—'इसे पकड़ कर तुम अपनी कमर में बाँधो।" बृक्षस्थ पुरुष ने रस्से को कमर में बाँध लिया। अब तो साहूकार का बेटा दोनों हाथों से उस रस्से को पकड़ नीचे को खींचने लगा। बृक्षस्थ पुरुष ने कहा—"यह क्या करते हो, मैं गिरा।" और उस ने दोनों हाथों से ऊपर बृक्ष की डाली पकड़ ली और "महाराज मैं गिरा, महाराज मैं गिरा" कह कर वह चिल्लाने लगा, परन्तु साहूकार के बेटे ने कहा कि—"आप निश्चय रखिये, गिरोगे

नहीं, रस्से में बांधकर खींचना तो हमारे बाप दादे से चली आती है।" ऐसा कह वृक्ष से खींच लिया और वृक्षस्थ पुरुष नीचे गिरते ही मर गया। लोगों ने कहा—"आप तो कहते थे कि यह तो बाप दादे से चली आती है, यह क्या हुआ ? यह क्यों मर गया ?" कहा—"अब कलयुग लग गया है।"

यस्यास्ति सर्वत्र गतिः स कस्मात् स्वदेशारागेण हि याति नाशम्
तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणाः क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति ॥

५१—कलियुग

एक वैद्यजी बड़े ही योग्य और अपने ग्राम के चारों ओर प्रसिद्ध थे। वैद्यजी के एक पुत्र अत्यन्त ही रूपवान् और बड़ा ही चंचल था वैद्यजी ने अपने पुत्र के पढ़ाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया परन्तु उसने एक अक्षर भी न सीखा। कुछ काल के पश्चात् वैद्यराज का देवलोक होगया, जिससे कि सारा व्यापार बन्द हो गया। अब तो वैद्यराज के पुत्र सोचने लगे कि इस प्रकार बैठे-बैठे कैसे काम चलेगा, दादाजी वाला झोला अर्थात् औष-धियों की पोटरी मौजूद ही है और गद्दी भी दादाजी वाली मौजूद और हाथ हमारे मौजूद. फिर वैद्यकी क्यों बंद कर दी जाय ? यह विचार लोगों को औषधि देने लगे, परन्तु फल उलटा होने लगा। जहाँ वैद्यराज के समय में लोग औषधि से अच्छे हुआ करते थे, वहाँ इनकी औषधि से लोग मरने लगे और यह होना ही था। तब तो लोगों ने वैद्यराज के पुत्र से कहा—"महाराज, आपके पिता के समय में तो लोग अच्छे हो जाते थे, पर अब से आप औषधि करने लगे तब से जितने आते [illegible]

हैं वही मर जाता है, यह क्या बात है?" वैद्यराज के पुत्र ने उत्तर दिया कि—"भाई, झोला वही, औषधि वही, गद्दी वही लेकिन अब कलयुग है इसलिये लोग विशेष मरते हैं क्योंकि 'न काल योगितो व्यापिनो नित्यस्य सर्वसम्बन्धात्'। परन्तु याद रहे कि काल सुख दुख का कारण है, यदि काल कारण है तो उस काल में सब की एक दशा होनी चाहिये पर यह नहीं होती, इससे निश्चय है कि काल सुख दुख का कारण नहीं।

कलियुग नहीं करयुग है ये करके तजरुबा देखलो।
क्या खूब सौदा हो रहा, इस हाथ दो उस हाथ लो॥

५२—गुरु सेवा

एक मौलवी साहब एक सेठ के लड़के को पढ़ाया करते थे। मौलवी साहब बच्चे से कहा करते थे—"अबे, तू कभी कुछ लाता नहीं।" बच्चा उत्तर देता था कि—"मौलवी साहब, लाऊँगा।" एक दिन उस सेठ के लड़के के यहाँ खीर बनाई गई और अचानक एक कुत्ते ने आकर वह खीर जुठार डाली, अतः जब सेठ जी का लड़का मौलवी साहब के यहाँ से पढ़ कर आया तो उस लड़के की माता सेठानी जी ने कहा—"आज चाहो तो अपने मौलवी साहब को खीर दे आओ।" बच्चे ने कहा—"लाओ बहुत ही अच्छा है, मौलवी साहब को खीर दे आवें।" माता ने एक कूंड़े में खीर परोस कर बेटे को दे दी। बच्चा खीर लेकर मौलवी साहब के यहाँ पहुँचा। मौलवी साहब खीर देख कर बहुत ही प्रसन्न हो गये और खाने के समय बोले कि—"बच्चा, क्या तुम्हारी माँ मेरे ऊपर आशिक हो गई जो ऐसी बढ़िया खीर भेजी?" बच्चा

बोला कि "नहीं, यह बात नहीं, बल्कि आज हमारे यहां यह खीर पकी थी परन्तु मेरी माँ कुछ काम करने लगी इतने में कुत्ते ने आकर इस खीर को जुठार दिया, इसलिये माँ ने कहा कि आज यह खीर मौलवी साहब को दे आओ।" यह सुन कर मौलवी साहब ने क्रोध में आ बच्चे का खीरवाला कूंडा इतने ज़ोर से फेंका कि कूँडा फूट गया, तो बच्चा ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। तब तो मौलवी साहब ने कहा-"अबे, रोता क्यों है ?" बच्चे ने कहा—"मेरी माँ मारेगी।" मौलवी साहब ने कहा—"बच्चे, हम तुझे कूँड़ा मँगवा देंगे।" बच्चे ने कहा-"आप क्या मँगवा देंगे, हमारा भाई इसी में रोज़ पाखाने जाया करता था।" यह सुन मौलवी साहब बहुत शरमा गये।

गुरु सुश्रूषया त्वेवं घर्षणं न तुमृत् कथाः।

५६—टेढ़ी खीर

बिना जाने हितकारी वस्तु को छोड़ देना।

अहित हित विचार शून्य बुद्धेः श्रुति समयैर्बहुभिस्तिरस्कृतस्य। उदर भरण मात्र केवलेच्छोः पुरुष पशोश्च को विशेषः।

एक स्थान में एक अन्धा बैठा हुआ था। लोग उसके सामने खीर की बहुत कुछ प्रशंसा किया करते थे। अन्धे ने कहा—"भाई खीर कैसी हुआ करती है ?" लोगों ने उत्तर दिया कि—'सफेद सफेद।' अन्धे ने कहा-"सफेद-सफेद कैसी ?" लोगों

ने कहा—"जैसे बगुला।" पुनः अन्धे ने कहा-"बगुला कैसा होता है?" लोगों ने जिस प्रकार बगुले की टेढ़ी गर्दन होती है वैसा ही हाथ कर दिया। पुनः अन्धे ने कहा—"देख कैसी खीर होती है।" जब अन्धे ने उसका हाथ टटोला तो कहा—"यह तो टेढ़ी खीर है, यह हम कैसे खा सकेंगे? यह तो गले में हिलगेगी।"

५४—सेख चिल्ली।

कर्त्तव्यरहित हो व्यर्थ मनोरथ शक्तिरहित हो।

एक सेखचिल्ली साहब एक स्टेशन पर रहा करते थे। एक दिन एक मियाँजी रेल से एक राब की गगरी लेकर उतरे और सेखचिल्ली से कहा—"अबे इस घड़े को शहर ले चलेगा?" सेखचिल्ली ने कहा-"हाँ हुजूर।" मियाँ ने कहा-"दो पैसे मिलेंगे" सेखचिल्ली ने कहा—"दोई देना।" मियाँ ने सेखचिल्ली के सिर पर घड़ा रखवा आगे आगे आप और पीछे पीछे सेखचिल्ली चले। अब सेखचिल्ली की मन्सूबेबाजी देखिये: सेखचिल्ली सोचता है कि इस घड़े को शहर में रखवाई मुझे दो पैसे मिलेंगे उन दो पैसों की एक मुर्ग़ी लूँगा और जब मुर्ग़ी के अण्डे बच्चे होंगे तो उन्हें बेच कर एक बकरी लूँगा और जब बकरी के अण्डे बच्चे होंगे तो उन्हें बेच के एक गौ लूँगा और जब गऊ के अण्डे बच्चे होंगे तो उन्हें बेच कर एक भैंस लूँगा और जब भैंस के अण्डे बच्चे होंगे तो उन्हें बेच के ब्याह करूँगा, फिर मेरे भी बाल बच्चे होंगे और वे बच्चे जब मुझ से कहेंगे कि दादा हमको फलाँ चीज़ ले दो तो हम कहेंगे-'धा बरचोद।' इस शब्द के ज़ोर से कहने से सिर से घड़ा गिर गया और गिरकर फट गया। यह

देख मियाँजी बोले—"अबे तूने यह क्या किया, घड़ा क्यों फोड़ दिया ?" सेखचिल्ली कहता है-"अजी मियाँ, आपको तो घड़े की पड़ी है, यहाँ तो हुआ किया घर गया।"

५५-मूर्खता की छड़ी

एक बार एक राजा साहब के यहाँ एक महात्माजी पहुँचे। राजा साहब ने उनकी बड़ी सेवा की और जब महात्माजी चलने लगे तो राजा साहब ने महात्माजी को एक छड़ी देकर कहा—"महाराज, आप भ्रमण किया करते हैं दुनियां में जो सब से अधिक मूर्ख आपको मिले, उसे ही यह मेरी छड़ी दे देना।" महात्माजी छड़ी लेकर चले गये। बहुत काल के पश्चात जब राजा के मरण का समय आया तो उक्त महात्माजी राजा साहब के यहाँ फिर आये और राजा साहब से पूछा-"कि राजा साहब यह राज्य पाट क्या आपके साथ जायगा ?" राजा ने कहा—"नहीं।" महात्मा ने कहा-"यह महल अटारी आपके साथ जायँगी ?" राजा ने कहा— 'नहीं।" महात्मा ने कहा—"धन सम्पति, माणिक मोती आपके साथ जायँगे ?" राजा ने कहा- 'नहीं।" महात्मा ने कहा—"यह फौज फाटा हाथी घोड़े क्या आपके साथ जाँयगे ?" राजा ने कहा—"नहीं।" महात्मा ने कहा—"यह स्त्री भाई बन्धु क्या आपके साथ जायँगे ?" राजा ने कहा -"नहीं।" महात्मा ने कहा—"यह तेरा शरीर तेरे साथ जायगा ?" राजा ने कहा—"नहीं।" महात्मा ने कहा फिर तेरे साथ भी कोई जानेवाला है ? क्या किसी साथी को तूने संसार से लिया है ?" राजा ने कहा-"नहीं।" तब तो महात्माजी ने कहा

कि—"राजा साहब, यह अपनी छड़ी लीजिये, आप से अधिक मूर्ख और हमें नहीं मिल सकता।" किसी कवि का वाक्य है—

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे नारी गृहे द्वारजनः श्मशाने।
देहश्चितायां परलोक मार्गे धर्मानुगो गच्छति जीव एकः॥

५६—ईश्वरके व्यापक जानने और सच्चा विश्वास होने से कभी मनुष्य पाप नहीं कर सकता

एक गुरु के पास दो मनुष्य चेला होने को आये। गुरुजी ने कहा कि—"हम तुम दोनों को एक एक खिलौना देते हैं, सो तुम खिलौना को लेकर ऐसी जगह से जहाँ कोई न हो तोड़ लाओ, तब हम तुमको अपना चेला बना लेवेंगे।" दोनों अपना अपना खिलौना लेकर चले। एक चेले ने तो गुरुजी के मकान के पीछे जा चारों तरफ़ चकमक देखा कि अब कोई नहीं है और खिलौना तोड़कर लाकर रख दिया, और दूसरे ने खिलौने को लेकर सारा संसार ऊँची से ऊँची पहाड़ की चोटियाँ और गहरी से गहरी समुद्र की सतह और एकान्त से एकान्त अँधेरी कोठरियाँ तथा बड़े बड़े भयानक बन गोद डाले परन्तु उसे कहीं ऐसा स्थान न मिला जहाँ खिलौना तोड़ता, अतः दूसरे ने खिलौना वैसा ही लाकर रख दिया। गुरु ने दोनों से प्रश्न किया कि—'क्योंजी, आपको कहाँ ऐसा स्थान मिला जहाँ से खिलौना तोड़ लाये?', उसने कहा—'गुरुजी, मैं तो आपके मकान के पीछे गया, वहाँ कोई न था, बस मैंने खिलौना तोड़ आपके आगे लाकर रख दिया। दूसरे से कहा—"क्यों भाई

तुम्हें कोई ऐसा स्थान नहीं मिला जहाँ से खिलौना तोड़ लाते ? तुमने क्यों लाकर वैसा ही रख दिया ?" इस दूसरे ने उत्तर दिया कि-"महाराज, मैंने ऊँची से ऊँची पहाड़ों की चोटी, गहरी से गहरी समुद्र की सतह, अँधेरी सी अँधेरी एकान्त कोठरियें और बड़े-बड़े भयानक जङ्गल घूमे परन्तु मुझे कहीं ऐसा स्थान न मिला जहाँ दूसरा न होता। महाराज—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥

एकोहमस्मीत्यात्मानं यत्वं कल्याण मन्यसे ।
नित्यं हृद्यवस्तत्येष पुण्य पापेक्षितः मुनिः ॥

इसलिये नहीं तोड़ा।" महात्मा ने इसे ही अपना चेला बनाया और दूसरे से कहा—"तू अभी इस योग्य नहीं।"

५७—व्यर्थ विवाद

एक ससुर दामाद दोनों किसी खेत में हल चला रहे थे। ससुर ने कहा—"अमुक ग्राम यहाँ से ४ कोस है।" दामाद ने कहा—"तीन कोस है।" ससुर ने कहा "नहीं ४ कोस।" दामाद ने कहा "नहीं तीन कोस।" बस दोनों में युद्धकाण्ड प्रारम्भ हो गया।" युद्ध हो ही रहा था कि इतने में उसकी लड़की जो अपने दामाद से लड़ रहा था आई और बोली— "पिताजी, क्या है ?" बाप बोला—"बेटी, अमुक ग्राम यहाँ से चार कोस है और यह कहता है तीनही कोस है, एक कोस हमारा मुफ्त ही में लिये जाता है।" बेटी ने कहा—"पिताजी,

आपने तो हमें हमारे ब्याह में बड़ी बड़ी चीज़ें दीं, अब क्या एक कोस भी न दोगे ?" पिता बोला-"इस तरह एक कोस क्या चाहे चारों ले लें, पर यह तो मुफ्त में ही लिये जाता था।"

५८-व्यर्थ विवाद

एक बार दो काश्तकार अफीमचियों ने सुलह की कि यारो इस साल हम तुम दोनों साझे-साझे ईख बोवेंगे। दोनों ने कहा—"बहुत अच्छा।" उसमें से एक बोला कि—"यार, हम तो एक ईख उसमें से नित्य चूसा करेंगे।" दूसरे ने कहा—"यार हम दो नित्य चूसा करेंगे।" पहले ने कहा—"तो हम तीन चूसेंगे।" दूसरे ने कहा—"तो हम चार चूसेंगे।" उसने कहा-"तो हम पाँच रोज़ चूसेंगे।" उसने कहा—"हम ६ रोज़।" उसने कहा—"साले, हम ५ रोज़ चूसेंगे, तू ६ क्यों चूसेगा ?" उसने कहा—"साले, तूने क्यों कहा कि हम ५ रोज़ चूसेंगे ?" इस प्रकार दोनों में खूब ही घोर युद्ध, खून खच्चर हुआ। अब अदालत में मुक़द्दमा गया तो मैजिस्ट्रेट ने कहा—"तुम दोनों ने हमारी ज़मीन में ईख बोकर खूब ही चूसी, इसलिये बीस बीस रुपये लगान के दोनों दाखिल करो—

शतं दद्यान्न विवदेदिति विज्ञस्य सम्मतम् ।
विना हेतुमपि द्वन्द्वमेतत् मूर्खस्य लक्षणम् ॥

१६—मनुष्य पंच किस प्रकार बन सकता है ?

एक महानंद नामक पुरुष कुछ थोड़ा ही पढ़ा लिखा और इतना दीन था कि उसके निज का मकान भी न था और एक शिवाले की कोठरी में किसी राज्य में जैपुर की ओर से रहा करता था। एक दिन उसके ग्राम में दो मनुष्यों में कुछ झगड़ा हो रहा था। महानंद बीच में कुछ बोल उठा। तब तो उन दोनों झगड़ालुओं ने महानंद से कहा कि—"तू कहाँ का पंच है जो बीच में बोलता है ?" यह सुनकर महानंद ने सोचा कि पंच कोई बड़ी अच्छी चीज़ है, बस यहीं से उसके हृदय में पञ्च बनने का ख़याल हुआ और यहाँतक कि पञ्च बनने के लिए उसने खाना पीना सोना सब कुछ छोड़ दिया और उदासीन वृत्ति से वह रात दिन पञ्च बनने के उपाय सोचा करता था महानंद की स्त्री ने उसकी यह दशा देख कहा—"स्वामिन्, आप भोजन न करने, जल न पीने वा न सोने या दिन रात शोक में रहने से थोड़े ही पञ्च बन जायँगे, इस लिए आप अच्छी तरह भोजन कीजिये और प्रसन्न रहते हुये आपको जो उपाय मैं बताऊँ वह कीजिए, तब आप पञ्च बनगे।" महानंद तो इस बात में था ही इसलिए कहा—"प्रिये, बतलाइये वह क्या उपाय है ?" स्त्री ने कहा—"आप अपने निज के कामों अर्थात् भोजन वस्त्र के उद्योग के इतर जितना समय आपको मिले, उस समय में आप बिना किसी अपने स्वार्थके केवल परस्वार्थ और संसार के उपकार के लिए सब का हित किया कीजिये और वह बचा हुआ समय ग्राम के लोगों के कामों में व्यय कीजिये। बस, कुछ दिनोंमें आप पञ्च बन जायँगे।" महानंद ने यह व्रत धारण कर लिया। भोजन वस्त्र के उद्योग के इतर जितना समय बचता, उसमें महानंद गाँव में जिस किसी के यहाँ लड़का लड़की का

बिवाह होता जाकर बिना कहे उसके काम करता। जो कुछ कमाने में द्रव्य बचता भूखों को दिया करता। किसी को बीमार सुनता तो उसके पास जा बैठता। उसके काम करता। कोई मर जाय तो उसके साथ जाता, आदि आदि परहित किया करता था। एक दिन ऐसा समय आया कि उसी ग्राम में एक खत्रानी का बेटा, जो अपने घर की करोड़पती थी और उसके एकही बेटा था, बहुत ही बीमार हो गया। इस खत्रानी के पुत्र के पास जितने पुरोहितादि रहते थे उन सबकी यही नियत थी अगर यह खत्रानी का पुत्र मर जाय तो द्रव्य सब हमी लोगों को मिले यह समाचार किसी प्रकार खत्रानी को सूचित हो गया। उसने एक बुढ़िया से यह सब वृत्तान्त कहा। बुढ़िया ने कहा—"इस ग्राम में एक महानंद नामक पुरुष रहता है जो बड़ा ही परोपकारी है, यदि उसे खबर हो जाय तो वह आपके लड़के के पास रहेगा और बड़ी अच्छी प्रकार औषधि आदि का प्रबन्ध करेगा।" खत्रानी ने उसी बुढ़िया के द्वारा महानंद को खबर करादी। महानंद आकर जब हर प्रकार से उस खत्रानी के पुत्र की औषधि आदि की सेवा करने लगा, तब खत्रानी ने पूर्व पुरोहितादि सब को निकाल बाहर किया। कुछ दिन के बाद खत्रानी का पुत्र अच्छा होगया, तब तो उसके हृदय में यह ख्याल पैदा हुआ कि इसने हमारे पुत्र की बहुत कुछ सेवा की है अतः इसे कुछ देना चाहिये। यह सोच वह १० हज़ार रुपया महानन्द को देती रही, परन्तु महानन्द ने उसके बहुत कुछ प्रार्थना करने पर भी न लिया अब उसके पुत्र के हृदय में यह भाव उत्पन्न हुआ कि यदि महानन्द रुपया नहीं लेता तो इसके उपकार का कुछ प्रत्युपकार करना चाहिये। यह इस उद्योग ही में था कि उसको मालूम हुआ कि महानन्द के हृदय में पंच बनने का ख्याल है। बस खत्रानी के करोड़पती पुत्र ने अपने

मन में यह ठहरा लिया कि मैं उसे पंच बनाऊँगा। खत्रानी का पुत्र राजा की सभा का मेम्बर था। अतएव अब जितने भी मामले इस खत्री के पुत्र के यहाँ आते, सब में महानन्द को मध्यस्थ किया करता। इस प्रकार महानन्द की तमाम वस्ती में शोहरत हो गई। अबकी बार जब राज्य में पंचों का चुनाव हुआ तो महानंद का नाम आया, परन्तु कुछ लोगों ने महानन्द के पंच बनने में विरोध किया, इस कारण वह पंच न बन सका। तब तो लोगोंने महानंदजी से कहा कि--"अब आप पंच बनने का उद्योग छोड़ दें, देखो आया अवाया नाम जब आप नहीं चुने गये तो अब आप पंच नहीं हो सकते।" महानंद ने कहा--"जहाँ हमें कोई पूछता ही न था वहाँ हमारा नाम तो आया और इस साल यदि नाम आया तो आगे पंच भी बनजाऊँगा।" महानंद उसी भांति अपने काम करता रहा। अगले वर्ष लोगों ने उसको पंच चुन लिया। परन्तु कुछ लोगों ने राजा के पास जाकर शिकायत की कि 'महाराज, पंच की बड़ी जिम्मेदारी है, और लोगों ने एक महानंद को जिसके घर-बार कुछ नहीं और जो महा कंगाल न कुछ पढ़ा न लिखा, पंच चुना है।' राजा यह सुनकर हैरान हुआ कि जब उसमें कोई बात नहीं फिर लोगों ने उसे पंच क्यों चुना? अतः राजा ने ग्राम के लोगों को बुलाकर पूछा कि "जब महानंद में न विद्या है, न धन है, न बल है फिर आप लोगों ने उसे पंच क्यों चुना है?" लोगों ने राजा को उत्तर दिया कि विद्या तो हम तब देखते जब हमें उससे पढ़ना होता और बल हम तब देखते जब हमें उससे युद्ध करना होता और धन हम तब देखते जब हमें उससे कर्ज़ा लेना होता, हमें तो ऐसा पंच चाहिये जिसमें प्रजा का हित हो, अन्याय वा जब्र किसी पर न हो, सो ये गुण महानंद के बराबर ग्राम भर में किसी में नहीं।" राजा साहब को महानन्द के

गुण सुन के बड़ा ही प्रेम हुआ। राजा ने महानंद को बुला बड़ी बड़ी सेवा की और १० मौजे जागीर काट दिया। पर महानंदजी जैसे पहले अपनी टूटी फूटी झोपड़ी में रहते थे और ५) रु० माहवारी में अपना निर्बाह करते थे उसी प्रकार करते रहे और और जागीरवाले १० गांवों में जो मुनाफ़ा होता, उसे यह कह कर कि यह जागीर मुझे प्रजा-हित करने से मिली है, अतः यह मेरी नहीं, किन्तु प्रजा-हित की है, प्रजा-हित के कामों में लगा देते। महानन्द का ऐसा बर्ताव देख अगले वर्ष में सब लोगों तथा राजा ने महानंदजी को पंच क्या बल्कि सरपंच नियत किया।

पञ्चभिः सह गन्तव्यं स्थातव्यं पञ्चभिः सह।
पञ्चभिः सह वक्तव्यं न विरोधः पञ्चभिः सह॥

————

६०—स्वार्थ और परसंताप।

एक वैश्य जिनका नाम लाला स्वार्थीलाल था, फ़साद नामक ग्राम में रहा करते थे। लालास्वार्थीमल 'यथा नामा तथा गुणा' ही थे। इनकी एक कपड़े की दूकान बीच बाज़ार में थी। इनका सदैव यही ख्याल रहता था कि यदि किसी का भला हो तो मेरा नाम हो और मेरा कपड़ा बिके। इनका काम यह था कि प्रातःकाल से जाकर दूकान पर विराज जाते और हाथ में एक माला लें 'राधेश्याम राधेश्याम' जपा करते थे। जब देखते कि ग्राहक लोग जा रहे तो बड़े उच्च स्वर से 'राधेश्याम का महामंत्र उच्चारण करतें जिससे साधारण

ही ग्राहकों की दृष्टि लाला स्वार्थीमल की ओर जाती थी। जिस समय ग्राहकों की दृष्टि इनकी ओर पड़ती तो ये हाथ उठा अँगुलियों के संकेत से ग्राहकों को बुला लिया करते थे। जब ग्राहक पास आते तो ये पूछा करते कि—'कहाँ चले?' जो वे उत्तर देते—" कपड़ा लेने।" तब स्वार्थीमल कहते कि— "लीजिये, यह तो आपके घर की दूकान है और बाजार भर में तुम्हें ऐसा सस्ता कपड़ा नहीं मिल सकता।" इस प्रकार ये ग्राहकों को मूड़ते और जो ग्राहक दूसरी दूकानों से कपड़ा लेकर इनकी दूकान के सामने से निकला करते तो भी ये अपने महामंत्र 'राधेश्याम' को उच्च स्वर से उच्चारण करते। जब उनकी दृष्टि इनकी ओर पड़ती तो संकेत से ग्राहकों को बुला पूछते थे--"यह कपड़ा कितने गज़ लाये?" जब ग्राहक उत्तर देते कि इतने गज़। तब लाला स्वार्थीमल बुरा मुँह बना बिचकाते थे। तब ग्राहक प्रश्न करते कि—"लालाजी, क्या है?" तो स्वार्थीमल उत्तर देते कि—"भाई, तुम्हारी रुचि कि तुम यह कपड़ा चार आने गज़ ले आये। हमारे यहाँ से आप यह ≡)॥ में ले जाइये।" कपड़ा चाहे चार ही आने गज़ का हो, पर लाला स्वार्थीमल की यह युक्ति थी एक आध बार घाटा खाकर भी ग्राहक अपना बना लिया करते थे। इस प्रकार लाला स्वार्थीमल बड़े धनाढ्य हो गये। पर आप लोगों को याद रहे कि धर्मशास्त्र में लिखा है—

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दश वर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्तेनु षोडशे वर्षे समूलं च विनश्यति॥

अधर्म से जोड़ा हुआ धन कभी ठहरता नहीं। पापों की पूंजी कभी किसी को नहीं पचती है। अतः लाला स्वार्थीमल

के यहाँ कुछ तो चोरी हुई, कुछ राजा ने डाँड़ लिया, कुछ पुलिस ने हाथ साफ़ किये, रहा रहाया अग्नि ने स्वाहा कर दिया। अन्त में यह दशा हुई कि लाला स्वार्थीमल दो-दो पैसे की मज़दूरी करने लगे। परन्तु लाला स्वार्थीमलजी 'राधाकृष्ण' के उपासक तो थे ही. एक बार राधाकृष्णजी प्रसन्न होकर बोले कि—"लाला स्वार्थीमल माँगो तुम. जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो।" लाला स्वार्थीमल माँगनेवाले तो यह थे कि—"महाराज, हम अपने पड़ोसियों से सदैव दूने रहें।" पर माँग बैठे यह कि—"हम से पड़ोसी सदैव दूने रहें।" राधाकृष्ण ने स्वार्थीमल जी को एक घंटा देकर कहा कि—"जब जब तुम्हें जिस चीज़ की आवश्यकता पड़े यह घंटा आपको संपूर्ण पदार्थ देगा और जितनी चीज़ तुम्हें देगा उससे दूनी पड़ोसियों को।" जब लाला स्वार्थीमल घंटा ले रास्ते में आये तो ख्याल हुवा—"हाय! हम राधेश्याम से क्या माँग आये कि पड़ोसी सदैव दूने रहें, ख़ैर जो कुछ हुआ। लेकिन जब हम घंटा ही न बजायंगे, तो पड़ोसी कैसे दूने होंगे। चाहे हम जो दो-दो पैसे की मज़दूरी करते थे वही करते रहें, पर पड़ोसी कैसे दूने हो जायँ?" यह विचार घंटा बाँध के कोठरी में बन्द कर दिया और अपनी स्त्री से कहा कि—"देख, हम तो परदेश नौकरी के लिए जाते हैं पर तू कभी इस घंटे को न खोलना।" जब लाला स्वार्थीमल परदेश चले गये और लालाजी के यहाँ एक दिन खाने को कुछ न रहा, स्त्री को इस भाँति दो व्रत हुए तो तीसरे दिन उस ने सोचा कि और तो मेरे यहाँ कुछ है ही नहीं, हो न हो आज जो यह घंटा पड़ा हुआ है इसे ही बेच लावें तो दो चार आने पैसे मिल जाँयगे जिससे एक आध दिन का निर्वाह होगा, फिर देखा जायगा। इस ख्याल को लेकर स्त्री ने घंटा खोला तो घंटा बज गया, बस घंटा के बजते ही चार आने इसे मिल गये औ

आठ-आठ आना पड़ोसियों को मिले। इस प्रकार जब स्त्री को दो चार दिन पैसे मिलते रहे तो उसने समझ लिया कि यह घंटे में ही गुण है, अतः स्त्री पांचवें दिन घंटा ले बैठी और बोली कि 'घंटेश्वर, आज हमको १० ग्राम मिलजायँ।" दस इसे मिले, बीसबीस पड़ोसियों को मिले। इसने कहा--"या घंटेश्वर, हमारा तिखण्डा मकान बन जाय।" इसका तिखण्डा और पड़ोसियों के सतखण्डे बन गये। इसने कहा—'या घंटेश्वर, हमारे यहाँ इतनी फौज हो जाय।" जितनी इसके यहाँ हुई, उस से दूनी पड़ोसियों के यहाँ हो गई। इसने कहा—"या घंटेश्वर, हमारे दरवाजे इतने इतने घोड़े हाथी हो जांय।" जितने इसके यहाँ हुये उसके दूने पड़ोसियों के यहाँ हुये। अब स्त्री ने सोचा कि जब घर में इतना ऐश्वर्य है तो मेरा पति क्यों दो-दो पैसे की मजदूरी करे। अतः पति को पत्री लिखी कि—"स्वामिन्, आप के घर में सब कुछ मौजूद है. आप नौकरी छोड़कर चले आइये। लाला स्वार्थीमल को पत्री पहुंचते ही यह ख्याल हुआ कि जान पड़ता है कि इसने घंटा बजा दिया, नहीं तो इतना ऐश्वर्य इतने दिन में कहाँ से आ गया ? क्योंकि अपने घर की दशा लाला साहब भली भाँति जानते थे, परन्तु सोचा कि चलकर देखें क्या है। जब घर आये तो देखा कि हमारा तिखण्डा मकान बना है और पड़ोसियों का सतखण्डा, यह देख पत्थर में अपना सिर दे मारा और कहा—'हा! हमारे देखते-देखते पड़ोसी दूने।" इसी भाँति अपने दस ग्राम और पड़ोसियों के बीस-बीस देखकर फिर सिर पटकने लगे। इसी भाँति हाथी, घोड़ा, फौज आदि पदार्थ पड़ोसियों के दूने देख स्वार्थीमल सिर पीटते रहे और स्त्री का बड़ा फजीता किया कि "तूने घंटा क्यों बजाया ?" अन्त में लाला स्वार्थीमल इस विचार में पड़े कि इन पड़ोसियों का सत्यानाश किस प्रकार हो ?

सोचते-सोचते कुछ लाला स्वार्थीमल की समझ में आ गय और लाला स्वार्थीमल घंटा लेकर बैठे और बोले कि—"या घन्टेश्वर हमारी एक आँख फूट जाय।" एक इनकी फूटी, पड़ोसियों की दोनों गईं। इन्होंने कहा—"या घन्टेश्वर, हमारा एक कान बहरा हो जाय।" इनका एक कान बहरा हुआ, पड़ोसियों के दोनों। इन्होंने कहा—"या घंटेश्वर, हमारी एक टाँग टूट जाय।" एक टूटी इनकी, दोनों गईं पड़ोसियों की। इन्होंने कहा—"या घन्टेश्वर, एक कुआँ तो हमारे दरवाजे खुद जाय।" एक खुदा इनके दरवाजे, दो-दो पड़ोसियों के दरवाजे खुद गये। अब ज्योंही प्रातःकाल हुआ तो लाला स्वार्थीमल एक काठ की टाँग तथा पत्थर की आँख लगवा कर चले कि पड़ोसियों की दशा तो देख आवें कैसे साले आनन्द कर रहे थे। पड़ोसी बिचारे अन्धे, बहरे, लँगड़े घसिलते हुये जो दरवाजे से पाखाने आदि को निकलते तो कुओं में जा टुम्भ टुम्भ गिरते थे। यह देख स्वार्थीमल की छाती ठंढी हुई। सच है, किसी जगह का वृत्तान्त है कि—

कस्त्वं भद्र खले स्वरोऽहमिह किं घोरे वने स्थीयते।
शार्दूलादिभिरेव हिंस्रपशुभिः खाद्योऽहमित्याशया॥
कस्मात् कष्टमिदं त्वया व्यवसितं मद्देह मांसाशिनः।
इत्युत्पन्न विकल्प जल्प मुखरैः तेऽनन्त सर्वान् इति॥

६१—खुदग़र्ज़ी और स्वार्थ से सर्वनाश।

आप लोग भली भाँति जानते हैं कि परमेश्वर ने सारे ब्रह्मांड का नकशा यह शरीर बना रक्खा है। अगर इस शरीर

में एक अंग भी खुदग़र्ज़ी करे तो शरीर भर का नाश हो जाय। कल्पना कीजिये कि किसी हलवाई की दूकान पर बहुत ही उत्तम लड्डू बने रक्खे हैं और आँखों ने देखा कि वह लड्डू बने रक्खे हैं। अब अगर आँखें कहें कि-"हूँ, लड्डू तो हमने देखा है, काहे को किसी को बतावें", तो आँखें चल सकती नहीं, लड्डू कैसे पायें। दूसरे यदि पैर सहायता भी दे दें तो आँखें लड्डुओं को खा नहीं सकतीं न उठा सकतीं और अगर आखें उठायें भी तो आँखें फूट जाँय, अतः आखों ने ऐसा जान पैरों को खबर दी। पैर लड्डुओं की खबर पा 'किं दूरं पञ्च योजनम्' के अनुसार फ़ौरन ही पहुँच गये। पर अब अगर पैर कहें कि-"हूँ, लड्डुओं की खबर तो हमने पाई, हम काहे को किसी को बतायें।" तो पैर उठाकर यदि हलवाई की दुकान से लड्डू उठाया जाय तो सिर के बल तड़ से पृथ्वी में गिर पड़ें। दूसरे पैर से चाहे आप लड्डू को मसल डालें पर पैर लड्डू खा नहीं सकते. अतः पैरों ने हाथों को सूचना दी। हाथों ने लड्डुओं की खबर पा चट ही गप्पा जमाया। अब अगर हाथ कहें कि—"हूँ, हमने लड्डू पाया, हम काहे को किसी को दें।" तो जब तक जिस हाथ में लड्डू रहेगा, हाथ कुछ कर नहीं सकता। दूसरे हाथ लड्डू को तोड़ फोड़ चाहे फेंक भले ही दें पर खा नहीं सकता, अतः हाथों ने ऐसा जान मुंह को खबर दी। मुंह ने लड्डुओं की सूचना पा चट ही नीचे को चल कर गपक लिया। अब अगर मुंह कहे कि—"हूँ, हमने लड्डू पाया, हम काहे को किसी को दें।" तो बोलती मारी जावे। अब यदि कोई पूछे कि आपका क्या नाम है, तो मुंह सिवा गलबलाने के शब्द नहीं निकाल सकता। दूसरे

मुँह सिवा दाँतों से लड्डू को चूरकर देने के खा नहीं सकता अतः ऐसा सोच मुंह ने लड्डू पेट को दिया। परंतु यदि पेट कहे कि—"हूँ, हमने लड्डू पाया हम काहे किसी को दें।" तो पेट फूल जाय और मनुष्य टें हो जाय। नतीजा यह निकला कि यदि आँखें खुदग़र्ज़ी करतीं तो आँखें फूट जाती, पैर खुदग़र्ज़ी करते तो पैर टूट जाते, हाथ खुदग़र्ज़ी करते तो हाथ मारे जाते, मुँह खुदग़र्ज़ी करता तो मुँह मारा जाता, पेट खुदग़र्ज़ी करता तो मनुष्य ही नाश हो जाता। परन्तु किसी अङ्ग ने खुदग़र्ज़ी न कर पेट को लड्डू दिया। पेट ने—

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान् मेदः प्रजायते ।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जाच्छुक्रस्य संभवः ॥

इस प्रकार लड्डू को गला मल मूत्र का हिस्सा अलग कर रस, रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मज्जा, मज्जा से हड्डी, हड्डी से सार, सार से वीर्य्य बना सोचा कि सबसे पहले काम किसने किया था? पता लगा आँख ने। इस लिये सब से उत्तम हिस्सा वीर्य्य आँखों को दिया। इसी भाँति सबको बांट दिया।

इसी भाँति संसार में यदि कोई कौम खुदग़र्ज़ी करे तो संसार का नाश हो जाय और इसी से यह भी निकला कि, परमेश्वर ने कुदरत में सब को एक दूसरे के परोपकार ही के लिए बनाया है, जहाँ परोपकार नहीं और खुदग़र्ज़ी है, वहाँ नाश है। स्वार्थी सार्वजनिक कामों को बिगाड़ देते हैं, यथा—

तृणं चाहं वरं मन्ये नरादनुपकारिणः ।
घासो भूत्वा पशून्पाति भीरून्पाति रणाङ्गणे ॥

दीमक अपने आपके लिये अपने काम में चतुर होता है, परन्तु फलोत्पादक वा सामान्य वाटिका को वह हानि ही पहुँचाता है।



६२–शास्त्रों के अनुसार न चल कर अपना-अपना मतलब निकालना।

एक चिड़िया एक वृक्ष पर कुछ बोल रही थी और वृक्ष के समीप एक मेला लगा हुआ था जिसमें सभी क़ौम के लोग उपस्थित थे। लोगों ने पूछा—"भाई बोलो, यह चिड़िया क्या कह रही है?" उनमें प्रथम मुसलमान लोग बोले कि चिड़िया बोल रही है कि "सुभान तेरी कुदरत।" और हिन्दुओं ने कहा कि यह नहीं, बल्कि चिड़िया बोलती है कि "राम लक्ष्मण दशरथ।" और बनियों ने कहा वाह जनाब, यह क्या कहते हो, चिड़िया बोल रही है 'हल्दी मिरचा ढक रख।' यह सुन कसरती लोग बोले कि वाह, यह आपने खूब ही कही, चिड़िया यह नहीं बोलती, बल्कि चिड़िया बोलती है कि "दण्ड मुगदर कसरत।" इसके बाद तँबोलियों ने कहा कि चिड़िया यह नहीं बोलती, बल्कि चिड़िया बोल रही है कि पान पत्ता अदरख।" पुनः सूत कातनेवाली बुढ़ियों ने कहा कि चिड़िया बोलती है "चरखा पोनी चमरख।" पुनः माली बोले कि चिड़िया यह नहीं बोलती, बल्कि चिड़िया बोलती है "नींबू नारङ्गी कमरख।"

मारग सोइ जा कहँ जो भावा। पण्डित सोई जो गाल बजावा॥



६३—आंधर-सोटा।

एक बार एक पुरुष ने बहुत से स्थानों के अन्धों का निमंत्रण किया और घर में केवल एक आदमी के लायक़ भोजन बनवाया। सहस्रों अन्धे एकत्र हुये परन्तु उसने सम्पूर्ण अन्धों को पैर धुला-धुला बिठला दिया और जब परोसने खड़ा हुआ तो उस ने अन्धों से कहा—"क्यों भाइयो, हम बार-बार क्यों हैरान हों कि एक बार पूड़ी परसें, दूसरी दफे शाक लावें, तीसरी दफे दही लावें, इस प्रकार बहुत देर होगी, इससे तो अगर आप लोगों की सम्मति हो तो एक ही बार में सब परोसते जाँय।" अन्धों ने कहा—"बड़ी अच्छी बात है।" उसने घर में जो सब सामान एक आदमी के लिये बना था, एक अन्धे के आगे पूड़ियाँ, शाक, दही आदि सब परोस दिया। अन्धे ने टटोल लिया और संतोष कर गया कि सामान आ गया उस परोसने वाले पुरुष ने जब अन्धा अपने हाथ उठा कर बैठ गया तो उसके सामने से वह सम्पूर्ण सामान उठा-उठा दूसरे के आगे परसा। उसने भी टटोला और जाना कि मेरे आगे भी सब सामान आ गया और वह भी संतोष कर हाथ ऊपर को उठा बैठ गया उस परोसनेवाले पुरुष ने फिर वह सामान दूसरे अन्धे के सामने से उठा तीसरे के आगे परोसा। इस प्रकार सब को परोस गया और सबों ने यह निश्चय कर लिया कि हमारे आगे भोजन आ गया। अब परोसनेवाले पुरुष ने कहा—"अब आप लोग भोजन कीजिये।" अन्धों ने जब अपने अपने आगे भोजन न देखा तो आपस में ही एक दूसरे पर दोषारोपण करने लगे। एक दूसरे को कहता था कि तूने मेरा भोजन क्यों उठा लिया? इस प्रकार खूब ही परस्पर में सोटा चला। परन्तु यह झगड़ा जब पञ्चों में पहुँचा तो अन्धों ने कहा—"परोसने-वाले ने परोसा है, इसका कुछ अपराध नहीं।"

इसका दार्ष्टान्त यह है कि इसी प्रकार अक़ल के अन्धों को झूंठे भोजन रूप अधिकार और लालच दे-दे लोग लड़ाया करते हैं, पर अन्धों को नहीं सूझता

अविद्यायामन्तर वर्त्तमानः स्वयं धीरा पण्डिता मन्य माना।
जघन्य माना परियन्त मूढ़ा अन्धे नैव नीयमाना यथा अन्धा॥

६४—वर्तमान समय का पांडित्य

एक बार दो पण्डित १८ वर्ष काशीजी में पढ़कर अपने घर जा रहे थे। जब वे बहुत दूर निकल आये तो एक स्थान में मार्ग भूल गये। अब तो इन्हें बड़ा ही विस्मय हुआ। चारों ओर देखने लगे कि कोई मनुष्य हो तो मार्ग पूछें, पर कोई मनुष्य दृष्टि न आया तो इन्होंने सोचा कि देखें ऐसे अवसर के लिए हमारे शास्त्रों में क्या लिखा है। इन्हें याद आया कि—"महाजनो येन गतस्सपन्थाः" जिससे महाजन लोग जायँ वही पन्थ है इतने में चार मनुष्य एक मुर्दा लिए हुए निकले। इन्होंने उनसे पूछा—"भाई, आप कौन लोग हैं?" उन्होंने कहा—"महाजन!" बस पण्डित लोग उन्हीं के पीछे पीछे हो लिए और जाकर स्मशान भूमि में जहाँ वे मुर्दा ले गये थे पहुंचे। वहाँ पहुंचकर सोचने लगे कि अब हम लोगों का क्या कर्तव्य है? देखें ऐसे अवसर के लिये हमारे शास्त्रों में क्या लिखा है? उन्हें याद आया कि—"राजद्वारे स्मशाने च यो तिष्ठति स बान्धवः" राजा के दरवाज़े और स्मशानभूमि में जो स्थित हो वह भाई है। इधर-उधर देखा तो वहाँ एक गदहा चर रहा था, उसे दोनों पण्डितों ने पकड़ा और कहा कि यह

अपना भाई है। फिर सोचने लगे कि अब देखें शास्त्रों में क्या लेख है और हमारा क्या कर्तव्य है तो याद आया कि—'इष्टं धर्मेण योजयेत" भाई को धर्म में लगा देना चाहिये। फिर सोचने लगे कि धर्म क्या है? तो उन्हें ख्याल आया कि—"धर्मस्य तुरिता गतिः" धर्म की ऊँट की सी चाल होती है। दैवयोग से एक ऊँट भी वहीं चुग रहा था। बस, इन दोनों ने ऊँट के गले में गधे को बाँध दिया। अब इधर तो गधा पैर फटफटा रहा था और 'हँकौं हँकौं' कर रहा था, उधर ऊँट अपनी गर्दन हिला हिला कर बल-बला रहा था और ये दोनों पण्डित यह अपूर्व दृश्य अलग खड़े देख रहे थे। अन्य लोगों ने इन दोनों से पूछा—"यह क्या आपने किया है?" ये बोले—'भाई को धरम में लगाया है, अब आप लोग पाण्डित्य देखिये।"

जिह्वायाश्छेदनं नास्ति न तालु पतनाद्भयम्।
निर्विशङ्केन वक्तव्यं वाचालः को न पण्डितः॥

६५—वर्तमान समय के श्रोता

एक जगह पण्डित कथा बाँच रहे थे बहुत से श्रोता सुन रहे थे परन्तु उन्हीं श्रोताओं में एक लालाजी भी थे जो क़ौम के कायस्थ थे। पण्डितजी ने कहा कि 'मुखादग्निरजायत' ब्रह्म के मुख से आग उत्पन्न होती है। पर लालाजी ने समझा कि ब्राह्मण के मुख से आग उत्पन्न होती है। अब कुछ दिन बाद लालाजी अपने घर से एक दूसरे ग्राम को चले। लालाजी हुक्का बहुत पिया करते थे, अतः इन्होंने तमाकू और चिलम तो लेली पर दियासलाई की डिब्बी इसलिये नहीं ली कि इन्होंने

सुन रक्खा था कि ब्राह्मण के मुख से आग उत्पन्न होती है। इन्हों ने सोचा कि दियासिलाई लेकर क्या करें, जहाँ ब्राह्मण मिल जायगा वहाँ पीलेंगे। लालाजी चलते-चलते दोपहर को एक कुएँ के पास पहुँचे। वहाँ एक पुरुष को देख पूछा कि—"आप कौन हैं?" उसने कहा-"ब्राह्मण।" बस, लालाजी ने निश्चय कर लिया कि अब आग मिल जायगी, हुक्के पानी को आराम है, ऐसा सोच उतर पड़े। इन लालाजी से पण्डितजी ने भी पूछा कि—"आप कौन लोग हैं?" इन्होंने कहा—मैं महाराज कायस्थ हूँ।" बस इतनी पूँछ पाँछ होने पर ब्राह्मणजी तो सोगये, क्योंकि ये भोजन भाजन कर चुके थे और लालाजी स्नान भोजन करने लगे जब भोजन कर चुके तो लालाजी को हुक्के की आवश्यकता हुई। अतः इन्होंने चिलम में तम्बाकू रख, एक कंडा ले ब्राह्मण के पास जा उसके मुँह में लगा दिया। बड़ी देर तक लगाये रहे, पर आग न निकली। तब सोचा कि यह मुँह के बाहर लगाये हैं, इसलिए आग नहीं निकलती, ऐसा विचार कंडा ब्राह्मण के मुँह में घुसेड़ दिया। ब्राह्मण भरभरा के उठ बैठा और लालाजी से पूछा-"यह क्या करते हो?" लालाजी ने कहा-"महाराज, हमने कथा में सुना है कि ब्राह्मण के मुँह से आग पैदा होती है, सो आपके मुँह से ले रहे थे, क्योंकि ज़रा हुक्का पीनेवाले थे।" ब्राह्मण भी दूसरा परशुराम था। उसने लट्ठ उठा लालाजी की खोपड़ी में दिया। लालाजी बोले—"हैं हैं यह क्या करते हो?" ब्राह्मण ने कहा—"तुम कायथ हो, इस लिए चटनी को कैथा तोड़ते हैं।" धन्य रे श्रोताओ! बुद्धि की बलिहारी है।

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति॥

६६-बिना देश काल के बिचारे काम करनेवाले की दशा ।

एक बार एक पुरुष कुछ बीमार था । उसने एक वैद्य के पास आकर अपना इलाज पूछा । वैद्यराज ने कहा कि—"तुम प्रथम जुल्लाब लो, तब हम तुम्हारी दवा करेंगे ।" जुल्लाब की दवा देकर वैद्यराज ने कहा कि—"खाने को खिचड़ी खाना ।" यह मनुष्य बेचारा साधारण ही पढ़ा लिखा था, इसने कहा—"वैद्यराज, आपने खाने को क्या बतलाया ?" वैद्यराज ने कहा-"खिचड़ी ।" यह जान वह बीमार पुरुष वैद्यराज को प्रणाम कर अपने घर को चल दिया, लेकिन थोड़ी दूर चलकर खिचड़ी भूल गया, फिर लौट कर वैद्यराज से पूछा—"वैद्यराज आपने खाने को हमें क्या बताया था ?" वैद्यराज ने कहा-"खिचड़ी ।" अब यह पुरुष 'खिचड़ी' शब्द को रटता हुआ घर को चल दिया और शीघ्र-शीघ्र 'खिचड़ी-खिचड़ी' कहते जा रहा था । परन्तु शीघ्र शीघ्र-खिचड़ी खिचड़ी कहने में वह पुरुष खिचड़ी के स्थान में 'खाचिड़ी' रटने लगा । यह 'खाचिड़ी' खाचिड़ी रटता हुआ जा रहा था कि मार्ग में एक काश्तकार ने जो अपने खेत से चिड़िया उड़ा रहा था इसके मुख से 'खाचिड़ी खाचिड़ी, शब्द सुन इसे ख़ूब ही पीटा और कहा कि—"मैं तो चिड़िया उड़ा रहा हूँ और तू कहता है 'खाचिड़ी खाचिड़ी ?" इसने कहा—"तो फिर हम क्या कहें ?" काश्तकार ने कहा—"कहो उड़चिड़ी उड़चिड़ी ।" अब यह पुरुष उड़चिड़ी उड़चिड़ी, रटता हुआ आगे को चला । कुछ दूर पर एक बहेलिया चिड़िया पकड़ रहा था । यह पुरुष उधर ही से, उड़चिड़ी उड़चिड़ी, रटता कहते हुए जा निकला । बहेलिये ने क्रोध में आकर कहा—"देखो तो इस बदमाश को, हम तो पकड़ रहे

और मुश्किल से एक एक चिड़िया पकड़े मिलती है, पर यह कहता है कि उड़ चिड़ी उड़ चिड़ी।" उसने भी इसे ख़ूब ही पीटा। इसने रोते-रोते बहेलिये से पूछा कि—"भाई फिर क्या कहें?" बहेलिये ने बतलाया कि कहो—"आवत जाव फँसि फँसि जाव, आवत जाव फँसिफँसि जाव।" अब यही रटते हुए यह पुरुष आगे चला कि एक स्थान में चोर चोरी कर रहे थे कि इतने में यह जा निकला और यह रटता था कि—"आवत जाव फँसि फँसि जाव, आवत जाव फँसि फँसि जाव।" चोरों ने कहा यह बड़ा ही पाजी है, देखो हम लोगों ने तो बड़ी कठिनता से सेंध लगा पाई है और यह कहता है-"आवत जाव फँसि फँसि जाव, आवत जाव फँसि फँसि जाव।" उन्होंने इसे बहुत पीटा, यह बिचारा फिर रोने लगा और चोरों से पूछा-"अच्छा हम अब क्या कहें?" चोरों ने कहा—"कहो लै लै जाव धरि धरि आव, लैलै जाव धरि धरि आव।" अब इसे ही रटता हुआ यह पुरुष आगे चला तो चार मनुष्य एक मुर्दा लिये हुये जा रहे थे। यह अपनी ध्वनि में रट रहा था कि—"लै लै जाव धरि धरि आव, लै लै जाव धरि धरि आव।" यह शब्द सुनते ही उन चारों पुरुषों ने मुर्दे को रख, इसे खूब ही दुरुस्त किया और कहा-"अबे उल्लू, हमारा तो नाश होगया और तू कहता है कि—"लै लै जाव धरि धरि आव, लै लै जाव धरि धरि आव।" इस पुरुष ने रोते हुए इन चारों से पूछा--"तो महाराज फिर हम क्या कहें?" उन्होंने कहा कि तुम कहो—"राम करै ऐसा दिन कबहूं न होय, राम करै ऐसा दिन कबहूँ न होय।" अब यही रटते हुए यह एक राजा के ग्राम से जा निकला। वहां तमाम उमर में राजा साहब के पहले ही लड़का हुआ था जिसकी प्रसन्नता में कहीं बाजे गाजे बज रहे थे, कहीं बन्दूक तोपें छुट रही थीं, कहीं यज्ञ होम हो रहे थे, ऐसे समय में यह

पुरुष यह कहते हुए कि-"राम करै ऐसा दिन कबहूं न होय, राम करै ऐसा दिन कबहूँ न होय" निकला और ये शब्द राजा के कान तक पहुंच गये। राजा साहब ने इसकी हड्डी हड्डी ढीली करवा दी और कहा—"क्यों रे मक्कार, तमाम उमर में हमारे लड़का हुआ, तमाम गाँव प्रसन्नता मनावे और तू कहता है कि-"राम करे ऐसा दिन कबहूँ न होय ?" इस पुरुष ने रोते हुए फिर राजा से पूछा-"अच्छा महाराज तो हम क्या कहें ?" राजा साहब ने बतलाया कि—"राम करै ऐसा दिन नित उठ होय, राम करै ऐसा दिन नित उठि होय।" अब इसी को रटते हुए यह पुरुष चला कि एक गांव में आग लगी हुई थी, गाँव-वाले सभी बिचारे आपत्ति में थे और यह पुरुष यह कहते हुए कि-"राम करै ऐसा दिन नित उठि होय, राम करै ऐसा दिन नित उठि होय" जा निकला। लोगों ने इसे खूब मारा। ग़रज़ इस प्रकार जहाँ यह गया वहां इसकी दुर्दशा हुई। किसी कवि ने सत्य कहा है—

अप्राप्त काले वचनं बृहस्पतिरपि ब्रुवन्।
लभते बहु यज्ञानं म्रियमानं च पुष्कलम्॥
अनवसरे च यदुक्तं तस्य भवति हास्याय।
रहसि प्रौढ़ बधूनां रति समये वेदपाठ इव॥

६७-शठ विना शठता के नहीं मानता।

एक बाबाजी के पास कुछ सुवर्ण की अशरफ़ियां एक लोहे के सोंटे में बन्द थीं। बाबाजी ने कहीं तीर्थ यात्रा करने का विचार किया, इस कारण बाबाजी एक सेठजी के पास जाकर

बोले कि—"सेठजी ज़रा हमारा यह सोंटा जब तक हम तीर्थ-यात्रा करके न लौटें रक्खे रहिये।" सेठजी बोले—"महाराज, यहाँ सोंटा ओंटा रखने को जगह नहीं।" परन्तु जब बाबाजी ने बहुत कुछ कहा तो सेठ जी ने कहा—"अच्छा महाराज जाओ उस कोने में रख दो, जब आना तब उठा लेना।" साधूजी सोंटा रख के चले गये। परन्तु यहाँ सेठानी और सेठ रोज़ उस सोंटे को उठा-उठा देखते रहे और आपस में कहते थे कि—"सोंटा भारी बहुत है, जाने क्या बात है।" सोंटे के ऊपर एक फुल्ली जड़ी हुई थी। सेठानी ने कहा—"मालूम देता है कि इस सोंटे के भीतर कुछ भरा है, हो न हो यह फुल्ली उखाड़ कर देखना चाहिये कि इस के भीतर क्या है?" सेठ ने ऐसा ही किया। जब फुल्ली उखाड़ी तो उससे पीली पीली अशरफ़ियाँ गिर पड़ीं। सेठ ने अशरफ़ियें घर में रख सोंटा फेंक दिया। जब कुछ काल के पश्चात् साधूजी लौटे और सेठ जी के पास जा सोंटा माँगा तो पहले तो सेठजी ने साधूजी को पहिचाना ही नहीं, जब पहिचाना तो बोले कि—"आप का सोंटा तो छछुन्दरी खा गई।" साधूजी चुप रह गये और सेठजी के पास से चले गये। थोड़े दिन के बाद साधुजी आकर उसी गाँव में अध्यापकी का काम करने लगे। बहुत से गाँव के लड़के साधूजी के पास आने लगे और उन सेठजी का लड़का भी आने लगा जिन्हों ने सोंटा छछुन्दरी को खिला दिया था। कुछ दिन के बाद साधूजी ने उस सेठ के लड़के से कहा कि—"देख, आज जब तुझे छुट्टी दें तो अमुक स्थान से लौट आना, अगर तू न लौटा और घर चला गया तो समझ लेना कि तेरी खाल खींच दूँगा।" सेठ का लड़का बेचारा भय से लौट आया। साधूजी ने उस लड़के को एक कोठरी के अन्दर बन्द कर दिया और उसमें कुछ खाने को रख दिया एवं लड़के से कहा कि—"अगर तू बोला तो समझ

लेना कि तू था ही नहीं।" थोड़ी देर में जब समय अधिक व्यतीत हुआ और लड़का घर न आया तो सेठजी ने अपने लड़के की तलाश की। जब लड़का न मिला तो सेठ ने आकर साधूजी से पूछा। साधूजी बोले—"भाई सब लड़कों से पूछ लो, हमने तो उसे छुट्टी दे दी, पर हम नहीं जानते कि आपका लड़का कहाँ गया?" जब सेठजी ने लड़कों से पूछा तो लड़कों ने कहा कि—"हमारे साथ फलाँ स्थान तक गया, फिर हम नहीं जानते कि कहाँ गया?" सेठजी फिर इधर उधर घूम कर साधूजी के पास आये और बोले कि—"साधूजी, लड़का नहीं मिलता, न जाने कहाँ गया?" साधूजी ने कहा—"यहाँ से तो हमने लड़के को छुट्टी दे दी थी परन्तु हाँ एक लड़के को एक गिद्ध उसकी चोटी पकड़े हुये ऊपर को लिये जारहा था।" सेठजी ने पुलीस में रिपोर्ट की। थानेदार ने आकर पूछा कि—"साधजी, सेठ का लड़का कहाँ गया?" साधूजी ने कहा—"हमने तो यहा से छुट्टी दे दी है, आप सब लड़कों से पूछ लें।" जब थानेदार ने लड़कों से पूछा तो लड़कों ने साफ कह दिया कि—"हजूर हमारे साथ वह लड़का फलाँ स्थान तक गया है, फिर हम नहीं जानते।" पुनः साधूजी बोले कि—"थानेदार साहब, हाँ एक बात हमने देखी थी कि एक गिद्ध एक लड़के की चोटी पकड़े ऊपर को लिये जाता था।" थानेदार ने कहा—"कहीं गिद्ध लड़के की चोटी पकड़ के उड़ा ले जा सकता है?" तब तो साधु जी ने कहा—

शठस्य शाठ्यं शठ एव वेत्ति न्वा शठो वेत्ति शठस्य शाठ्यम्
छछुन्दरी खादति लोहदण्डं कथन्न गृद्धेन हतः कुमारः॥

महाराज! "शठं प्रति शठं कुर्यात सादरम् प्रति आदरम्" इस कहावत के अनुसार जब तक शठ के साथ शठता न कीजाय

तब तक शठ नहीं मानता। महाराज, हम तीर्थ-यात्रा जाते समय इनके पास एक सोंटा रख गये थे जिसमें इतनी अशरफियाँ थीं, जब हमने आकर इनसे सोंटा माँगा तो सेठजी बोले कि 'लोहे का डण्डा तो छछुन्दरी खा गई "सो हुजूर अगर छछुन्दरी लोहे का डण्डा उगिल दे तो गिद्ध भी सेठ का लड़का डाल देवे। यह सुन सेठजी ने सम्पूर्ण अशरफ़ियाँ मए दण्डे के साधूजी के भेंट कीं और साधूजी ने सेठ का लड़का कोठरी से निकाल दिया। सच है, किसी कवि ने कहा है—

यस्मिन् यथा वर्त्तते यो मनुष्यास्तस्मिन् तथा वर्तितव्यं स धर्मः।
मायाचारो माययावर्त्तितव्यः साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः॥

९८—श्राद्ध करना तो सहज है पर सीधा देना कठिन है।

एक अहीर ने एक बार श्राद्ध करनी चाही, अतः सब सामान तैयार कर एक पंडित को बुलाया। पंडितजी ने कहा कि—"चौधरी साहब, जैसा हम तुमसे कहें वैसा करते जाना।" चौधरी साहब ने कहा—"बहुत अच्छा।" पंडितजी ने कहा—"लेव चिरुआ में जल।" चौधरी साहब ने लेकर कहा—"लेव चिरुआ में जल।" पंडित जी बोले—"हम तुम से कहते हैं।" चौधरी साहब ने कहा—"हम तुमसे कहते हैं!" पंडितजी ने कहा—"अबे सुनता नहीं।" चौधरी साहब ने कहा—"अबे सुनता नहीं।" पंडितजी ने गुस्सा में आ एक थप्पड़ चौधरी साहब के मार दिया और कहा कि—"चिरुआ में जल लेकर

आचमन कर।" चौधरी साहब ने पंडितजी को उठाकर दे मारा और एक थप्पड़ लगाकर कहा—"चिरआ में जल लेकर आचमन कर।" अब तो पंडितजी को और क्रोध आ गया और वे—

लात घूंसा कमर मध्ये चटकनं मुख भञ्जनम्।
चरणदासी सीस मध्य बार बार धड़ाधड़म्॥

यह श्लोक पढ़ अहीर को पीटने लगे। अहीर ने मारते मारते पंडित की हड्डियां ढीली कर दीं। इस प्रकार दो घन्टे श्राद्ध हुआ। पश्चात् पंडितजी कांखते कूँखते अपने घर पहुँचे पंडितानीजी रास्ता देख रही थीं कि पंडितजी श्राद्ध कराने गये हैं कुछ लिये आते होंगे। पंडितजी की यह दशा देख पंडितानी ने हाल पूछा। पंडित जी ने सब हाल बताया। यहाँ चौधरीजी अपने घर आये तो चौधराइन ने पूछा कि—"श्राद्ध हो गया?" चौधरी ने कहा—"हां हो गया।" चौधराइन ने कहा कि—"पंडितजी को सीधा नहीं दिया?" चौधरी बोले—'क्या बतावें श्राद्ध तो दो घन्टे तक होता रहा, पर सीधा देने का ख्याल नहीं रहा। अच्छा, अब तुम जाकर पंडित को सीधा दे आओ।" चौधराइन आटा दाल घी लेकर ज्योंही पंडित के मकान पर पहुँची तो वहाँ पंडित और पंडिताइन दोनों क्रोध में जल रहे थे, अतः दोनों ने मिल कर चौधराइन को खूब पीटा पर चौधराइन जू इस लिये न बोलीं कि जानें सीधा शायद इसी प्रकार दिया जाता हो। जब चौधराइन पिट-पिटा के घर आईं तो चौधरी से बोलीं कि—"चौधरी" श्राद्ध करना तो सहज है, पर सीधा देना बड़ा कठिन है, अगर तुम सीधा देने जाते तो मालूम होता।"

———

६९—मार टोरि श्राद्ध कराना ।

एक पण्डित केवल श्राद्ध ही पढ़े हुए थे और जहाँ कहीं ब्याह, जनेऊ, मुण्डन, कर्णछेदन या भागवत आदि बाँचने जाते वहाँ बेचारे और तो कुछ जानते ही न थे वही अपनी श्राद्ध की पोथी खोल कर बैठ जाते । एक जगह सत्यनारायण की कथा लगी । वहाँ से बुलावा आया तो पण्डितजी अपनी श्राद्ध की पोथी ले जा विराजे । वहाँ जब सत्यनाराण की कथा के स्थान में श्राद्ध का पाठ करने लगे तो एक जगह निकला कि 'अपसव्यं' लोगों ने कहा—"महाराज, यह सत्यनारायण की कथा में 'अपसव्यं' कैसा ?" तो पण्डितजी ने कहा कि "यह अध्याय की समाप्ति है; बोलो राधाकृष्ण की जै ।

इति प्रथमोऽध्यायः ।"

७०—अन्ध-परम्परा ।

एक बार एक सेठजी के घर में ब्याह होकर वरतौनी यानी मड़वा हो रहा था । लड़का लड़की गाँठ जोरे तथा सब लोग सेठजी के आँगन में बैठे हुए थे कि इतने में सेठजी के घर में एक बिल्ली मर गई । अब सेठानीजी ने सोचा कि ऐसे समय में मरी बिल्ली समिटवाकर बाहर भेजना अनुचित है, इससे सेठानी जी ने उस मरी बिल्ली को एक झौवे के नीचे मूँद दिया । यह सम्पूर्ण चरित्र सेठजी की लड़की अपने आँगन में बैठी-बैठी देखती रही । जब वह लड़की अपने सासुरे पहुँची और बहुत दिन के पश्चात् उसके सासुरे में जब उसकी ननँद का ब्याह

हुआ और जब बरतावन होने लगी और सब लोग आँगन में आये तो उसने अपनी सास से कहा-"अम्मा, एक बिल्ली तो लाओ।" पूछा—"क्यों?" कहा—"हमारे यहां मार के झौवे के नीचे इस मौक़े पर मूंदी जाती है।" सास ने बिल्ली मँगादी। बहू ने सोंटा ले बिल्ली को मारना प्रारम्भ किया। अब वहाँ शोर मचा। इसी भाँति हमारे बहुत से भाई विना समझे बहुत सी बातों को सनातन समझ बैठते हैं।

दानाय लक्ष्मी सुकृताय विद्या चिन्ता परब्रह्म विचारणाय।
परोपकाराय वचांसि यस्य धन्यास्त्रिलोकी तिलकः स एव॥

७१—क्या से किसे मान बैठे।

एक ब्राह्मण की लड़की जन्म से ही बड़ी साध्वी और भक्त थी। निशि दिन भजन, ईश्वर में वृत्ति, गीता का पाठ और इस महामंत्र का जाप किया करती थी कि—

राम कृष्ण गोपाल दमोदर हरि माधव मधुसूदन नाम्।
कालीमर्दन कंसनिकन्दन देवकिनन्दन त्वं शरणम्॥
चक्रपाणि बाराह महीपति जलशायक मङ्गल करणम्।
एते नाम जपौ निशि बासर जन्म जन्म के भय हरणम्॥

परन्तु जब यह लड़की कुछ बड़ी हुई तो इसका ब्याह हुआ और जिस पुरुष के साथ इसका ब्याह हुआ उसका नाम भी 'देवकीनंदन' था और लौकिक प्रथा यह है कि स्त्री पति का नाम नहीं लेती है इसलिये इस लड़की का जिस तारीख़ से ब्याह

हुआ, उसके उस महामंत्र के भजन में विघ्न पड़ गया। क्योंकि उसके महामंत्र में यह शब्द आता था कि 'देवकिनंदन त्वंशरणम्' और यही नाम उसके पति का था, इस कारण इसने इस महामंत्र का भजन ही छोड़ दिया। परन्तु कुछ काल के पश्चात् देवकीनंदन की स्त्री के एक लड़की उत्पन्न हुई। उसका नाम उस लड़की, देवकीनंदन की स्त्री, ने 'चम्पो' रखवाया। बस उसी तारीख से देवकीनंदन की स्त्री का महामंत्र बिना पति का नाम उच्चारण किये ही बन गया। जहाँ वह प्रथम कहा करती थी कि—

राम कृष्ण गोपाल दमोदर हरिमाधव मधुसूदन नाम।
कालीमर्दन कंसनिकन्दन देवकिनन्दन त्वं शरणम् ॥

अब ऐसा कहने लगी कि—

राम कृष्ण गोपाल दमोदर हरिमाधव मधुसूदन नाम।
कालीमर्दन कंसनिकन्दन चंपो के चाचा त्वं शरणम् ॥

मित्रो, भजन तो बन गया पर उसे यह परिज्ञान न हुआ कि प्रथम मैं किन देवकीनंदन का भजन करती थी और चंपो के चाचा कौन हैं? यानी कृष्ण भगवान् के स्थान में चंपो के चाचा के भजन होने लगे। बस, समझ लो कि हम क्या से क्या मान बैठे?

अन्धं तमः प्रविशन्ति यो सम्भूतिमुपासते।
ततोभूय इवते य ऊ सम्भूत्याः रताः ॥

———

७२—खुशामदियों से दुर्दशा।

एक राजा के यहाँ बहुत से खुशामदिये रहा करते थे। खुशामदियों की बहुत दिनों से कोई वग्गी नहीं जमी थी, अतएव ये लोग आपस में सम्मति करके कि राजा साहब से अब कुछ लेना चाहिये राजा साहब के पास पहुँचे और उनसे बोले कि—'राजा साहब, और तो आपने दुनिया में आकर सम्पूर्ण ऐश आराम कर लिये, पर कभी आपने इन्द्र की पोशाक भी पहरी है?" राजा ने कहा—"नहीं, क्या इन्द्र की पोशाक किसी प्रकार मिल भी सकती है?" खुशामदियो ने कहा—"हाँ सरकार, मिल तो सकती है, पर उसमें खर्च ज्यादा है और कठिनता से मिल सकती है।" राजा ने कहा—"इसकी कुछ परवाह नहीं, तुम बताओ तो सही कि इन्द्र की पोशाक किस प्रकार मिल सकती है?" खुशामदियों ने कहा—"महाराज, दस हज़ार रुपया हमें ख़ज़ाने से दिया जाय तो हम लोग जा कर छै मास में लेकर लौट सकते हैं।" राजा ने उसी समय दश हज़ार रुपये का हुक्म करा दिया। खुशामदियों ने दश हज़ार रुपया तो लाकर घर में रक्खा और आप ६ मास तक इधर उधर बने रहे। जब छै मास व्यतीत हो गये तो खुशामदिये दो ताले बंद खाली संदूकें लेकर राजा की सभा में आ विराजे। राजा साहब इन्हें देख बड़े ही प्रसन्न हुए और बोले कि—"कहो, तुम लोग इन्द्र की पोशाक ले आये?" खुशामदियों ने उत्तर दिया कि—'हाँ सरकार, इन्द्र की पोशाक तो ले आये, परन्तु महाराज, इन्द्र ने यह कह दिया है कि यह पोशाक असलों को दीख जायगी, दोगलों को कभी दीख नहीं सकती।" राजा ने कहा—"खैर, अब आप इसे खोलिये।" खुशामदियों ने कहा कि—"प्रथम आप अपने पुराने कपड़े सब के सब उतार दीजिये।" राजा

ने वैसा ही किया। अब खुशामदियों ने खाली सन्दूकें खोल, खाली हाथ संदूक में डाल और खाली ही निकाल बोले कि—"राजा साहब, ये लीजिये इन्दर की धोती, इसे पहिनिये और इस पुरानी धोती को भी उतार दीजिये।" राजा पुरानी धोती भी खोल नंगे हो गये। सभा के लोग बोले-"वाह वाह! क्या ही अच्छी इन्द्र की कामदार धोती है।" क्योंकि सब डरते थे कि अगर हमने यह कह दिया कि धोती ओती कुछ नहीं है, राजा साहब आप तो नंगे हैं तो हमारी असलियत में फ़र्क लग जायगा और दोगले कहे जाँयगे। इसी प्रकार खुशामदियों ने खाली हाथ डाल फिर कहा—"राजा साहब, यह क़मीज पहिनिये।" फिर सबों ने कहा-"वाह वाह! क्याही अच्छी क़मीज है।" फिर खुशामदिये बोले—"राजा साहब, यह वास्कट पहिनिये।" फिर सभा के लोगों ने वाह वाह की। खुशामदियों ने कहा कि-"राजा साहब, लीजिये यह पाजामा पहिनिये।" फिर सब लोगों ने वाह वाह की। इसी भाँति सम्पूर्ण पोशाक पहिना राजा साहब से कहा-"अब आप शहर की हवा खा आइये।" राजा साहब फिटन पर सवार हो नंगे शहर घूमने निकले, परन्तु शहर में राजा साहब की शकल देख लोग कहते थे कि—"राजा क्या आजपागल होगया है जो शहरमें नङ्गा घूम रहा है? जब राजा ने सुना कि शहर वाले हमें नङ्गा कह रहे हैं तो राजा ने कहा कि—"ये सब दोग़ले हैं।" जब राजा साहब शहर घूम आये तो खुशामदियों ने कहा-' राजा साहब, जरा महलों में भी हो आइये ताकि इन्द्र की पोशाक सब रानियाँ भी देख लें।" राजा साहब जब महल में पहुंचे तो रानियाँ राजा को नंगा देख सब इधर उधर भगने लगीं। राजा ने कहा कि—"तुम सब क्यों भगती हो?" रानियों ने कहा—'महाराज आज आपको क्या हो गया है जो नंगे फिर रहे हो?" राजा

बोले कि--"तुम सब दोगळी हो। हम तो इन्द्र की पोशाक पहिर रहे हैं, सो यह असलों को ही दीखती है, दोगलों को नहीं।" रानियों ने हाथ जोड़ राजा साहब से प्रार्थना की कि-"महाराज आप चाहे और सम्पूर्ण पोशाक इन्द्र की ही पहिनिये परन्तु धोती केवल अपने देश ही की रखिये।"

ऐसी ही दुर्दशा आज कल के खुशामदिये हमारे भोले भोले भाइयों की करा रहे हैं—

सचिव वैद्य गुरु तीनि जो, प्रिय बोलें भय आस।
तेहि राजा कर अवशि ही, होत वेग ही नास॥

——

७३-धर्मध्वजी।

एक पंडित बड़े ही भक्त और शुद्धाचारी यानी नित्य प्रातः काल उठ के शौच दन्तधावन स्नान दुर्गापाठ आदि-आदि कर्म किया करते थे। परन्तु पंडितजी को केवल मांस खाने की आदत थी। एक दिन पण्डितजी महाराज को कहीं मांस न मिला और पण्डितजी स्नान करने जाते थे कि इतने में एक छोटी बकरी जो पण्डितजी के पड़ोसी की थी उनके घर आ गई। पण्डितजी गँड़सा ले उसे यमपुर पहुंचा, उधेड़ काटकर पण्डितानी से बोले कि—"तुम जब तक इसे बनाओ, मैं स्नान कर पाठ करने जाता हूँ।" पण्डितजी स्नान कर पाठ करने लगे और वह बकरी थाल में कटी रक्खी थी और पंडि-तानी मसाला बाँट रही थीं कि इतने में पड़ोसिन जिसकी कि वह बकरी थी पंडित के घर आग लेने आई। पंडित दुर्गापाठ कर रहे थे। पंडितजी पड़ोसिन को देख पाठ करते हुए प्रवाह में पंडितानी से बोले—

या देवी सर्व भूतेषु चेतनेत्यभिधीयते ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥

पुनः इसी प्रवाह में बोले—

झाँपनियाँ झाँपनियाँ जिनकी हम मारी मेंमनियाँ सो तौ ठाढ़ी आँगनियाँ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ।

पंडितानीजी कुछ पढ़ी हुई थीं, यह पाठ सुनते ही उन्होंने मांस ढक दिया ।

मित्रो ! अब इस हिंसा-कर्म को छोड़ अहिंसक बनो और वंचकता छोड़ पूरे साधु बनो ।

हंसः प्रयाति शनकैर्यदि यातु तस्य नैसर्गिकीगतिरियं नहि तत्र चित्रम् । गत्या तया जिंगमिषुर्वक एष मूढ़स्चेतो दुनोति सकलस्य जनस्य नूनम् ॥

७४—गुरु चेला ।

एक क्षत्री एक बार एक पंडित के चेला होने गये । क्षत्री जी लोटा, धोती, खड़ाऊँ आदि-आदि सामान भेंट कर पंडित जी से 'नमो भगवते वासुदेवाय नमः। यह मंत्र सुन चेला हुये । परन्तु पण्डितजी ने सुन रक्खा था कि इन कुँवरजी की स्त्री बड़ी ही सुन्दर है, अतः पण्डितजी अपने नये चेले से बोले कि—"आपको सपत्नीक चेला होना चाहिये, अभी तो आप आधे चेला हुये हैं ।" क्षत्री बेचारे सीधे सादे थे । उन्होंने कहा—"तो

पण्डितजी अब क्या हो. अब तो हम चेला हो चुके।" पंडितजी ने कहा—"सो अभी क्या हुआ, तुम अपनी स्त्री को ले आओ, उसको हम फिर मंत्र सुना देंगे। कुँवर जी ने क्षत्राणी को ले आकर पण्डितजी से कहा—"गुरुजी महाराज, अब आप इसे भी मंत्र सुनाइये।" गुरुजी ने कहा—"स्त्रियों को मंत्रोपदेश इस प्रकार नहीं किया जाता। इनका मंत्र कोई मनुष्य न सुन सकेगा, इस लिये इन्हें एकान्त में मंत्रोपदेश करेंगे।" कुँवरजी ने यह गुरु-आज्ञा पा अपनी स्त्री को गुरुजी के साथ एक कोठरी में एकान्त कर दिया और कहा कि—"अब आप इसे मंत्रोपदेश कर दें!" परन्तु क्षत्राणी और क्षत्री दोनों कुछ संस्कृत पढ़े हुये थे और यह बात गुरुजी को मालूम न थी। गुरुजी कोठरी में क्षत्राणी जी से बोले कि—"इमं भूमिं गोकुल मानय" इस भूमि को गोकुल मानो। पुनः बोले कि—"अहं कृष्णं मन्ये" और हमको कृष्ण मानो। पुनः बोले कि—"त्वं आत्मानं राधां मन्यस्व" और तुम अपने को राधा मानो। पुनः बोले—विहारं कुरु" और भोग विलास करो। परन्तु यह सब बातें कुँवरजी सुनते जाते थे। पण्डित तो समझते थे कि कुँवर वहाँ नहीं हैं क्योंकि कह दिया था कि स्त्रियों का मंत्रोपदेश आपको नहीं सुनना चाहिये, पर कुँवर को पण्डितजी के वर्त्ताव से कुछ संशय हो गया था, इसलिये वे कोठरी के पास ही सुन रहे थे, बस इतना सुनते ही कुँवरजी किवाड़ों में धक्का मार जा कूदे और बोले कि—

"अहम् यमलोकसमागतोहं इमंयमदण्डंविद्धिअनेनदुष्टा दन्त्याः।"

अर्थात् मैं यमलोक से आया हूं और यह यमदंड है, सो इससे यम की आज्ञा है कि ऐसे-ऐसे दुष्टों का नाश करो।

— —

७५—चेले का इस्तीफ़ा

एक पण्डितजी को एक वैश्य ने अपना गुरु किया था और उनसे एक कंठी ली थी और चेला बना भक्ति किया करता था, परन्तु पण्डित जी को जहाँ-कहीं जो कुछ सामान मिलता, चेले पर ही लदवाते थे। इस प्रकार धीरे-धीरे चेले के पास बोझा अधिक हो गया था। चेला बोझे से हैरान था परन्तु पण्डितजी ने अपनी ध्वनि न छोड़ी। एक दिन चलते-चलते गुरु चेला दोनों एक कुएँ पर जा उतरे चेले की कमर बोझे से टूट रही थी, जब तक पण्डितजी को किसी ने उसी कुएँ पर आकर और एक लोटा धोती दिया। गुरुजी बोले-"चेला, ले इसे और रख ले चेले ने दाहिने हाथ से कंठी तोड़ गुरु से कहा कि-"यह लीजिये इसे लेकर आप किसी ऊँट के बांधिये जो आपका बोझा ढोवे, हम से यह बोझा नहीं चलता।"

७६--भारवाही

एक साधूजी बिलकुल मूर्ख थे, लेकिन कुछ सन्यासी महात्माओं का उपदेश श्रवण करने से उनके हृदय में यह भाव उत्पन्न हुआ कि गीता पढ़ना चाहिये। एक दिन एक राजा साहब अपने टमटम पर हवा खाने निकले। साधूजी ने राजा साहब को जा घेरा और हाथ जोड़ खड़े हो गये। राजा साहब ने कहा-"कहिये, आप क्या चाहते हैं? क्यों आप इतनी तकलीफ़ उठा रहे हैं? कहिये।" साधूजी ने कहा--"महाराज, हमें एक गीता की पोथी ले दो।" राजा साहब ने कामदारों को आज्ञा दी कि--इस साधुको एक गीता की पुस्तक ले दो।" दूसरे दिन

साधू कामदारों के पास गया तो उन्हों ने बड़ी उत्तम सुर्ख जिल्द बँधी हुई गीता की एक पुस्तक उसे ले दी। यह साधू सुर्ख जिल्द गीता को पाकर कूदने लगा और बोला--"गीता गीता गीता, हमारा गीता।" और बार बार उस जिल्द को अपनी छाती में लगाता और कहता था कि--"गीता, बड़ी अच्छी गीता मेरी गीता।" कभी उसे चूमता और कहता--"गीता।" गीता ले जब यह मार्ग में आया तो कहा कि--"इसमें बाँधने के लिये कोई बसना यानी बस्ता होना चाहिये, नहीं तो इसकी जिल्द बिगड़ जायगी।" निदान साधु ने कपड़ा खरीद उसमें गीता लपेटकर रात को अपनी कुटी में रक्खा, परन्तु रात में चूहे आकर उसकी गीता खुतर गये। जब प्रभात हुआ तो साधूजी ने ज्योंहीं अपनी गीता को देखा तो देखते क्या हैं कि उसे चूहे काट गये। अब तो महात्माजी को बड़ा ही कष्ट हुआ। दूसरे दिन साधुजी ने गीता की पोथी यद्यपि बड़ी सावधानी से रक्खी, पर चूहे उसे फिर खुतर गये। अब तो तीसरे दिन महात्माजी देखकर बड़े दुखी हुये। लोगों से पूछा—"भाई, क्या करें हमारी गीता की पोथी नित्य चूहे खुतर जाते हैं।" लोगों ने कहा--"महाराज, एक बिल्ली पालिये ताकि चूहे आपकी पोथी न खुतरें।" महात्माजी ने एक बिल्ली भी पाली, परंतु चूहों का काटना न बन्द हुआ। दो एक दिन उस बिल्लीने चूहे तोड़े किंतु जब वह भूखों मरने लगी तो उसने चूहों का तोड़ना बंदकर दिया। महात्मा ने फिर लोगों से पूछा-'क्यों भाई लोगो, अब तो बिल्ली भी चूहा नहीं तोड़ती।" लोगों ने कहा—"महात्माजी बिल्ली चूहे कैसे तोड़े, कुछ खाने को भी पाती है? बिल्ली को आप गाय का दूध पिलाया करें फिर देखें कि वह कैसे चूहा नहीं तोड़ती?" अब तो महात्माजी ने बिल्ली के दूध पिलाने के लिए एक गाय मोल ली। महात्मा ने गाय इसलिये ली कि बिल्ली

गाय का दूध पीकर पुष्ट हो और चूहे तोड़े ताकि चूहे गीता की पुस्तक न काटें। परन्तु गाय भी दो रोज़ दूध दे, तीसरे दिन लातें फेंकने लगी। महात्माजी लोगों से बोले—"भाइयो, अब तो गाय भी दूध नहीं देती कि जो बिल्ली पिये और चूहे तोड़े ताकि गीता बचे।" लोगों ने कहा—"गाय को कुछ खिलाते भी हो कि दूध ही दे! इसे हरी घास खिलाया करो।" अब महात्माजी को फिक्र हुई कि अगर एक आदमी मिल जाय तो हरी-हरी घास लाया करे। इतने में एक स्त्री अति दीन, जिसकी अवस्था चौबीस पच्चीस वर्ष की थी, महात्मा के पास भीख माँगने आई। महात्मा ने कहा—" अरी तू हमारे यहाँ रह कर इस गैया को हरी हरी घास रोज़ एक गट्ठा छील लाया कर, हम तुझे खाने भर को भोजन दिया करेंगे।" स्त्री ने स्वीकार कर लिया और रोज़ गाय को हरी-हरी घास छील लाती और गाय की सेवा किया करती थी। अब तो महात्माजी की गाय खूब दूध देने लगी जिससे कि बिल्ली तो दूध पीती ही थी और महात्मा भी खूब रबड़ी उड़ाया करते थे और बचा बचाया स्त्री भी खा लेती थी। परन्तु आप जानते हैं कि महाराज भर्तृहरि ने कहा है कि—

भिक्षाऽशनं तदपि नीरसमेक वारं,
शय्या च भूः परिजनो निजदेह मात्रम्।
वस्त्रं च जीर्णं शतखण्ड मलीनकन्था,
हाहा तथापि विषया न परित्यजन्ति॥

भिक्षा ही जिनकी वृत्ति हो और निरस भोजन दिन भर में एक बार मिलता हो और पृथिवी ही जिनकी शय्या हो और अत्यन्त पुराने हज़ारो टुकड़ों की जुड़ी हुई गुदड़ी पहिरे हुए हों, ऐसी अवस्था में भी यह विषय-वासना नहीं छोड़ती।

और भी कहा है—

कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहितः पुच्छविकलो,
व्रणी पूतिः क्लिन्नः कृमिकुलशतैराचृत तनुः।
क्षुधाक्षामी जीर्णा पिठरजकपालाऽर्पित गलः,
शुनीमन्वोतिश्वा हतमपि च हन्त्येव मदनः॥

अर्थ—महा दुबला, एक आँख फूटी, देह भर में खारिस, पूँछ कटी हुई, देह में बड़े-बड़े फोड़े जिनमें कीड़ों के परिवार के परिवार घुसे, क्षुधा से पीड़ित, घड़े का घेरा गले में, ऐसा कुत्ता भी जब कुतियों के पीछे दौड़ता है, तो रबड़ी खानेवाले की तो बात ही क्या? बस, महात्माजी उस घसियारी से फँस गये। पुनः कुछ काल में उसी घसियारी से महात्माजी के एक लड़का और एक लड़की उत्पन्न हुई। कुछ दिन के बाद एक दिन महात्माजी एक लड़का इस कन्धे पर और लड़की उस कन्धे पर, गीता की पुस्तक बगल में, पीछे पीछे स्त्री और उसके पीछे गाई और साथ ही साथ बिल्ली आदि अपने सारे सामान से चले जा रहे थे और उधर से उन्हीं राजा साहब की सवारी जिन्होंने कि महात्मा को गीता ले दी थी आ रही थी। जब राजा साहब बराबर पर आये तो उन्होंने महात्मा को पहिचान और उनकी यह दशा देख सवारी खड़ी कर उनसे पूछा—"कहो महाराज, गीता कितनी पढ़ी?" महात्मा बोले—"महाराज, १८ अध्याय में केवल ५ अध्याय हुये हैं।" दहिने कन्धे की तरफ़ इशारा करके कि एक अध्याय यह, बायें की तरफ़ इशारा करके कि दूसरा अध्याय यह, पीछे की तरफ़ इशारा करके कि तीसरा यह, उससे पीछे की तरफ़ इशारा करके कि चौथा यह और बिल्ली की ओर इशारा करके कि पाँचवाँ यह। राजा यह सुन चले गये।

७७--अविद्या की हठ

शुक्लांबरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत सर्व विघ्नोपशान्तये॥

इस श्लोक के अर्थ में एक पंडितजी ने एक राजा साहब को 'रुपया' बतलाया और इस प्रकार अर्थ किया कि 'शुक्लांबरधरं' यानी रुपया सफेद-सफेद होता है, 'विष्णु' जो चर अचर में व्यापक हो वह विष्णु कहावे, रुपये के बिना किसी का काम नहीं चलता इससे वह व्यापक है, और 'शशिवर्णं' गोल गोल चंद्रमा सा होता है. 'चतुर्भुजम्' चार चवन्नी होती हैं इस लिये चतुर्भुज भी है, 'प्रसन्न वदनं' और वह चमचमाता भी है. 'ध्यायेत्' उस रुपये के धारण करने से सम्पूर्ण विघ्न शान्त हो जाते हैं। उस दिन से जो पण्डित इन राजा साहब के पास आता तो उससे राजा साहब यही श्लोक पूछा करते थे और जब पंडित इसको विष्णु की स्तुति में ले जाता यानी ठीक-ठीक अर्थ करता तो राजा साहब कहते कि यह अर्थ ग़लत है और अपने को तथा अपने गुरु को बहुत कुछ धन्यवाद दिया करते थे। बहुत काल के बाद एक पंडित राजा के पास आये। उनके आते ही राजा ने वही प्रश्न किया। पंडितजी ने राजा का रुपये वाला अर्थ जान लिया था, इसलिये राजा के पूछते ही कह दिया कि—"महाराज, इसका अर्थ रुपया है।" राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और कहा—"इतने दिन पर हमारे गुरु के बाद दूसरे पंडित आप ही मिले हो।" तब तो इन दूसरे पंडित ने कहा—"महाराज इसका एक अर्थ हम और आपको बतावें जो कोई न जानता हो।" राजा साहब ने कहा—"बताइये।" पंडितजी ने कहा कि—"इसका अर्थ 'दहीवड़ा' भी हो सकता है। देखो

'शुक्लांवरधरं' दही-बड़ा सफेद-सफेद होता है, 'विष्णु' व्यापक है ही यानी सब कोई खाता है, 'शशिवर्ण' गोल-गोल होता ही है, 'चतुर्भुजम्' चतुरों के खाने योग्य अर्थात चतुर ही इसे खाते हैं, 'प्रसन्नवदनं' फूला हुआ होता ही है और इसके धारण अर्थात खाने से सम्पूर्ण विघ्न शान्त हो जाते हैं। राजा यह अर्थ सुन बड़ा प्रसन्न हुआ और पंडित को बहुत कुछ दक्षिणा दे बिदा किया। परन्तु यह 'बड़े' का अर्थ करनेवाला पंडित विद्वान् था, उसके हृदय में यह शोक हुआ कि देखो यह राजा कैसी मूर्खता में फँसा है अतः इससे इसे निकालना चाहिये। ऐसा विचार राजा के यहाँ ठहरकर राजा साहब को पढ़ाने लगा। थोड़े काल में राजा साहब को अष्टाध्यायी महाभाष्य और कुछ काव्य पढ़ा कर एक दिन राजा साहब से कहा कि—

'शुक्लांवरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्व विघ्नोपशान्तये ॥

इसका क्या अर्थ है? "रुपया या दहीबड़ा?" राजा साहब ने कहा—"महाराज, इसका असली अर्थ तो इन दोनों में एक नहीं।" पंडितजी ने कहा—"हम प्रथम यदि इसका और और अर्थ बतलाते तो क्या आप कभी मानते?"

७८-कृतघ्नता ।

एक ग्राम में दो पुरुष पास ही पास रहते थे, उनमें एक का नाम मिट्ठनलाल और दूसरे का दीपचंद था। इनमें मिट्ठनलाल की स्त्री पढ़ी लिखी, बड़ी ही चतुर और सुशीला थी और दीपचंद की स्त्री यद्यपि कुछ कम पढ़ी थी पर चालाकी और

चतुराई में कम न थी। दीपचंद की स्त्री मिट्ठनलाल की स्त्री से हर बात को इस प्रकार चतुराई से पूछती थी कि इससे सीख तो लेऊँ ही पर इसे यह न मालूम पड़े कि यह सीखती है और हर बात के पूछने पर जब वह बतला देती तो यह कह दिया करती कि "यह तो हमें पहले ही से मालूम था।" मिट्ठनलाल की बिचारी सीधी स्त्री यह तो जानही लेती थी कि यह चतुराई करती है पर कुछ कहती नहीं थी। इस प्रकार बहुत काल तक दीपचंद की स्त्री मिट्ठनलाल की स्त्री से धूर्तता करती रही। परन्तु एक दिन मिट्ठनलाल की स्त्री को क्रोध आया और उसने कहा कि दीपचंद की स्त्री हमीं से सीख जाती है और मानती नहीं, इसलिए इसे इसकी कृतघ्नता का फल देना चाहिये। मिट्ठनलाल की स्त्री यह सोच ही रही थी कि इतने में दीपचंद की स्त्री आ पहुंची, तबतो मिट्ठनलालकी स्त्री बोली—"बहिन कल अमुक त्योहार है, इसलिए कल पूरनपूरी हुआ करती हैं, सो तुम भी अपने घर करना।" दीपचंद की स्त्री ने पूछा—"बहिन पूरनपूरी किस तरह हुआ करती हैं? उसके बनाने की क्या विधि है?" मिट्ठनलाल की स्त्री ने कहा—"बहिन, जिस-दिन पूरनपूरी करना हो सुबह से उठ के झाड़े जंगल हो, नाई से सब बाल बनवाडाले और फिर कोयला पीसकर सारी देह में लगावे और जूतियों का माला बना के पहिरे फिर नंगे होकर नंगे २ दूध में कुछ घी डाल के आटा माड़े, फिर नंगे नंगे ही करे और किसी से बोले नहीं।" दीपचंद की स्त्री बोली—"यह तो मैं पहले ही से जानती थी।" मिट्ठनलाल की स्त्री ने मन में कहा—'जा राँड, तुझे 'यह तो मैं पहले से ही जानती थी' का फल कल मिलेगा।" अब दीपचंद की स्त्री ने घर में आकर अपने पति से कहा—"कल हमारे यहाँ अमुक त्योहार है, सो मुझे अमुक २ वस्तु ला दो और दुपहर तक घर न आना

क्योंकि मैं पूरनपूरी करूँगी।" दीपचंद ने सामान ला दिया और प्रातःकाल से वे अपने काम में चले गये। यहां इनकी स्त्री ने झाड़े जंगल हो, नाई को बुला सब सिर घुटा दिया, फिर नहाकर कोयला पीस सारे शरीर में लगाया, पुनः जूतियों की माला पहिन नंगी हो दूध में आटा सान नंगी २ पूड़ियाँ बना रही थी कि इतने में इसे सुबह से तीन बज गये और इसका पति आ गया। यह घर के किवाड़ बन्द किये पूरनपूड़ियाँ बना रही थी। पति ने दरवाज़े से कई बार बुलाया पर इसने किवाड़े न खोले। इसे संदेह हुआ कि जाने मेरी स्त्री मर गई या उसे सर्प ने काटा या कोई अन्य पुरुष मेरे घर में है. मेरी स्त्री जाने किवाड़े क्यों नहीं खोलती? ऐसा सोच एक पड़ोसी के मकान से होकर जिसकी कि छत इसकी छत से मिली थी अपने घर पहुंचा तो देखता क्या है कि यह नंगी सिर मुड़ाये सारे शरीर में कोयला लगाये, जूतियों का हार पहने पूरन पूड़ी कर रही है। प्रथम तो पति को देखते ही यह सूख गई, पुनः पति ने कहा—"क्योंरी चुड़ैल, यह क्या शकल बनाई है?" किंतु यह पूरनपूरी के ध्यान में मस्त थी, इस कारण न बोली पति ने कोड़ा ले इसकी खाल खींच दी। तब तो बोली कि मुझे यह सब मिट्ठनलाल की स्त्री ने बतलाया था।"

अब आप सोचें कि कृतघ्नता ने क्या २ दुर्दशा कराई और अन्त में यह भुल ही गया कि मैं मिट्ठनलाल की स्त्री से सीख आई थी।

— —

७९—अमल के बिना लोग पीछे नहीं चलते

एक नदी के तट पर एक अन्धा और एक लँगड़ा बैठे हुए थे। ए पथिक नदी के समीप पहुँचे और अन्धे से पूछा कि "नदी कितनी है ?" अन्धे ने कहा—"मोटी जाँघ से।" पथिक ने कहा—"तुमने देखी ?" कहा—"मैं तो अन्धा हूँ, मैं कैसे देखता ?" लँगड़े से पूछा—"नदी कितनी ?" लँगड़ा बोला—"कमर से।" पथिक ने पूछा—"तुमने मँझाई ?" इसने कहा—"मैं तो लँगड़ा हूं, कैसे मँझाता।" यह सुन पथिक संशय में था कि नदी के पार कैसे जाऊँ ? जाने नदी कितनी गहरी, कहाँ से कैसा रास्ता हो ? पथिक यह विचार ही रहा था कि इतने में एक ऐसा पुरुष जो नदी के समीप ही रहता था तथा उसके आँखें और पैर दोनों थे और कई बार उसकी नदी मँझाई हुई थी आया और बेडर नदी मँझाने लगा और उस पुरुष से जो संशय में खड़ा था कहा—"कि तुम भी मेरे पीछे बेडर चले आओ।" संशयात्मा पुरुष उसके पीछे चल पड़ा और नदी को पार कर गया।

इसी प्रकार जिनके बुद्धिरूप चक्षु हैं और कर्म करने की शक्तिरूप पग हैं और आचरण के द्वारा नदीरूप वेदों को जिन्हों ने मँझाया है उन्हीं के पीछे मनुष्य चल सकते हैं और जिन्होंने केवल सुना ही है और बुद्धिरूप नेत्रों से अन्धे हैं उनकी बात कोई नहीं मान सकता ; और न उन्हीं की बात कोई मान सकता है जिन्होंने बुद्धिरूप चक्षओं से देखा तो है पर जो कर्म करने रूप पगों से लँगड़े, आचरण-शून्य एवं भ्रष्टाचारी हैं इसलिए अगर हम दुनियां को सुधारना या अच्छे आचरणों पर लाना चाहते हैं तो आवश्यकता है कि प्रथम हम सुधरें और हम अपने आचरणों को अच्छा बनावें।

विदुषी जनता शृणुते कलातिह्यपि नाचरणं विधिवत् कुरुते ।
कलिपीड़ित भारत दुःख विनष्टि रथो भविता कथमित्यनघे ॥

८०—मेल से लाभ

एक पुरुष के चार बेटे थे। जब वह पुरुष मरने लगा तो उसने अपने चारों बच्चों को बुला एक रस्सी दी और एक-एक बेटे से प्रथक्-प्रथक कहा कि तुम इसे तोड़ो, पर वह किसी से न टूट सकी। फिर पिता ने कहा कि तुम चारों मिलकर इसको तोड़ो ।। पर वह फिर भी न टूट सकी। फिर उसने कहा अब इस रस्सी को उधेड़ डालो और इसकी एक-एक लर को तोड़ो। बच्चों ने ज़रा ही देर में रस्सी के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। तब पिता ने कहा कि देखो एक तिनका तुम्हें वर्षा में पानी से नहीं बचा सकता परन्तु जब तुम बहुत सा फूस इकट्ठा करके छप्पर छा लेते हो तो वह बड़ी-बड़ी जल-वृष्टि से भी बचाता है। इसी प्रकार जब तक तुम आपस में मिले रहोगे तब तक कोई तुम्हारा कुछ नहीं कर सकता पर जहाँ तुम अलग हुये वहाँ रस्सी की तरह टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाओगे। किसी कवि ने कहा है—

अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका ।
तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्त दन्तिनः ॥
बहूनां चैव सत्वानां समवायोऽपि दुर्जयः ।
वर्ष धाराधरो मेघस्तृणैरपि निवार्यते ॥
संहतिः श्रेयसी पुंसां स्वकुलैरल्पकैरपि ।
तुषेणापि परित्यक्ता न प्ररोहन्ति तण्डुलाः ॥

एकस्मिन्प्राणिनि काके यदा विज्ञायते विपत् ।
ते काका मिलिताः सन्तो यतन्ते तन्निवृत्तये ॥
वानराणां यथा दृष्ट्वा ह्यन्योन्यस्य सहायताम् ।
मनुष्यैरपि कर्त्तव्यं न विरोधः कदाचन ॥

८१—अदालत से नाश

एक बार दो बिल्लियां कहीं से चार खोये की लोइयाँ उठा लाईं, परन्तु उनके परस्पर बाँटने में झगड़ा हुआ, अत. दोनों ने निश्चय कर एक बन्दर के पास जा कहा कि—"आप चल कर हमारी खोये की लोई बाँट दें।" बन्दर ने कहा—"अच्छा, तुम कहीं से तराज़ू ले आओ।" जब बिल्लियाँ तराजू ले आईं तो बन्दर ने दो लोइयाँ एक तराज़ू के पलड़े पर रक्खीं और दो लोइयाँ दूसरे पलड़े पर रक्खीं। परन्तु एक पलड़े की लोइयाँ बनिस्बत दूसरे पलड़े की लोइयों के कुछ भारी थीं, इस कारण जब बन्दर ने तराजू उठाई तो भारी लोइयों वाला पलड़ा नीचे को लचक गया। बन्दर उसमें एक हौकला मार खा गया। बिल्लियों ने कहा—"यह तू क्या करता है, खाता क्यों है?" बन्दर ने कहा कि—"यह कोर्टफ़ीस है।" जब बन्दर ने फिर तराजू उठाई तो अब वह पलड़ा जिस में हौकला नहीं लगा था नीचा हो गया। बस बन्दर ने फ़ौरन ही उसमें भी एक हौकला लगाया। बिल्लियों ने कहा—"यह क्या करता है?" बन्दर ने कहा कि—"यह तलबाना है।" अब पहले वाला पलड़ा फिर नीचा हो गया, तो बन्दर पुनः उससे हौकला मार खा गया" बिल्लियों ने कहा कि—"तू यह बार-बार क्या करता है?"

बन्दर ने कहा—"यह हर्जाना है।" अब एक पलड़ा तो बिल्कुल साफ़ हो गया और दूसरे में कुछ खोया रह गया। बन्दर ने अब की बार बिना ही तराजू उठाये वह शेष खोया भी खा लिया। बिल्लियों ने कहा—"यह क्या ?" बन्दर ने कहा—"यह शुकराना है।"

बस, यारो समझ लो कि अदालत सबका सभी साफ़ कर देती है. वहाँ दोनों के दोनों नाश हो जाते हैं। इसलिए आप लोगों के यहाँ जैसी पुरानी प्रथा थी कि गाँव में पञ्च नियत थे और वही सब न्याय किया करते थे वैसे ही पञ्च नियत कर अपने झगड़े घर के घर ही में निपट लिया करो, कभी भूलकर भी अदालत में न जाओ।

८१—भेड़िया धसानी

एक महात्मा के पास कुछ ताँबे के बर्तन थे। महात्मा जब बाहर भ्रमण को जाने लगे तो सोचा कि ये बर्तन कहाँ लादे २ फिरेंगे, इसलिए इन्हें कहीं रख दें। यह सोच महात्मा ने बर्तन जंगल में एक स्थान पर गाड़ दिये और उसके ऊपर एक कूरी बाँध रहे थे जिसमें चिह्न बना रहे और लौट कर वे अपने बर्तन खोद लें कि इतने में गाँव के कुछ लोगों ने महात्मा को जंगल में कूरी बनाते देखा। महात्मा तो बाहर भ्रमण को चले ... और गाँव वालों ने यह निश्चय किया कि गाँव से जो ... बाहर जाय वह फलाँ-फलाँ जंगल में एक कूरी अव... जाय, इससे बड़ी सिद्धि प्राप्त होती है। बस, गाँव से ... कहीं जाता तो वहीं जहाँ कि महात्मा करी ... कूरी बना देता। इस प्रकार थोड़े ही दिनों में ...

कूरी हो गई कुछ काल के बाद जब महात्माजी लौटे और अपने बर्तन खोदने के लिए उस जंगल में गये तो वहाँ देखते क्या हैं कि तमाम कूरी ही कूरी बनी हैं। महात्मा यह चरित्र देख बोले—

गतानुगतिका लोको न लोकः पारमार्थिकः ।
पश्य लोकस्य मूर्खत्वं हृतं मे ताम्र भाजनम्

अर्थ—लोक बड़ा ही गतानुगतिक अर्थात् भेड़ियाधसान है, लोग परमार्थ नहीं विचारते कि क्या है ? लोक की मूर्खता तो देखो कि हमारे बर्तन ही ले डाले अब क्या जान पड़े कि कौन सी कूरी के नीचे हमारे बर्तन हैं ?

८३—संखेश्वर

एक ब्राह्मण बेचारे बड़े ही सीधे सादे, ईश्वरभक्त, नित्य पूजा पाठ किया करते थे। उनके मकान के पीछे एक धोबी का मकान था, अतः पंडितजी जब दिन में पूजा किया करते और अपना संख बजाते तो साथ ही उनके मकान के पीछे जिस धोबी का घर था उसका गधा भी इन पण्डितजी के संख के साथही नित्य बोला करता था। पंडितजी ने गधे को नित्य अपने संख के साथ बोलते देख सोचा कि यह कोई पूर्वजन्म का महात्मा जीव है, इस कारण पण्डितजी ने उस गधे का नाम संखेश्वर रख छोड़ा था। एक दिन अनायास महाराज संखेश्वर का वलोक हो गया। जब पण्डितजी ने उस दिन दोपहर को पूजा की और संखेश्वर साथ न बोले तो जाकर धोबी से पूछा कि—"आज महात्मा संखेश्वर कहाँ गये।" पंडितजी को पता लगा

कि संखेश्वरजी का देवलोक हो गया । पंडितजी ने सोचा कि खैर यदि हम से और कुछ नहीं हो सकता तो लाओ महात्मा संखेश्वर के शोक में बाल ही बनवा डालें । बस पण्डितजी अपनी मूँछ, दाढ़ी. सिर सब घुटवाकर स्नान कर बनिये की दूकान पर कुछ सौदा लेने पहुँचे । बनिये ने पूछा—"महाराज, आज बाल कैसे बनवाये हो ?" पंडितजी ने उत्तर दिया कि—"एक महात्मा संखेश्वर थे, उनका स्वर्गलोक हो गया तो हमने कहा कि महात्माओं के शोक में यदि और कुछ नहीं हो सकता तो बाल ही बनवा डालें, इस लिए बाल बनवाये हैं ।" बनिये ने कहा—'तो महाराज, कहिये तो महात्मा के शोक में हम भी बाल बनवा डालें ?" पण्डितजी ने कहा—"इस से उत्तम क्या बात है ?" बस, सेठजी भी घुटा बैठे । दूसरे दिन बज़ार के लोगों ने सेठजी से पूछा—"सेठजी, आपने बाल कैसे बनवाये ?" सेठजी ने कहा—"एक महात्मा संखेश्वर थे, उनका देवलोक हो गया तो हमने सोचा कि अगर महात्मा के शोक में हम से और कुछ नहीं हो सकता तो बाल ही बनावा डालें ।" बाज़ारवालों ने सेठ से कहा कि—"तो लाओ हम सब लोग भी महात्मा के शोक में बाल बनवा डालें" सेठजी ने कहा—"बड़ी अच्छी बात है !" अब तो सब बाज़ार की बज़ार घुटा बैठी । तीसरे दिन पल्टन के लोग बाज़ार में रसद लेने आये । उन्हों ने बाज़ारवालों से पूछा कि—"क्यों भाई, आज तुम सब लोग बाल कैसे बनवाये हो?" बाज़ारवालों ने जवाब दिया कि—"एक महात्मा का जिनका कि नाम संखेश्वर था, देवलोक हो गया है, हम लोगों ने सोचा कि महात्माजी के शोक में हम लोगों से और कुछ नहीं हो सकता तो बाल ही बनवा डालें !" पल्टनवालों ने कहा—"अगर हम लोग भी महात्माजी के शोक में बाल बनवा डालें तो क्या बुरा है !" ज़ारवालों ने कह—"वाह वाह महाराज,

बुरा कि बहुत अच्छा है ?" बस उन लोगों ने जाकर अपनी पल्टन भर में यह ख़बर करदी। फिर क्या था पल्टन की पल्टन सिर घुटा बैठी। चौथे दिन जब कप्तान साहब क़वायद लेने आये तो पल्टन की यह शकल देख पल्टन के लोगों से पूछा— "वेल, टुम लोगों ने ये क्या किया ! क्यों एकडम सब लोगों ने अपना अपना बाल बनवा डिया ?" लोगों ने जवाब दिया कि- "हुज़ूर, यहाँ एक महात्मा संखेश्वर रहते थे, वह मर गये, इस लिये हम लोगों ने उनके रंजमें बाल बनवाये हैं।" कप्तान साहब ने पूछा-"अच्छा, वह महाटमा कहाँ रहटा ठा और कौन ठा।" लोगों ने कहा —"हुज़ूर, हम नहीं जानते ?" हम लोगों ने बाज़ार में सुना।" कप्तान ने भिड़क कर कहा—'वेल टुम लोग बड़ा बेवकूफ़ डैम है, जब टुम उसे जानटा नहीं फिर क्यों बाल बनवाया ? अच्छा चलो, हम टुम्हारे साथ बाज़ार चलैगा।" जब कप्तान साहब बाज़ार पहुंचे तो बाज़ारवालों से कहा कि-"टुम लोगों ने जो हमारी पल्टन के लोगों से कहा है वह संखेश्वर महाटमा कौन है और कहाँ रहटा ठा ?" बाज़ारवालों ने कहा- "हुज़ूर, हम से इस बनिये ने कहा।" कप्तान साहब उस बनिये के पास पहुँचे और उससे पूछा कि-"टुमने जो बाल बनवायाहै और सब लोगों से कहा है, टुम जानटा है कि संखेश्वरमहाटमा कौन है ?" बनिये ने कहा—"हुज़ूर, हमने अमुक पण्डित से सुना है।" कप्तान बोला-"आइयो डैमफूल, टुमने बिना जाने बाल क्यों बनवाया और दूसरों से क्योंकहा ?" निदान कप्तान साहब उस पण्डित के पास पहुंचे और पूछने पर मालूम हुआ कि महात्मा संखेश्वर एक धोबी का गधा था। कप्तान बड़ा गुस्सा हो बोला-"आइयो काला, डैमफूल, टुम लोग बिलकुल उल्लू है।" अब तो सब के सब बिलकुल शर्मिन्दा हो गये।

भाइयो अब तो भेड़ियाधसानी छोड़ो। हम अब भी देखते हैं कि जहाँ रेल में एक किवाड़ी खुली उसी में सब घुसते चले जाते हैं, चाहे पास ही दूसरा डब्बा खाली क्यों न पड़ा हो।

८४—मालिन का देवता

एक बार एक स्थान में बड़ा भारी मेला लगा हुआ था। मेले का प्रबन्ध हमारी गवर्नमेन्ट ने पुलिस वगैरा भेज कर बहुत उत्तम कर रक्खा था। कहीं भी चोरी बदमाशी न होने पाती थी। स्थान स्थान पर पुलीसमैन मौजूद थे। सड़कों पर कोई पाखाना पेशाब मेले के अंदर नहीं करने पाता था, परन्तु एक मालिन जो मेले के अन्दर ही एक जगह अपनी फूलों की दूकान रक्खे थी उसे सुबह को ऐसा ज़ोर पाखाना लगा कि वह सड़क पर अपनी दूकान के पास ही पाखाना फिरने लगी। यह चरित्र देख पुलीस के सिपाही मालिन को पकड़ने दौड़े। मालिन ने देखा कि मुझे पुलिस के सिपाही पकड़ने आते हैं उसने झट एक टोकरा फूलों का ले अपने पाखाने पर डाल दिया और उसकी तरफ अपने हाथ जोड़ कर बैठ गई। जब पुलीस के सिपाही उसके पास पहुँचे और उससे पूछा कि -"तू यहाँ क्या करती थी?' उसने कहा कि--"यहाँ एक बड़े भारी देवता रहते हैं, इनकी पूजा करने से इनसे जिस प्रकार का फल चाहो, पुत्र पौत्र धन बल विद्या सम्पूर्ण मनोकामनायें ये पूरी करते हैं।' यह सुन कर पुलिस के सिपाहियों ने भी मालिन से एक एक पैसे के फूल और हलवाई की दूकान से कुछ बताशे तथा कुछ पैसे चढ़ा किसीने स्त्री किसी ने लड़का, किसी ने तरक्की माँगी। इस प्रकार पुलिसवालों को देख मेले के और लोगों

ने, और औरों को देख और लोगों ने, ग़रज़ कि तमाम मेले ने वहाँ रयोड़ी, बताशे पैसों और फूलों के ढर कर दिये। यह दशा देख हिन्दू बोले कि यह हमारा देवता है, मुसलमान बोले कि यह हमारा देवता है। जब दोनों में बड़ा झगड़ा हुआ तो राजा के पास यह न्याय पहुँचा। राजा ने कहा—"वहाँ चल कर देखो अगर वहाँ कुछ पत्थर वग़ैरा रक्खा है तब तो वह हिन्दुओं का देवता है और लम्बी लम्बी क़बर सी बनी हो तो मुसलमानों का देवता।" राजा ने दोनों दलों को साथ ले मौक़े पर पहुँच कर कहा - 'इसके ऊपर से सब ये फूल बताशे, रयोड़ी हटाओ।' लोगों ने हटाना शुरू किया। हटाते-हटाते वहाँ जो कुछ असली माल था वह निकल आया। यह देख सब शरमा गये और दोनों ने इनकार किया कि हमारा देवता नहीं।

८५—सुभाई का स्वभाव

एक राजा साहब को गाली देने की बड़ी आदत थी। एक बार राजा साहब एक बड़ी भारी सोसाइटी (सभा) के प्रधान बनाये गये और उनसे कहा गया कि-"राजा साहब! आज से आप इस सभा के प्रधान बनाये जाते हो, इस लिए अब किसी को गाली न देना।" राजा साहब ने कहा—"आज से हम किसी साले को गाली नहीं देंगे!"

८६—नीच की नीचता।

यः स्वभावोही यस्यास्ते स एव दुरतिक्रमः।
श्वा यदि क्रियते राजा किं नाश्नात्युपानहम्॥

एक बार एक चमार के धनिक होने के कारण एक पण्डित जी से यहाँ तक दोस्ती हो गई कि रात दिन दोनों हमेशा साथ ही रहा करते थे। एक बार एक क्षत्री के यहाँ से उन पण्डित जी के यहाँ निमन्त्रण आया पण्डित जी उस चमार को भी अपने साथ क्षत्रीजी के यहाँ भोजन कराने लगे और यह नहीं बतलाया कि यह चमार है, पर मौक़ा ऐसा आया कि सब से पहले पैर धो क्षत्री जी के आँगन में यही पहुँचा और आसन पर बिठा दिया गया। अब इसके पीछे जितने पैर धुला धुला अन्दर जाते थे, यह चमार जिस पुरुष को आते देखता था तो सकिलता जाता था क्योंकि उसकी यह आदत पड़ी हुई थी, यहाँ तक सकिलते रहा कि सकिलते सकिलते नर्दवीन पर पहुँच गया। जब लोगों ने इसे बहुत ज़्यादा सकिलते देखा तो लोग बोले-"तुम कैसे चमार की तरह सकिलते हो ?" यह शब्द सुन चमार पण्डित से बोला कि-"पण्डितजू ई जानिगे।" तब तो लोगों को ज्ञान हुआ कि यह असल में चमार है। बस क्षत्रीजी ने उसकी पूरी खबर ले बाहर निकाला।

८९—जाति कभी नहीं छिपती

जिस समय शिवाजी महाराज का मुसलमानों से युद्ध हो रहा था तो शिवाजी अपने सरदारों और सिपाहियों को यह हुक्म दिया था कि-"जहाँ मुसलमान देखो मार दो।" यह खबर पा बहुत से मुसलमानों ने चन्दन टीका पाटा जनेऊ भी पहिर लिये थे। एक बार एक मुसलमान शिवाजी के सामने पड़ा। शिवाजी ने पूछा-"तू कौन है ?" उसने कहा-"बरेहमन।" पूछा-"कौन बरेहमन ?" कहा-"गौड़।" शिवाजी ने पूछा—

"कौन गौड़ ?" यह बोला-"या अल्ला, गौड़ों में भी और ?" शिवाजी ने कहा-"अरे मार-मार, यह ब्राह्मण नहीं तुर्क है ।"

सुचिरं हि चरन्नित्यं क्षेत्रे सस्य म बुद्धिमान् ।
द्वीपि चर्म परिच्छिन्नो वाग्दोषाद् गर्दभो हतः ॥

८८-ठनगन (तकल्लुफ़)।

दो मुसलमान साहब कहीं जा रहे थे, अतः स्टेशन पर टिकट ले प्लेटफारम पर दोनों साहब गाड़ी आने की बाट देखने लगे। जिस समय प्लेटफारम पर गाड़ी आई और चढ़ने का समय आया तो एक साहब ने कहा—"चलिये, आप सवार हूजिये ।" दूसरे ने कहा-"चलिये चलिये, आप सवार हूजिये ।" पहले ने कहा--"अजी वाह, इसमें क्या, आप सवार हो जाइये ।" दूसरे ने कहा--"क़िबला, आप सवार हूजिये ।" बस इतने में गाड़ी सीटी दे चल पड़ी, ये दोनों साहब क़िबला में ही रह गये । किसी शायर ने क्या ही सच कहा है—

है यार तकल्लुफ़ में तकलीफ़ सरासर ।
आराम से वे हैं जो तकल्लुफ़ नहीं करते ॥

८९-दिल्लगी मखौल ।

एक मुतलक़ जाहिल मुसलमान साहब एक मौलवी साहब से मिलने गये । मौलवी साहब इनके पहुंचते ही उठकर खड़े हो गये और कहा-"वालेकुम सलाम, आइये क़िबला,, और इन्हें

मोढ़े पर बिठाल के इनके तथा और जो मालवी लोग मालवी साहब के पास बैठे थे, उनके लिये पान लेने घर गये। इतने में दूसरे मौलवियों ने मख़ोल से इस मुतलक़ जाहिल से कहा कि—"अभी जो मौलवी साहब ने आपसे कहा था कि 'आइये क़िबला, आप इसके माने भी समझे?" इन्होंने कहा-"हम ससुर माने क्या जानें, माने वाने आप जानते होंगे। भला, क्या माने हैं?" उन्होंने कहा कि—"क़िबला माने बेटीचोद।" अब तो ज्योंही मौलवी साहब पान लेकर घर से निकले, बस इस मुतलक़ जाहिल ने कहा कि--"मौलवी साहब, आपनेआज तो क़िबला कहा, अगर दूसरे रोज़ क़िबला कहोगे तो मारे लट्ठों के सिर फोड़ दूँगा और क़िबला तू और तेरी मा किबिलिया और तेरा बाप किबिलवा।" मौलवी साहब ने कहा--"भाई, आप क़िबला लफ्ज़ के माने क्या समझे? क़िबला लफ्ज़ के माने तो बड़े के हैं।"

यह दशा देख और मौलवी हँस रहे थे। इस मुतलक़ जाहिल ने कहा--"बस, अब बात न बनाइये। तुम अपने दरवाज़े मुझे चाहे कुछ क़िबला विबला कह लो, जनाब देखूँगा।" यह कह कर चल दिया।

१०-३६ माने के भय से ऐश्वर्य की निन्दा।

एक गाँव में एक ऐसा दरिद्री रहता था कि जिसके घर में खाली एक मूसल के और कुछ न था। एक बार अनायास समय ऐसा आया कि उस गाँव में आग लग गई। अब तो यह दरिद्री अपना मूसल ले घर से निकल रास्ते-रास्ते नाचने लगा

और बोला कि—"आज दलिद्दर कामे आओ, आज दलिद्दर कामे आओ।" यह गाता हुआ कूदने लगा।

ऐसों को ही मूसरचन्द कहा करते हैं कि आग के भय से सामान ही न जोड़ें। पाखाने की दिक्कत से भोजन ही न करें, क्या यह अक़्लमन्दी की बात है?

नरत्न प्राप्नोतिहि निर्मलत्वं शाणोपचारोपगमन्तरेण।

९१—विद्या की निन्दा।

एक सन्तजी एक पण्डितजी के द्वार पर भिक्षा माँगने आये। पण्डितजी ने कहा—"कहो सन्तजी, कुछ पढ़े लिखे हो?" सन्तजी ने कहा—"अरे बच्चे, पठितव्यं तदपि मर्त्तव्यं न पठितव्यं तदपि मर्त्तव्यं, फिर दन्त कटाकटेति किं कर्त्तव्यं?" तो पण्डितजी ने कहा कि—"यदि यही माना जाय तो 'खातव्यं तदपि मर्त्तव्यं, न खातव्यं तदपि मर्त्तव्यं, फिर अन्न भसा भसेति किं कर्त्तव्यं?" सन्तजी क्रोधित होकर चल दिये।

९२—विद्या-दम्भ।

विद्यादम्भ क्षणस्थायी धनदम्भ दिनत्रयम्।

एक साहब केवल दो शब्द सीख आये थे, एक 'वले' दूसरा 'नमे गोयम्' बस अब तो इनसे जो कोई बोलता था ये अपने इन्हीं दो शब्दों का इस्तेमाल किया करते थे और अपने गाँव में इन्हीं दो शब्दों की बदौलत मौलाना साहब बन रहे थे।

एक दिन एक अरब के रहनेवाले मौलाना साहब का ऊँट खो गया था और वह अपना ऊँट ढूँढ़ते ढूँढ़ते इन दुलफ़्ज़ी पास मौलाना के गाँव से आ निकले और अरब के मौलाना साहब ने इन दुलफ्ज़ी पास मौलाना से पूछा कि—"शुतुर मे दीदि= "मेरा ऊँट देखा है ?" इन्होंने कहा—'वले=हाँ देखा है।" अरब के मौलाना ने कहा—"कुजा रफ्त ?"= किधर गया ?" इन्होंने कहा--' नमे गोयम्=न बताऊँगा।" तब अरब-वाले मौलाना ने कहा-'जब तू ने देखा है तो क्यों नहीं बता-येगा ?" और अरब के मौलाना को बड़ा गुस्सा आगया कि देखा है और कहता है, नहीं बताऊँगा। बस गुस्से में आ अरब के मौलाना ने दुलफ्ज़ी मौलाना को खूब पीटा और ये वही लफ्ज़ मार खाने में भी रटते जाते थे—"वले नमे गोयम्, वले नमे गोयम्=देखा है, नहीं बतावेंगे, देखा है नहीं बतावेंगे।" तब अरब के मौलाना ने जान लिया कि यह दोही लफ्ज़ जानता है।

६३-एक आर्य्य और उसकी पौराणिक भावज की वार्त्ता।

एक आर्य्य पुरुष किसी ग्राम में रहते थे। दैवगति उनके जेठे भाई का देवलोक हुआ। इनकी भावज अर्थात् उस जेठे भाई की स्त्री, जिसका कि देवलोक हुआ था, पौराणिका थी। इन्होंने कहा—"हम भाई की अन्त्येष्टि वैदिक रीति से करेंगे।" पर भावज ने गरुड़पुराण सुन रक्खी थी, उसने कहा—'यह कभी नहीं हो सकता, हमारा पति मार्ग में कष्ट भोगेगा, इस लिये हम पौराणिक रीति से ही करेंगी।" भाई बिचारा चुप हो गया। भावज ने पौराणिक रीति से ही उसकी क्रिया, वैतरणी,

गोदान आदि प्रारम्भ किया। भाई ने अपनी भावज से कहा—"क्या भावज, गरुड़ पुराण में तो अङ्गुष्ठ प्रमाण शरीर लिखा है तो फिर उसी अंगुष्ठ प्रमाणवाले शरीर के ही अनुसार भाई जी के हाथ होंगे, तो जो गऊ तुमने इस ख्याल से दान की है कि इसकी पूंछ पकड़ कर वह वैतरणी पार होंगे, सो उस अंगुष्ठ प्रमाणवाले शरीर के अनुसार भाईजी के छोटे छोटे हाथों में इतनी मोटी पूंछ कैसे पकड़ी जायगी ?"

पुनः जब दशगात्रादि के बाद एकादशाह का दिन आया तो भावज ने सम्पूर्ण वस्त्र अङ्गा, कुरता, धोती, साफ़ा, रजाई, गद्दा, पलङ्ग, बर्तन, हाथी, घोड़ा, सब कुछ महापात्र को देने को एकत्र किया। भाई ने अपनी भावज से कहा-"जब अंगुष्ठ प्रमाण जीव का शरीर गरुड़पुराण में लिखा है तो उसके लिये आपने ये साढ़ेतीन हाथ की चारपाई क्यों दी ? इस पर वह अंगुष्ठ प्रमाण कहाँ लोटा लोटा फिरेगा ? और यह पाँच हाथ की रज़ाई गद्दा क्यों दिया ? इसमें तो अंगुष्ठ प्रमाण शरीर दब जायगा और निकल भी नहीं सकेगा। जिस दिन जहाँ यह आढ़ कर पड़ेगा वहीं दबा पड़ा रहेगा और इसे उठाकर उसके साथ कौन चलेगा ? कुली कितने दान किये जो रथ पर उठा उठा रक्खेंगे और सिर भी गोल मटर कितना होगा, फिर ये दस गज़ का साफ़ा कैसे बाँधेंगे ? और पैर भी छोटे-छोटे होंगे फिर यह तेरह अंगुल का जूता वह कैसे पहिनेंगे ? वह तो मये शरीर के जूते के पञ्जे ही में पड़े रहेंगे।"

भावज ने कहा-"भाई- हमसे बहस न करो, हमें करने दो।"

पुनः भाई ने अपनी भावज से कहा—"ये रथ, हाथी घोड़े, बर्तन, वस्त्र और भोजन जो आपने महापात्र को कराये ये तो सब भाईजी को पहुँचेंगे ही परन्तु हमारे भाईजी अकिऊन

भी खाते थे सो आधपाव अफ़िऊन भी इन महाराज महापात्र जी को घोल कर पिलाओ जिसमें उन्हें अफ़िऊन भी पहुँच जाय क्योंकि बिना अफिऊन के उन्हें बड़ा कष्ट होगा, यहाँ तक कि उन से तो उठा-बैठा न जायगा।" भावज ने कहा-"यह तो ठीक है।" उसने आधपाव अफ़िऊन मँगाकर महापात्र से कहा-"महाराज, इसे खाइये, क्योंकि इसके विना मेरे पति को बड़ा कष्ट होगा नहीं तो मैंने जो कुछ दिया है सब फेर लूंगी।" पुनः भाई ने कहा -"भौजाई, तुम तो भाईजी को बहुत प्यारी थीं, यहाँ तक कि तुम एक क्षण भी भाईजी से अलाहिदा हो जाती थीं तो भाईजी को बड़ा कष्ट होता था, इसलिये तुम भी महापात्र के साथ जाओ, जिसमें उन्हें स्त्री भी मिल जाय, क्योंकि स्त्री के विना भाईजी को बड़ा कष्ट होगा।"

भावज की समझ में यह सब आडम्बर आ गया और उसने महापात्र से वापिस लिया।

६४-एक आर्य बहू।

एक आर्य्य बहू एक पौराणिक महाशय के घर ब्याह कर गई तो पौराणिक महाशय के यहाँ पौराणिक प्रथा के अनुसार (जैसे कि अब भी देवियों में प्रायः प्रत्येक स्थानों पर परछन होती है) परछन होती थी, अतः उस बहू की सास महल्ला की स्त्रियों को बुलावा दे अपने बेटे और बहू की गाँठ जोर सम्पूर्ण स्त्रियों के सहित गाते बजाते हुये बेटे बहू को लेकर देवी के मन्दिर में पहुँची। परन्तु देवी का मन्दिर विचित्र बना हुआ था, यानी देवी के मन्दिर के आगे दो पत्थर की बिल्लियों की तसवीरें अत्यन्त ही खूबसूरत बनी हुई थीं। ऐसा मालूम होता

था कि मानो दोनों आपस में लड़ रही हैं। उससे कुछ ही दूर पर दो पत्थर के कुत्तों की तसवीरें उनसे भी अनोखी बनी थीं और ऐसा जान पड़ता था कि मानों कुत्ते अभी काटने को दौड़े उठते हैं। उससे कुछ ही पीछे दो पत्थर ही के शेरों की तसवीरें सब से निराली और बड़ी ही मनोहर बनी हुई थीं। शेर पूँछ ऊपर को उठाये हुए इस भांति खड़े थे मानों टूट कर आदमियों को अभी भक्षण किये लेते हैं। उस मन्दिर के बाहर बिल्लियों की तसवीरों के पास ज्यों ही यह आर्य्य बहू पहुंची तो अपने पति का डुपट्टा जिसमें कि इसकी गाँठ जुड़ी थी पकड़ कर खड़ी हो गई और भयभीत हो रोकर अपनी सास से बोली कि—"हू हू अम्मा, बिल्लियाँ खा जायँगी।" यह सुन सास ने उत्तर दिया कि—"बहू, तू कैसा लड़कपन करती है, पत्थर की बिल्लियाँ कहीं काटती हैं?" बहू चुप हो कुछ आगे बढ़ी, त्योंही उसे दो कुत्तों की तसवीरें नज़र आईं। बस बहू फिर गाँठ-जुरे डुपट्टे को पकड़ कर खड़ी हो गई और पहले से भी विशेष डरकर सास से बोली—"अरी अम्मा, कुत्ते फाड़ खाँयेंगे।" सास ने कहा—"बहू, क्या तू पगली है, भला कहीं पत्थर के कुत्ते भी काटा करते हैं?" यह सुन चुपकी हो बहू कुछ आगे बढ़ी कि कुछ ही दूर पर उसे दो शेरों की तसवीरें दृष्टि पड़ीं, अतः बहू पुनः अपने पति का गांठवाला डुपट्टा पकड़कर खड़ी हो डर कर ज़ोर-ज़ोर रोने लगी और अपनी सास से कहा कि-"अरी अम्मा, ये शेर मुझे खा जायँगे।" इस पर सास ने बहू को डाँटा और कहा कि—"तू बड़ी पागल है मैं दो बेर कह चुकी कि पत्थर की तसवीरें हैं, ये काट नहीं सकती और न ये शेर खा सकते हैं।" सास बहू में यह झंझट होते हुआते बहू जब मन्दिर के भीतर देवियों के पास पहुंची तो उसकी सास ने देवियों की पूजा कर अपने बेटे और बहू से कहा कि—"इन

देवियों के पैरों गिरो, यही तुम्हें बेटा देंगी।" यह सुनकर आर्य बहू से न रहा गया और वह अपनी साससे बोली कि—"माँ, जब कि पत्थर की बिल्लियों ने मुझे बिल्ली बनकर नहीं काटा, और पत्थर के कुत्तों ने कुत्ते बनकर नहीं काटा और न पत्थर के शेरों ने शेर ही बनकर खाया तो यह पत्थर की देवी मुझे कैसे बेटा देंगी जो हम इनके पैरों गिरें?" ठीक है—

जटिल्ली पिलिल्ली ने ऐसा किया।
कि मक्खी को मलमल के भैंसा किया॥

————

६५—अल्लामियां अकेले।

एक बार एक पण्डितजी एक मुसलमान साहब को अपनी कथा वार्त्ता सुनाकर उससे बोले "चलो यार, तुम्हें हम वैकुण्ठ का तमाशा दिखा लावें।" मुसलमान साहब ने कहा—"चलिये।" तब तो पण्डितजी ने मुसलमान साहब से कहा—"मीचो अपनी आँखें" और पण्डितजी भी आँख मीच कुछ जपते रहे कि थोड़ी ही देर में पण्डितजी साहब मये उस मुसलमान भाई के वैकुण्ठ पहुँचे। ये दोनों वैकुण्ठ में एक स्थान पर खड़े थे कि थोड़ी देर के बाद वहाँ से एक सवारी करोड़ों आदमियों के साथ बड़ी धूम धाम से निकली। एक पुरुष सिंहासन पर बैठा हुआ था, ऊपर चँवरें हिल रही थीं बाजे-गाजे घंटा घड़ियाल आदि साथ बजते चले जाते थे। मुसलमान साहब ने कहा—"यह क्या है? ये कौन साहब गये?" पण्डित जी ने कहा—"यह रामचन्द्र जी महाराज हैं।" पुनः थोड़ी ही देर के बाद एक और सवारी निकली। इसके साथ भी लाखों

आदमी थे और कई आदमी बीच में तख्त पर सेहरा डाले सुथन्ना पहिरे हुये बैठे थे, ऊपर से चँवरें हिल रही थीं। यह देख मुसलमान साहब ने पूछा—"पण्डितजी, ये कौन हैं?" पण्डितजी ने कहा—"यह आपके हज़रत मोहम्मद साहब और ग़ाज़ीमियाँ हज़रत मूसा वगैरा हैं।" पुनः थोड़ी ही देर के बाद एक और सवारी निकली और इसके साथ भी हज़ारों आदमी थे। यह भी एक तख्त पर सवार, चँवरें हिलती हुई चले गये। मुसलमान साहब ने कहा--"पण्डितजी, ये कौन थे?" पण्डितजी ने कहा—' यह हज़रत ईसा मसीह हैं।" इसके बाद एक बुड्ढा सा मनुष्य दाढ़ी रखाये हुये एक मरी हुई दुबली घुड़िया पर सवार अकेला निकला। जब यह भी निकल गया तो मुसलमान साहब ने पूछा—'पण्डितजी साहब ये कौन थे?" पण्डितजी ने उत्तर दिया—"अल्लामियाँ थे।" मुसलमान साहब ने कहा—"यह कैसा कि रामचन्द्र के साथ इतने आदमी और हज़रत मोहम्मद साहब के साथ इतने और हज़रत ईसा मसीह के साथ इतने और अल्लामियाँ अकेले?" पण्डितजी ने उत्तर दिया--"भाई साहब, दुनिया मर्दुम-परस्त हो गई, दुनिया के जितने आदमी थे वे सब उनके साथ हो गये, इसलिये अल्लामियाँ अकेले रह गये"

मर्दुम-परस्ती के कारण परमेश्वर की इबादत वा प्रार्थना या परमेश्वर को सबों ने भुला दिया।

९९—तत्त्वपदार्थ की पुड़िया।

एक पण्डित १९ वर्ष काशीजी में अध्ययन करते रहे। एक दिन पण्डितजी एक वैद्यराज के पास पहुँचे और कुछ देर बैठे

रहे तो बैठे-बैठे क्या देखते रहे कि वैद्यराज के पास जितने रोगी आते हैं, वैद्य प्रायः सभी को प्रथम जुल्लाब दिया करते हैं। पंडितजी ने सोचा कि अगर संसार में कोई तत्त्व पदार्थ है तो यही जुल्लाब है। बस पण्डितजी वैद्यराज से दो तीन जुल्लाब कोई सनाय का, कोई अरंडी के तेल का, कोई जमाल-गोटे का सीख अपने घर को चले आये। इनके गाँव में आते ही यह हल्ला मच गया कि अमुक पण्डित १६ वर्ष काशी से पढ़ कर लौटा है और इधर पण्डितजी ने भी ग्रामवालों से यह कह दिया कि हम एक ऐसी तत्व पदार्थ की पुड़िया सीख आये हैं कि उससे दुनिया के सभी काम सिद्ध हो जाते हैं। अतः ग्रामवासियों ने यह भी जान रक्खा था। एक दिन उसी ग्राम के एक धोबी का गदहा खो गया था, धोबी बड़ा हैरान था, इतने में उस धोबी की स्त्री ने कहा कि—"तू इतना क्यों हैरान होता है, क्यों नहीं उस पण्डित के पास जाकर, जो काशी में १६ वर्ष पढ़ा है, एक तत्व पदार्थ की पुड़िया ले आता है ?" धोबी ने वैसा ही किया। धोबी पण्डितजी के पास जा हाथ जोड़ बोला कि—"महाराज, मेरा गदहा खो गया है।" पण्डितजी बोले-"तू क्यों नहीं हमारे पास से एक तत्व पदार्थ की पुड़िया ले जाता है कि जिससे तेरा गधा मिल जाय ?" पण्डितजी ने धोबी को सनाय के जुल्लाब की एक पुड़िया दी। धोबी को पुड़िया खाने के कुछ देर बाद पाखाना लगा और धोबी अपने गाँव में एक तालाब पर जो गाँव के मकानों के पीछे था, पाखाने गया। वहाँ उसका गदहा चर रहा था। धोबी गदहा पा बड़ा प्रसन्न हो गया और उसको सच्चा विश्वास हो गया कि तत्व पदार्थ की पुड़िया बड़ी अच्छी है। कुछ दिन के बाद उस गाँव के राजा के ऊपर एक फौज चढ़ी आती थी। राजा साहब इस दुःख से बहुत ही दुःखित थे और यह विचार नित्य ही राज सभा

में प्रविष्ट रहता था। एक दिन धोबी राजा साहब के कपड़े धो कर ले गया और बहुत काल तक बैठा रहा। किसी ने इससे कपड़े न लिये तो धोबी ने राजा साहब के ख़िदमतगारों से कहा कि—"भाई साहब, कपड़े ले लो, मुझे और काम है।" राजा के भृत्यों ने कहा—"तुझे कपड़ों की पड़ी है, राजा साहब के ऊपर अमुक राजा की फ़ौज चढ़ी आती है सो यहाँ आफ़त मची है। तू अपनी निराली ही गाता है।"

तब तो धोबी ने कहा—"राजा साहब उस पंडित को जो कि १८ वर्ष काशी में पढ़ा है बुलवाकर क्यों नहीं तत्वपदार्थ की पुड़िया ले लेते जो दुश्मन की सेना अपने आप फतेह हो जाय।" भृत्यों ने जाकर राजा से कहा कि एक धोबी यह कहता है। राजा ने धोबी को बुलाकर पंडितजी की व्यवस्था पूछी। धोबी ने कहा—"अन्नदाता, पंडितजी के पास एक तत्वपदार्थ की ऐसी पुड़िया है कि उससे सब काम सिद्ध हो जाता है। एक बार मेरा गदहा खो गया था, मैं पंडितजी के पास जाकर तत्वपदार्थ की पुड़िया ले आया और उसे खाई कि फौरन ही गधा मिल गया।" राजा को निश्चय आ गया, अतः राजा साहब ने पंडितजी को बुलवा बड़ी प्रतिष्ठा की और पीछे हाथ जोड़ कर पूछा कि—"महाराज पंडितजी, हमारे ऊपर अमुक राजा की फौज चढ़ी आती है और उस राजा की सेना बड़ी प्रबल है, सो क्या उपाय करें?" पण्डितजी ने कहा—"महाराज, हम आपकी सेना को एक ऐसी तत्वपदार्थ की पुड़ियाँ देंगे जिससे कि शीघ्र ही शत्रु का पराजय और आपका विजय होगा लेकिन आप हमें दो मन जमालगोटा मँगा दीजिये।" राजासाहब ने वैसा ही किया। पण्डितजी ने उसे कूट पीसकर तैयारकर रक्खा। जब राजा पर शत्रु की सेना चढ़ आई और इस राजा की सेना भी लड़ाई के लिए वर्दी पहिन शस्त्र ले तैयार हुई, तब

राजा साहब ने काशी के पण्डित को बुलवा कर कहा—"महाराज, अब आप अपनी सेना को तत्वपदार्थ की पुड़िया दीजिये।" पंडितजी ने सम्पूर्ण सेना को मये राजा के जुलाब दे दिया। जिस समय इस राजा की सेना शत्रु सेना के सम्मुख पहुँची तो सारी सेना को दस्त आने शुरू हो गये और यह दशा हुई कि कोई कहीं, और कोई किसी नदी, और कोई किसी नाले में धोती पतलूनें खोले पखाना फिर रहा है। दूर से यह दृश्य देख शत्रु-सेना के अफ़सर बड़े विस्मित हुए कि यह क्या कोई नई क़वायद है; कभी हम लोगों ने किसी शत्रु सेना को इस भाँति लड़ते नहीं देखा। यह सोच शत्रु के अफ़सरों ने एक अपना जासूस इस राजा की सेना की यह नई क़वायद देखने को भेजा। जासूस ने आकर देखा कि सबों ने जुल्लाब ले रक्खा है और सबों को दस्त आ रहे हैं। जासूस ने जाकर अपने दल में ज्योंही यह वृत्तान्त कहा त्योंही उस सेनाने चढ़ कर इसका विजय किया।

सच है अन्ध विश्वास से नाश होता है। हमारे यहाँ भी सोमनाथ पट्टन को विदेशियों ने तत्वपदार्थ की पुड़िया के ही निश्चय से तोड़ा। किसी कवि ने सच कहा है—

न भूत पूर्व न कदापि दृष्टा न श्रूयते हेममयी कुरंगी।
तथाऽपि तृष्णा रघुनंदनस्य विनाशकाले विपरीत बुद्धिः

———

६७—परिहास से दुर्दशा।

एक ब्राह्मण अपने घर में तीन भाई थे। उनमें जेठा भाई कुछ पढ़ा लिखा था, इस लिए कचेहरी का काम किया करता था, और दो भाई कुछ पढ़े लिखे न थे इस से ये काश्तकारी का

काम किया करते थे। एक दिन इन मूर्ख दोनों भाइयों ने परस्पर सलाह की कि— 'भाईजी बड़े चालाक हैं, आप तो दिन भर कचेहरी का काम करते, साया में रहते हैं और हम से तुमसे खेतों का काम लेते हैं। अब कल से हम तुम कचेहरी चला करेंगे और भाई साहब से कहेंगे कि तुम हल जोतने जाओ।" जब सायंकाल को ये दोनों मूर्ख जङ्गल से आये और बड़ा भाई कचेहरी से आया तो दोनोंने बड़े भाई से कहा—"भाई साहब, कल आप हल ले जाँय और कल से हम में से एक कचेहरी जायगा।" बड़े भाईने बहुत कुछ समझाया और कहा कि- "तुम एक अक्षर पढ़े नहीं, कचेहरी जाकरक्या करोगे?"इन्होंने कहा—"कुछ हो, हम मेंसे एक कचेहरी जायगा।" बड़े भाई ने बहुत समझाया पर ये दोनों दूसरे दिन हल न ले गये जब बड़े भाई ने बैल बँधे देखे तो वह बेचारा बैल जोत हल चलाने चला गया। अब इन दोनों में मँझला भाई आज अपने बड़े भाई की पोशाक पहिन कचेहरी पहुंचा। वहाँ बादशाह मुसल-मान था और उस समय बादशाह साहब बाल बनवा रहे थे। यह मूर्ख बादशाह को देख खूब ही खिलखिला कर हँसने लगा बादशाह ने अपने आदमियों से कहा—"यह कौन शख्स है? इसको यहाँ लाओ।" और बादशाह ने उससे पूछा—"तुम एकाएक क्यों हँसे? इसने कहा कि—"हमें तुम्हारा कलींदा सा सिर देख यह ख्याल हुआ कि अगर आपका कोई सिर काट डाले तो क्या पकड़ के उठावे, क्योंकि आपके चोटी वोटी तो है ही नहीं।" बादशाह ने यह गुस्ताखी देख उसे उसी समय जेल भेज दिया और कहा इसका मुक़दमा दूसरे दिन करूँगा। परन्तु दूसरे दिन इस मूर्ख का छोटा भाई भी पहुँचा। जब यह पहुँचा तो बादशाह ने पूछा—"तुम कौन हो?" इसने कहा—"हुजूर हम उसके भाई हैं जिसको आपने कल कैद

किया है।" तब तो बादशाह ने कहा-"क्यों जी तुम्हारा भाई बड़ा ही बेवकूफ है. मैं कल हजामत बनवा रहा था कि इतने में तुम्हारा भाई आया और एकाएक खड़ा होकर हँसने लगा। हमने उसे बुलवाकर पूछा कि तुम क्यों हँसे ? उसने जवाब दिया कि मैं इसलिए हँसा कि अगर आपका कोई सिर काट डाले तो चोटी तो आप के है ही नहीं क्या पकड़ के उठावे।" यह सुन यह दूसरा मूर्ख बोला कि—"हुजूर वह था मूर्ख अगर सिर में चोटी नहीं तो मुँह में लाठी घुसेड़ के उठालें ?" बादशाह ने इस बेवकूफ को भी उसी के साथ जेल भेज दिया। अब तो तीसरे दिन उन दोनों मूर्खों का बड़ा भाई जो रोज़ कचेहरी में जाया करता था पहुँचा और बादशाह को सलाम करके और बातचीत करके मौका पा बोला कि-"हुजूर, आपके यहाँ हमारे दो बैल कैद हैं, जिनसे दो हल बन्द हैं।" बादशाह ने कहा कि-आज, क्या आप भी पागल हो गये हैं, कैसी बात करते हो ? कहीं दो बैलों से दो दो हल बन्द हुआ करते हैं!" इन्होंने कहा-"हुजूर, वह इसी क़िस्म के बैल हैं।" तब तो इन्होंने उनकी मूर्खता का सारा समाचार वर्णन किया कि इस इस तरह उन दोनों मूर्खों ने मुझे हल जोतने को भेजा और उन दोनों ने आपकी खिदमत में आकर यह गुश्ताखी की। बादशाह ने उन्हें मूर्ख जान छोड़ दिया।

मूरख का मुख बम्ब है, निकसत बचन भुजङ्ग।
ताकी औषध मौन है, विष नहिं व्यापत अङ्ग॥

— —

९८—बहुत चालाकी से सर्व व नाश।

एक स्थान से चार आदमी बाहर व्यापार के लिये निकले। कुछ दिन बाहर रहकर चारों ने अच्छा धनोपार्जन किया। जिस समय वे चारों घर को लौटे तो मार्ग में एक स्थान पर वे रात में ठहर गये। अब जिस समय भोजन भाजन की फिकर हुई तो चारों की यह सम्मति पड़ी कि दो आदमी जाकर भोजन ले आवें। अतः उनमें से दो आदमी भोजन लेने गये और दो स्थान पर असबाब ताकने में रहे। परन्तु अब वहाँ यह दशा हुई कि जो दो आदमी भोजन लेने गये उन्होंने तो यह सम्मति की कि—"यार ऐसा भोजन ले चलो कि जिसमें उस भोजन को खाकर वे दोनों आदमी मर जायँ और उनका द्रव्य हम तुम आधा-आधा बाँट लें।" यह सोच विष के लड्डू ले आये और इन स्थानिक दोनों ने यह सम्मति की कि—'वे ज्योंही भोजन लेकर आवें, दोनों को जान से मार दो और दोनों का द्रव्य हम तुम दोनों बाँट लें।" निदान उन दोनों के आते ही इन स्थानिक दोनों ने उन्हें तलवार से मार दिया और उनका द्रव्य ले चलने की तैयारी की। जब चलने लगे तो सोचा कि यार यह भोजन जो वे दोनों लाये थे रक्खा है, इस लिये आओ प्रथम भोजन कर लें, फिर चलें। परन्तु भोजन में तो वहाँ विष केलड्डू थे। ज्यों ही उन दोनों ने वे लड्डू खाये कि कुछ देर के बाद दोनों सो गये।

अब आप सोच ले कि चालाकी से क्या परिणाम निकला?

९९—अभ्यास।

एक गड़ेरिये के पास दो बड़े शिकारी कुत्ते थे। गड़ेरिया रोज़ उन्हें दो चार कोस दौड़ाता था और खाने को उन्हें साधारण ही बेझड़ की रोटी और मट्ठा दिया करता था। एक साहब बहादुर के पास भी दो कुत्ते थे जिनको कि साहब बहादुर रोज़ क़लिया मँगा-मँगा खिलाया करते थे और उनको बड़ी सजावट के साथ रक्खा करते थे। एक दिन गड़ेरिये के कुत्तों की प्रशंसा सुनकर कि वे बड़े शिकारी हैं, साहब ने गड़रिये को बुलाकर कहा कि—"शिकार खेलने में टुम अपने कुट्टे हमारे कुट्टों के साठ छोडोगे?" गड़रिये ने कहा हाँ और अपने कुत्ते ला साहब बहादुर के कुत्तों के साथ छोड़े। गड़रिये के कुत्ते साहब बहादुर के कुत्तों से आगे निकल गये। यह देख साहब बहादुर बड़े शरमाये और गड़ेरिये से बोले कि-"वल गड़रिया, टुम अपने कुट्टों को क्या खिलाटा है?" गड़रिये ने जवाब दिया कि—"बेझड़ की रोटी और मट्ठा।" साहब बहादुर ने जाँच करके देखा तो गड़रिया वास्तविक में बेझड़ की रोटी और मट्ठा ही खिलाता था। साहबबहादुर ने गड़रिये से कहा कि—"टुम अपने कुट्टे हमको डेडे?" गड़रिये ने कहा-"हम अपने कुत्ते हुजूर को कभी नहीं दे सकते।" तब साहबबहादुर ने कहा—"अच्छा, अगर टुम डोनों कुट्टे नहीं देटा टो एक कुट्टा हमारे कुट्टे के साठ बडल डो।" गड़रिये ने एक कुत्ता बदल दिया। साहब का ख्याल था कि यह कुत्ता जब गड़रिये के यहाँ केवल बेझड़ की रोटी और मट्ठा पाता है तब तो इतना शिकारी है और जब रोज़ क़लिया पायेगा तो बड़ा शिकारी हो जायगा बस, साहब बहादुर कुत्ते को ले जाकर क़लिया खिलाने लगे, लेकिन कुत्ता साहब बहादुर के यहाँ ज़ंजीर में बँधा रहता था और गड़रिया साहब

बहादुर के कुत्तों को अपने कुत्तों के साथ रोज़ दो चार कोस दौड़ाना और शिकार को तोड़ना सिखलाता रहा। कुछ अरसे के बाद साहब बहादुर ने गड़रिये से कहा कि—"अब टुम हमारे कुट्टों के साठ अपने कुट्टे छोड़ो।" गड़रिये ने कुत्ते छोड़े तो गड़रिये के कुत्ते फिर आगे निकल गये। साहब फिर भी बड़े शरमिन्दा हुए और गड़रिये को कुछ देकर उसका दूसरा कुत्ता भी उन्होंने ले लिया और दोनों कुत्तों को खूब कलिया वग़ैरा खिला तैयार किया। लेकिन गड़रिया साहब के कुत्तों को ले रोज़ दौड़ाना और शिकार को दबोचना सिखाता रहा। कुछ दिन में साहब ने गड़रिये को बुला कर कहा—"अच्छा टुम अब अपने कुट्टों को हमारे कुट्टों के साठ छोड़ो।" परन्तु फिर भी गड़रिये ने ज्योंही अपने कुत्ते छोड़े, तो इसके कुत्ते आगे निकल गये। सच है—

अभ्यास सदृशं नैव लोकेऽस्मिन्हितसाधनम्।
अतः स एव कर्तव्यः सर्वदा साधु वर्त्मना॥

१००—यथा राजा तथा प्रजा

एक राजा के यहाँ एक बार एक पण्डित कहीं से पधारे। राजा ने पण्डितजी से पूछा—"महाराज, इस समय हमारी एक घोड़ी और एक गाय दोनों गर्भिणी हैं, आप बतावें कि दोनों क्या व्यायेंगी?" पण्डित ने उत्तर दिया कि—"महाराज, गाय बछड़ा और घोड़ी बछेड़ा व्यायेगी।" पण्डित उनके व्याने के समय तक राजा के ही यहाँ ठहरे रहे। जिस समय वे दोनों व्यायीं तो राजा के कर्मचारियों ने बछेड़े को उठाकर गौ के नीचे और बछड़े को उठाकर घोड़ी के नीचे कर दिया और राजा

साहब को खबर दी कि—"महाराज, आपकी गाय बछेड़ा और घोड़ी बछड़ा ब्याई है, आप चलकर देख लें।" राजा ने जाकर देखा तो गाय के नीचे बछेड़ा और घोड़ी के नीचे बछड़ा था। राजा ने पंडितजी से कहा—"पण्डितजी, आप तो कहते थे कि गाय बछड़ा और घोड़ी बछेड़ा ब्यायेगी किंतु यहां तो उल्टा हुआ। अतः अब आपको एक कौड़ी भी नहीं दी जायगी और आप अब हमारे राज्य से निकल जाइये।" पण्डितजी ने सोचा कि आखिर तो अब हम राज्य से जाते ही हैं. लाओ हमारे कपड़े बहुत मैले हो गये हैं, उन्हें तो धुलालें। अतः उन्होंने अपने कपड़े धोबी के यहाँ धुलने को डाले। धोबी कई दिन तक कपड़ा ही देने न आया। जब पण्डितजी उस धोबी के यहाँ अपने कपड़े माँगने गये तो उसने कहा—"महाराज, वे कपड़े तो मैं नदी में धोने गया था सो पानी में आग लगने से जल गये।" यह सुन पण्डित ने राजा के यहाँ फरियाद की। राजा ने धोबी को बुला कर कहा—"क्योंरे, तू पण्डितजी के कपड़े क्यों नहीं देता?" धोबी ने कहा—"सरकार, मैं पण्डित के कपड़े नदी में धोने गया था सो नदी के पानी में आग लगने के कारण कपड़े जल गये।" राजा ने कहा—"क्योंरे कहीं पानी में भी आग लगती है?" तब तो धोबी ने कहा—

अश्वन्यां जायते बच्छा कामधेनु तुरङ्गमा।
नद्यां जायते वह्निः यथा राजा तथा प्रजा॥

"महाराज, अगर घोड़ी बछड़ा ब्या सकती है और गौ बछेड़ा ब्या सकती है तो नदी में भी आग लग सकती है।"

बस, राजा ने समझकर पण्डित को प्रतिष्ठापूर्वक बिदा किया और धोबी ने उनके कपड़े भी दे दिये।

———

१०१—किसी पुरुष की कुछ आशा रख सेवा करना और पीछे कौड़ी भी प्राप्त न होना

एक पुरुष सन के वृक्षों को बड़ा सुहावना और उनके पुष्पों को सुवर्ण-कान्ति देख इस प्रयोजन से उनकी सेवा करने लगा कि जब ये वृक्ष इतने खूबसूरत हैं और इनके पुष्पों की कान्ति सुवर्ण के समान है तो जाने इनके फल कैसे होंगे? परन्तु वहाँ जब सन के वृक्षों के फल पुष्ट हुये तो हवा चलने पर वे छुन-छुनाने लगे। यह देख उस पुरुष ने कहा—

सुवर्णं सदृशं पुष्पं फलं रत्नं भविष्यति।
आशया सेवते वृक्षं पश्चात् छुनछुनायते॥

१०२—बुद्धि और भाग्य

एक बार बुद्धि और भाग्य में झगड़ा हुआ। बुद्धि कहती थी मैं बड़ी और भाग्य कहती थी मैं बड़ी। बुद्धि ने भाग्य से कहा कि—"यदि तू बड़ी है, तो यह गड़रिया जो वन में भेड़ें चरा रहा है, इसे विना मेरी सहायता के तू बादशाह बनादे तो मैं मान लूँगी कि तू बड़ी है।" यह सुन भाग्य ने उसको बादशाह बनाने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। भाग्य ने एक बहुमूल्य खड़ाऊँ का जोड़ा जिसमें लाखों रुपये के जवाहिरात जड़े हुये थे लाकर गड़रिये के आगे रख दिया। गड़रिया उसको पहिनकर फिरने लगा। फिर भाग्य ने एक सौदागर को वहाँ पहुँचा दिया। सौदागर उन खड़ाउवों को देख चकित हो गया और गड़रिये से

बोला—"तुम यह खड़ाऊँ का जोड़ा बेचोगे?" गड़रिये ने कहा—"ले लो।" सौदागर ने कहा—"क्या दाम लोगे?" गड़रिये ने कहा—"दाम क्या बताऊँ, मुझे रोज़ रोटी खाने के लिये गाँव में जाना पड़ता है, अगर तुम दो मन भुने चने इस खड़ाऊँ के जोड़े की क़ीमत दे दो तो मैं चने चबाकर भेड़ों का दूध पी लिया करूँगा और गाँव में जाने के दुःख से छूट जाऊँगा।" अभिप्राय यह कि इस दुर्बुद्धि गड़रिये ने ऐसी बहुमूल्य खड़ाऊँ जिसमें एक-एक हीरा लाखों रुपये का था दो मन भुने चनों में बेच डालीं। यह देखकर भाग्य ने और बल दिया, उस सौदागर को एक बादशाह के दरबार में पहुंचा दिया जिस समय वहाँ सौदागर ने खड़ाऊँ बादशाह के आगे रक्खीं, बादशाह देखकर चकित हो गया और उसने सौदागर से पूछा कि—"तुमने यह खड़ाऊँ का जोड़ा कहाँ से लिया?" सौदागर ने जवाब दिया—"एक बादशाह मेरा मित्र है, उसने ये खड़ाऊँ मुझे दी है।" बादशाह ने पूछा—"क्या उस बादशाह के पास ऐसी और खड़ाऊँ हैं?" सौदागर ने उत्तर दिया कि—"हाँ हैं।" बादशाह ने पूछा—"क्या उस बादशाह के कोई लड़का भी है?" सौदागर ने कहा—"हाँ उसके लड़का भी है।" यह सुनकर बादशाह ने कहा—"जनाब, मेरी लड़की की सगाई उस बादशाह के लड़के से करा दो।" यह सब बातें तो भाग्य के बल से हुईं किंतु सौदागर को बादशाह की पिछली बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि उसे ज्ञात था कि खड़ाऊँ की जोड़ा तो मैंने गड़रिये से लिया है, न कोई बादशाह है, न बादशाह का लड़का। परन्तु इस झूठ बात के मुँह से निकल जाने से उसने सोचा कि अगर इस समय मैं अपने झूठ का भेद खोलता हूँ तो बादशाह न मालूम क्या दण्ड देवेगा। यह ख्याल कर उसने विचार किया कि जिस तरह हो

सके बादशाह के शहर से निकल चलना चाहिये। अतः उसने बादशाह से कहा —"मैं आपकी लड़की की सगाई करने के लिये जाता हूं।" यह कहकर जिस ओर से वह आया था उसी ओर को पुनः रवाना हुआ। जब वह उस स्थान पर पहुंचा जहाँ उसने गड़रिये को देखा था तो क्या देखता है कि वह गड़रिया उससे विशेष मूल्य का खड़ाऊँ का जोड़ा पहिन रहा है। सौदागर यह देख हैरान हो गया। उसने सोचा कि यह कोई सिद्ध पुरुष है जिसको इस प्रकार की वस्तुयें कुदरत से प्राप्त हो जाती हैं। उसने सोचा कि यहाँ ठहरकर इसका हाल मालूम कर लेना चाहिये। यह सोचकर उसने वहाँ डेरे लगा दिये। उसके पास ताँबा लदा हुआ था, उसे उतारकर उसने वृक्ष के नीचे एक ओर रख दिया। जब दोपहर हुई तो गड़रिया धूप का मारा उस वृक्ष के नीचे आया जहाँ ताँबे के ढेर पड़े हुये थे। वह उस ढेर के सहारे अपना सिर लगाकर सो गया। उसके तकिया लगाने से भाग्य ने उस ताँबे को सोना कर दिया। जब सौदागर ने यह देखा तब उसे खयाल आया कि जिस मनुष्य के सिर लगाने से ताँबा सोना हो जाता है, उसको बादशाह बनाना कौन बड़ी बात है। यह सोचकर सौदागर ने कुछ गाँव मोल ले लिये और उन गावों में दुर्ग बनाना प्रारम्भ कर दिया और कुछ सेना भी रख ली। जब सब सामान तैयार हो गया तब उस गड़रिये को पकड़ कर दुर्ग में ले गया और उसे अच्छे बादशाही कपड़े पहना दिये। मन्त्री, सेवक आदि सभी रख दिये। पुनः उस बादशाह को चिट्ठी लिखी कि—"हमारे बादशाह ने आपकी लड़की की सगाई स्वीकार कर ली है, जो तिथि आप नियत करें, बरात उसी दिन पहुँच जाय।" बादशाह ने तिथि नियत कर लिख भेजा। इधर व्याह की तैयारियाँ होने लगीं। एक दिन जब दर्बार लगा हुआ था, सारे मंत्री आदि बैठे

हुए थे, गड़रिया बादशाही तख्त पर तकिया लगाये बादशाह बना बैठा था, उस समय गड़रिये ने सौदागर से कहा कि—"तुम मुझे छोड़ दो, देखो मेरी भेड़ें किसी के खेत में चली जाँयगी तो वह मुझे पीटेगा।" यह सुनकर सब लोग हँस पड़े और सौदागर दिल में सोचने लगा, इसका क्या इलाज किया जाय। जो कहीं उस बादशाह से इसने ऐसा कह दिया तो मैं बे प्रयोजन मारा जाऊँगा। पुनः सौदागर ने उस गड़रिये से कहा—"अगर तुम फिर कभी ऐसे शब्द कहोगे तो तुम्हें तलवार से मार दूँगा, जो कुछ कहना हो मेरे कान में कहना। निदान ब्याह की तिथि समीप आ गई। सौदागर बारात लेकर रवाना हुआ। जब बादशाह के शहर के समीप आ गया और उधर से बादशाह का मंत्री बहुत से कामदारों और सेना के सहित अगवानी (पेशवाई) को आया तो उन्हें देखकर गड़-रिये को खयाल आया कि शायद मेरी भेड़ें उनके खेत में जा पड़ीं और ये मेरे पकड़ने को आये हैं परन्तु बात कान में कहे जाने के कारण किसी को विदित न हुई और लोगों ने सौदागर से पूछा कि—"शाहज़ादे साहब क्या कहते हैं?" सौदागर ने जवाब दिया—"जितने मनुष्य अगवानी के लिए आये हैं सबको पाँच २ लाख रुपया दिया जाय।" और सबको पाँच २ लाख रुपया दिया गया। शहर में प्रसिद्ध हो गया कि एक बड़े भारी बादशाह का लड़का ब्याह के लिए आया है जो प्रत्येक पुरुष को लाखों रुपये इनाम देता है, सैकड़ों हज़ारों का नाम ही नहीं जानता बादशाह भी डरा कि मैंने बड़े भारी बादशाह से सम्बन्ध जोड़ लिया है, परमेश्वर प्रतिष्ठा रक्खे। उस गड़रिये का ब्याह बादशाह की लड़की से हो गया।

यहाँ तक तो बुद्धिमान सौदागर के सिलसिले से भाग्य कृत-कार्य हुई। परन्तु रात को जब गड़रिया अकेला बादशाही महल

में सोया और वहाँ झाड़ फानूस लैम्प जलते देखे तो इसको ख्याल आया कि जङ्गल में जो भूतों की आग सुनी थी, वह यही है। मैं इसमें जलकर मर जाऊँगा। वह गड़रिया यह सोच ही रहा था कि इतने में बादशाह की लड़की गड़रिये की तरफ़ आई और जब उसने जेवरों की आवाज़ सुनी तो उसे ख्याल आया कि कोई चुड़ैल मेरे मारने के वास्ते आ रही है। यह सोचकर झटपट एक दर्वाज़े की ओट में छिप गया। शाहज़ादी ने देखा कि शाहज़ादा यहाँ नहीं है, वह दूसरे कमरे में चली गई। उसके जाते ही इसे ख्याल आया कि अभी एक चुड़ैल से बचा हूं न मालूम यहाँ कितनी-कितनी और चुड़ैलें आवें, इसलिये यहाँ से भग चलना चाहिये। यह सोच ही रहा था कि उसे एक ज़ीना ऊपर की तरफ़ देख पड़ा। वह झट ऊपर चढ़ गया और उसने एक तरफ़ छुज्जे को हाथ डालकर नीचे कूदकर भागने का इरादा किया। उस समय अक्ल ने भाग्य से कहा कि—"देख, तेरे बनाने से यह बादशाह न बना बल्कि अब गिरकर मरेगा।"

समाने हस्त पादादौ दैवाऽधीने च वैभवे।
यो निन्दां विन्दते नित्यं समूर्ख इति कथ्यते॥

१०३—नाक की ओट में परमेश्वर

दक्षिण देश की ओर प्रथम राजाओं के यहाँ नाक, कान, हस्त, पादादि छेदन का दण्ड दिया जाया करता था। इसी प्रथा के अनुसार एक बार वहाँ के एक अपराधी को नासिका-छेदन का दण्ड दिया गया। वह अपराधी राजा के फाटक से निकलते

ही कूद कूद कर नाचने और तालियाँ पीट-पीट बड़ा ही प्रसन्नहोने लगा । लोगों ने पूछा-"तू इतना क्यों प्रसन्न होता है?" उसने कहा—"नाक की ओट में परमेश्वर था, सो मुझे तो नाक कटने से परमेश्वर दीखने लगा ।" इस प्रकार नाच २ कर इसने नाक कटाने पर कई मनुष्यों को तैयार किया । इसने कहा-"जिस समय तुम नाक कटा लोगे तुम्हें परमेश्वर दीखेगा लोगों ने विश्वास ५८ आ नाक कटा लीं । इस एक नकटे नाचने वाले ने उन लोगों से कहा—"आख़िर तो अब आप लोगों की नाक कट ही गई, इसलिये तुम भी नाचने लगो और कह दो कि हमें भी परमेश्वर दीखने लगा, नहीं तो लोक में बड़ी निन्दा होगी ।" यह सुन वे कई मनुष्य नाचने और यह कहने लगे कि हमें भी नाक कटने से परमेश्वर दीखने लगा । इस प्रकार होते होते चार हज़ार नकटे मनुष्यों का समुदाय बन गया । एक बार ये नकटे नाचते-नाचते एक राज्य में पहुँचे तो राजा को ख़बर मिली कि चार हज़ार नकटों का झुण्ड इस भाँति नाचता फिरता है और वे कहते हैं कि नाक की ओट में परमेश्वर था सो अब दीखने लगा है. अतः राजा ने उन सबको बुलाया और पूछा तो वे सब राजा के सामने भी वैसे ही नाचने लगे और बोले—"महाराज, हमें परमेश्वर दीखता है ।" राजा ने कहा—"अगर ऐसा है तो हम भी नाक कटावेंगे ।" अपने ज्योतिषीजी से राजा बोला कि—"ज्योतिषी जी, आप पत्रा में देखिये कि हमारे नाक कटाने का मुहूर्त्त कब बनता है ?" ज्योतिषीजी ने पत्रा निकाला और मीन मेष कर कहा—"आपके नाक कटाने को माघ वदी द्वीज को प्रातःकाल बहुत ही अच्छा है ।" धन्य ज्योतिषीजी, आपके पत्रे में नाक कटाने का भी मुहूर्त्त निकला । इसके बाद वे नकटे चले गये । राजा के दीवान ने घर जा यह बात अपने बाप से कही । उसकी उमर अस्सी वर्ष के क़रीब थी और वह ४० वर्ष

तक राजा के यहाँ दीवान भी रह चुका था। बुड्ढा यह सुन दूसरे दिन राजा के यहाँ जाकर राजा को अभिवादन कर नाक कटाने का सम्पूर्ण वृत्तान्त पूछा और बोला—"अन्नदाता, मैंने आपका नमक पानी तमाम उमर खाया है और बुड्ढा भी हूँ इसलिए आप प्रथम मुझे नाक कटाकर देख लेने दीजिये, अगर मुझे नाक कटाने पर परमेश्वर दीखें तो आप नाक कटावें नहीं तो आप न कटावें।" राजा के यह बात मन आ गई, अतः उसने ज्योतिषीजी से कहा कि—"ज्योतिषीजी, अब आप हमारे पुराने दीवानजी के नाक कटाने का मुहूर्त देखिये। ज्योतिषीजी ने पुनः पत्रा निकाल मीन, मेख, वृष, मिथुन कर कहा कि-"पुराने दीवानजी के नाक कटाने का मुहूर्त पौष सुदी पूर्णिमा को अच्छा है। राजा ने पौष सुदी पुर्णिमा को नक्कट्टों को बुला एकत्र किया और दीवानजी को बुलवा उनसे कहा—"लो, इनकी नाक काटो और परमेश्वर दीखाओ।" उनमें से एक ने बहुत तीक्ष्ण छुरा ले दीवानजी की नाक काट ली। दीवानजी बेचारे को बड़ा ही कष्ट हुआ। दीवान हाथ से कटी नाक पकड़कर रह गये पुनः नक्कटों ने दीवानजी की नाक काट इनके कान में कहा कि—"अब आपकी नाक तो कटही गई है, इसलिए तुम भी नाचने कूदने लगो और यह कहने लगो कि हमें परमेश्वर दीखता है, नहीं तो लोक में बड़ी निन्दा होगी।" दीवानजी ने राजा से साफ़ कह दिया कि—"ये सब बड़े ही धूर्त्त हैं, इन्होंने हज़ारों आदमियों की व्यर्थ नाक कटा डालीं, नाक कटाने पर परमेश्वर वरमेश्वर कुछ खाक नहीं दीखता बल्कि अभी नाक काटकर हमारे कान में इन्होंने ऐसा ऐसा कहा" राजा ने यह भेद जान उन सब को पकड़वा २ उचित दंड दे उस गिरोह को तोड़ा।

आप लोग दुनिया का प्रवाह देखिये कि ऐसे-ऐसे मतों ने भी प्रचार पाया ।

हरित भूमि तृण संकुलित, समुझि परै नहिं पन्थ ।
जिमि पाखण्ड विवाद से, लुप्त होत सद् ग्रन्थ ॥

१०४–प्रकृति ही परमेश्वर के प्राप्त कराने में साधन है

एक बार एक ब्राह्मण के पच्चीस वर्ष की उम्र में लड़का पैदा हुआ, परन्तु लड़का पैदा होने के दूसरे ही दिन ब्राह्मण जीविकार्थ विदेश चला गया और पच्चीस वर्ष पर्यन्त यह ब्राह्मण विदेश में रहा, जब तक यहाँ इसका पुत्र पूर्ण युवा हो गया, उसके दाढ़ी मूछें सभी निकल आईं । लड़के के बाप की चिट्ठी पत्री यद्यपि आया करती थी पर यह अपने बाप को पहिचानता न था. क्योंकि इसके जन्म के दूसरे ही दिन बाप विदेश चला गया था और न बाप ही इसे पहिचानता था । एक दिन यह युवा लड़का अपने किसी कार्य के लिए किसी गाँव को गया और जब उस कार्य्य को करके लौटा तो दूर होने के कारण रात को किसी गाँव में एक वैश्य के घर पर टिक रहा । इतने में इसका बाप भी. जो पच्चीस वर्ष बाहर रहा था, आकर उसी वैश्य के घर पर ठहर गया और रात भर ये पिता पुत्र एक साथ लेटे रहे, परन्तु एक दूसरे को न पहिचान सके । लड़का प्रातःकाल उठकर घर चला आया और बाप झाड़े जंगल कुल्ला दन्तधावन करके कुछ देर में चला, इस कारण

लड़के से कुछ देर बाद में आया। लड़का मकान के अन्दर खड़ा था। लड़के ने इसे देख कहा—"यह कौन हमारे घर में घुसा आता है ?" माता ने पुत्र से कहा—"बेटा, यह तो तुम्हारे पिता हैं।" पुत्र ने यह सुन पिता को प्रणाम किया और कहा—"माँ, हम और पिताजी तो रात भर एक ही स्थान पर लेटे रहे, पर एक दूसरे को न पहचान सके, आपके बतलाने से अब जाना है।" और ये ही शब्द बाप ने कहे।

इसका दार्ष्टान्त यह है कि इस जीवात्मा रूप पुत्र के जनमते ही पिता परमात्मा अलग हो जाते हैं और यह सांसारिक प्रयत्नों में फँसा रहता है, परन्तु जिस प्रकार माता ने पुत्र को पिता का ज्ञान कराया था, इसी भाँति जब प्रकृति माता पुत्र जीवात्माको पिता परमात्मा का बोध कराती है तो यह तुरंत उसे पहिचान लेता है जिसके लिए उपनिषद् तथा शास्त्रों में कहा है—

अनित्ये द्रव्यैः प्राप्तवा नस्मि नित्य मपितापुत्रादुभयो दृष्टत्वात्

१०१—आज कल तो कलियुग है अधर्म करने से ही उन्नति होती है। देखो, धर्मात्मा दुःखी हैं और अधर्मात्मा सुखी हैं

एक शहर में एक वैश्य की दूकान थी। वैश्य बेचारा बड़ा ही धर्मात्मा, सीधा और सच्चा तथा ईश्वरभक्त था। प्रातःकाल से उठ अपने नियम धर्मों का पालन, सत्य बोलना, धर्म से जीविका करनी आदि-आदि सेठजी में विचित्र गुण थे, परन्तु इस प्रकार के व्यवहार से सेठजी को पैदा तो बहुत थोड़ी थी लेकिन सेठ

अपनी सद्वृत्ति और संतोष से सुखी रहा करते थे। कुछ काल के पश्चात् एक अहीर ने आकर सेठजी की दूकान के सामने जो एक दूसरी दूकान गिरी हुई थी उसे किराये में ले ली। अहीर के पास उस समय केवल १॥) की कुल पूजी थी। अहीर उसी दिन दो चार पैसे के बरतन भाड़े कुम्हार के यहाँ से ला १।) रुपये का दूध लाकर उसमें उतना ही पानी मिला दूध बेचने लगा। इस प्रकार चौधरी साहब के तो उसी दिन दूने हुये। तीसरे दिन चौधरी साहब ने २॥) रुपये का दूध ला उतना ही पानी मिला दूध बेच डाला। अब तो चौधरी साहब के फिर भी दूने हुये। इस भाँति कुछ ही दिन में चौधरी साहब मालामाल होगये और थोड़े ही दिन पहले जहाँ चौधरी एक लँगोटी लगाये फिरते थे वहाँ अब उनके ठाठ ही निराले हो गये, यहाँ तक कि उस गिरी हुई दूकान को मोल ले चौधरीजी ने तिखण्डा खड़ा कर दिया और उनके बहुत से नौकर चाकर भी रहने लगे। सेठजी यह दृश्य देख बड़े ही विस्मय को प्राप्त हुये और मन में कहने लगे कि लोग जो कहा करते हैं, क्या सच-मुच कलियुग में अधर्म ही करने से सुख मिलता है? सेठजी इन संकल्प विकल्पों ही में थे कि इतने में एक बड़े विद्वान् महात्मा उस ग्राम में पधारे। सेठजी ने जब सुना कि यहाँ एक बड़े विद्वान् महात्मा आये हुए हैं तो सेठजी ने महात्मा की शरण में आ उनको दण्ड-प्रणाम कर कहा कि—"महाराज, क्या कलयुग में अधर्म ही करने से सुख मिलता है? देखो हम नित्य प्रातःकाल उठ कर शौच दन्त-धावन, पञ्चयज्ञ का सेवन, कभी किसी जीव को दुःख न देना, सत्य बोलना आदि-आदि नेम धर्मों में ही दिन व्यतीत करते हैं। सो हमें तो खाने भर को भी कठिनता से पैदा होता है और एक अहीर ने हमारी दूकान के आगे अभी थोड़े ही दिन से

दूकान रक्खी है, जिस समय उसने दूकान रक्खी थी, उसके पास कुल १॥) था, लेकिन ज्योंही उसने दूध में आधा पानी मिला-मिला बेचना प्रारम्भ किया कि लाखों रुपये का धनी हो गया। इससे ज्ञात होता है कि आजकल अधर्म से ही उन्नति होती है।" महात्मा ने कहा—"सेठ, हम इसका उत्तर तुम्हें आठ रोज़ के बाद देंगे।" और महात्मा ने सेठजी से आठ हाथ का गहरा गढ़ा खोदवाकर सेठजी को उसके भीतर खड़ा किया और लोगों से कहा कि तुम लोग कुएँ से पानी भर-भर ज़रा इस गढ़े में तो डालो, जिस समय जल सेठजी के गाँठों तक आया तो महात्मा ने पूछा—"कहो सेठजी, आप को कुछ कष्ट तो नहीं मालूम होता?' सेठजी ने कहा—"महाराज अभी तो कोई कष्ट नहीं मालूम देता। पुनः महात्मा ने उस गढ़े में दस बीस घड़े पानी और छुड़ाया जब जल सेठजी के कमर तक आया तो महात्मा ने सेठजी से कहा—"कहो सेठजी, आप को कोई कष्ट तो नहीं?" सेठजी ने कहा—"कोई कष्ट नहीं?" पुनः महात्मा ने फिर गढ़े में और जल छुड़वाया जब जल सेठ की छाती तक आया तो फिर उनसे पूछा, पर सेठ ने फिर भी यही उत्तर दिया कि—"कोई कष्ट नहीं।" महात्मा ने फिर कुछ जल छुड़वाया। जब सेठजी के कण्ठ तक जल आया तो महात्मा ने पूछा—'सेठजी अब कहिये कोई कष्ट तो नहीं?' सेठजी ने कहा—"महाराज महाराज कोई कष्ट नहीं।" अब आप लोग विचार लें कि कण्ठ तक जल में डूबा सेठ खड़ा है और कहता है कि—"कोई कष्ट नहीं।" [illegible] अब की बार महात्मा ने ज्योंही दस बीस घड़े गढ़े में और छुड़वाये कि त्योंही सेठ डूबने लगे और ऊबासाँसी से बोले—"महात्माजी हमें शीघ्र इस गढ़े से निकालो नहीं तो दम निकलती है।" महात्मा जी ने सेठ को निकाल कर उनसे कहा—"आप अपने प्रश्न

का उत्तर समझ गये?' सेठजी ने कहा—"महाराज, नहीं समझे" महात्माजी ने कहा—'जब आपकी गाँठों तक पानी आया और मैंने पूछा तो आपने कहा—'मुझे कोई कष्ट नहीं' पुनः जब आपको कमर तक जल आया और मैंने पूछा त आपने कहा 'मुझे कोई कष्ट नहीं' यहाँ तक कि आपके कण्ठ तक जल आ गया और १० ही घड़े की कमी थी कि आप डूब जाते, पर आपने कहा 'मुझे कोई कष्ट नहीं।' इसी भांति उस अहीर के अब कण्ठ तक पाप भर आये हैं, अब डूबने में कमी नहीं, परन्तु तुमको वह सुखी मालूम पड़ता है और उसे भी नहीं जान पड़ता है।" किसी कवि ने क्या ही सत्य कहा है—

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दशवर्षाणि तिष्ठति ।
प्राप्ते एकादशे वर्षे समूलश्च विनश्यति ॥
अधर्मेणैधते तावत् ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नां जयति समूलस्तु विनश्यति ॥ मनु० ॥

१०६—खूबसूरती और बुद्धि

एक तहसीलदार बड़े ही बुद्धिमान थे यहाँ तक कि उनसे बड़े बड़े अफ़सर बड़े-बड़े मामलों में राय लिया करते थे, लेकिन वे कुछ बदसूरत थे। यह देख साहब कलेक्टर ने उनसे एक दिन मखौल किया कि—"क्यों तहसीलदार साहब" जिस समय खुदा के यहाँ खूबसूरती बँट रही थी तब आप कहाँ थे?" तहसीलदार ने उत्तर दिया—"उस समय मैं जहाँ बुद्धि बँट रही थी वहाँ था।" यह सुन कलेक्टर शरमिन्दा हो गये।

१०७—बच्चों को हमीं बुरा बनाते हैं

पैदा होने के समय सम्पूर्ण बच्चों की आत्मायें शुद्ध और पवित्र हुआ करती हैं माँ बाप ही चाहे बच्चों को सत्यवक्ता चाहे झूँठा, चाहे चोर, चाहे साह, चाहे व्यभिचारी, चाहे सदाचारी बना दें। यथा—

एक मनुष्य को कुछ झूठ बोलने तथा चाल से बात करने की बान थी, अतः उसके बच्चे की भी आदत वैसी ही पड़ने लगी। बाप ने सोचा कि बच्चा भी हमारा वैसा ही हुआ जाता है इस भय से उसने उसे उसकी ननसाल भेज दिया। जब कुछ दिन के बाद यह पुरुष अपनी सुसराल बच्चे के पास गया तो इसने सोचा कि भला बच्चे की परीक्षा तो लें कि इसका झूँठ बोलना कहाँ तक छूटा है? अतः इसने कहा कि—"बेटा, आज गंगजी में एक बड़ी भारी पहाड़ी फट गिरी।।" बच्चा बोला कि—"दादा, छीटें तो मेरे ऊपर भी आई थीं।"

१०८—काठ का ऊल्लू

एक सेठ ने एक लोधे के हाथ अपना गाड़ी बैल अपने लड़के की सवारी के लिये किसी गाँव को भेजा। वह गाँव सेठ के गाँव से ०० कोस की दूरी पर था और रास्ता १० कोस कच्चा और १० कोस पक्का था। गाड़ी बहुत दिन से ओंगी हुई न थी इस कारण बोलती थी। पक्की सड़क पर तो गाड़ी बराबर बोलती चली गई परन्तु कच्ची पर पहुंची तो गाड़ी का बोलना बन्द हो गया। यह देख लोधे ने गाड़ी फौरन ही खड़ी कर दी और गाड़ी का बाँस पकड़कर रोने लगा। बोला—"हाय, तुमका

का होइगा ? अबहीं तक तो तुम ब्वालति बतलात अच्छी भली चली आइउ, अब न जानै तुमका का होइगा।" अतएव लोधे ने गाँव के लोगों से पूछा कि—"क्यों भाई, कोई वैद्य भी इस गाँव में रहता है ?" लोगों ने कहा—"हाँ, उस तरफ रहते हैं।" यह जाकर वैद्यराज के पास रोने लगा और बोला कि—"महाराज, मैं फलाने गाँव से गाड़ी लैकै चलो, सो १० कोस पक्की सड़क-सड़क तो नीके बोलति बतलात चली आई, पर अब न जानै का होइगा जो वहिका बचन बन्द होइगा।" वैद्यराजने कहा कि-"नाटिका दिखाई भी कुछ है ?" उसने कहा-"महाराज, मोरे पास तो गाड़ी बैलवा का छाँड़ि और कछु नहीं है।" तब वैद्यराज बोले कि—"अच्छा यदि हमने नाटिका भी देख दी तो अब तेरे पास पैसा नहीं तो दवा काहे से करेगा ? इस से तू एक बैल अपना बेच डाल कि जिसमें दवा के लिये भी दाम हो जाँय और हमारा नज़राना भी हो जाय।" इस प्रकार एक बैल तो वैद्यराज ने बेचवा डाला और गाड़ी के पास जाकर कहा कि आपकी गाड़ी मर गई। सो कुछ गोदान वैतरणी कराके लिया और थोड़ा सा फूस नीचे रख गाड़ीकी भस्म क्रिया कराई पुनः वहाँ के पण्डितों ने दूसरा भी बैल बिकवा कर दशगात्र एकादशाह कराकर सब ले लिया और लोधजी सेरहीं का डुपट्टा सिर में बाँध आ विराजे। उसे देख सेठजी ने पूछा—"गाड़ी बैल कहाँ छोड़ा ?" लोधा बोला-"लालाजी, मैं हियाँ से गाड़ी लैकै चल्यौ, सो १० कोस पक्की भर तौ नीके ब्वालति बतलात उइ चली गईं, जो कच्ची पर पहुँच्यौ, सोई उनका बचन बन्द होइगा, सो बैद का लइकै देखायउँ सो एक बैल बेंचि कै तौ गाड़ी की दवादारू औ बैद के नजराने माँ दीन्ह्यौं औ दुसरे से गाड़ी कै भस्मक्रिया कै दशगात्र एकादशाह कै आइ गयउँ।"

———

१०६—एक के करने से क्या होगा ?

एक बार एक बादशाह ने अपने गाँव में एक पक्के तालाब में जो बहुत पाक और साफ़ पड़ा था दूध भराने के लिए गाँव भर के लोगों को जिनके यहाँ दूध होता था आज्ञा दी कि एक-एक घड़ा दूध अपने-अपने घर से भरकर उस तालाब में सब डाल आओ । सब लोगों ने अपने-अपने घरों में यह ख्याल किया कि अगर हम एक घड़ा पानी का डाल आवेंगे तो तालाब भर में क्या जान पड़ेगा । निदान सब के सबों ने दूध के बजाय पानी ही छोड़ा और तालाब पानी से भर गया । जब बादशाह ने देखा तो लोगों की दशा देख चकित हो गया । इसी भाँति यदि लोग कह दें कि एक से क्या होगा, और इसी प्रकार दूसरा कह दे एक से क्या, और इसी प्रकार तीसरा कह दे एक से क्या, ग़र्ज़ कि सभी इस भाँति कहदें तो कभी कोई काम हो ही नहीं सकता ।

———

११०—पलड़ह झाड़

एक वैश्य रोज़ कथा सुनने को जाया करते थे । एक रोज़ सेठजी को कोई आवश्यकीय कार्य लगा इस कारण वे कथा में न जा सके, अतः उन्होंने अपने पुत्र से कहा—"बेटा, आज फलाँ जगह जाकर कथा सुन आना ।" लड़का कथा सुनने गया तो कथा में निकला कि यदि कहीं गौ खाती हो तो उसे न मारे । दूसरे दिन सेठ का लड़का दूकान पर बैठा था और अनायास गौ भी आकर सेठ की दूकान पर जो पलरे में चावल रक्खे थे खाने लगी, लेकिन लड़के ने गौ को न मारा । इसलिए चावल कुछ बिखर गये और कुछ गौ खा गई । थोड़ी देर में

सेठ आया और अपने बेटे से बोला—"क्यों रे, ये चावल कैसे बिखरे पड़े हैं?" उसने कहा—"आपही ने तो कल कथा सुनने भेजा था, उसमें निकला था कि अगर गौ कहीं खाती हो तो उसे न मारे।" बाप ने कहा—"अरे बेवक़ूफ़, अगर हम ऐसी कथा आज तक सुनते तो काहे को घर रहता और मूर्ख, जब कथा सुनने गये तो चादर का कोना फैला दिया और जब चलने लगे तो वहीं झाड़ दिया और कह दिया कि पण्डितजी यह लो अपनी कथा।"

मुक्ता फलैः किं मृगपक्षिणाञ्च मिष्टान्न पानं किमु गर्दभानाम्।
अन्धस्य दीपो बधिरस्य गानं मूर्खस्य किं शास्त्रकथाप्रसङ्गः॥

१११—आजकल का तमस्सुक और ईमानदारी

मैं कि मीर शक्की वल्द मीर झक्की साकिन मौज़े ला मकान का हूं जो कि मुबलिग़ रुपया एक हज़ार अज़ राह जूती पैज़ार लाला रामअवतार से क़र्ज़ लेकर ब ज़रूरत वाहियात खुराफ़ात नेकजात आतिशबाज़ी में सर्फ़ कर डाले लिहाज़ा क़रार बसद न क़रार बल्कि इनकार उलटी क़लम से लिखे देता हूं कि सनद रहे और वक्त ज़रूरत के काम न आवे जिसकी सचाई इस तरह से लगादी कि रुपये के बारह आने भी न जारी दूंगा, लाला साहब मौसूफ़ सख्त बेवक़ूफ़ का रुपया वसूल न हो तो उसकी हिरासत से वसूल किये जावें।

मसला।

घी के पूत किशोरी यार। सोलह सौ के रहे हजार॥ उसको बन्दा बैठा मार। जिसकी मियाद इस तरह क़रार दी है कि

माह गये और सन् रहे जिसके कातिब फर जात राम नाम ख्वांदा जिसके कि गवाह सुलतान खाँ व बेईमान खाँ मुशफ़िक मेहरबान चूहे के क़द्रदान करमफोड़ कमबख्ती के निशान दाम पिल्लहू।

११२-मुड़िया भाषा

एक बार एक वैश्यजी ने शहर में रुई का भाव तेज़ होने के कारण एक चिट्ठी अपने घर को इस मज़मून की लिखी कि—"लाला तो अजमेर गये हमहू रुई लीनि तुमहू रुई लेव और बड़ी बही को भेज देव।" लोगों ने वहाँ इस चिट्ठी को पढ़ा कि—"लाला तो आजु मरि गये हमहू रोय लीन तुमहू रोय लेव और बड़ी बहू को भेज देव।" बस यह पढ़ बड़ी बहू को भेज दिया। बहू रोती हुई दूकान के आगे आ खड़ी हुई। सेठजी ने कहा-"यह क्या, यह क्या?" तब तो जो लोग बहू के साथ थे उन्होंने कहा-"लालाजी का तो देवलोक हो गया।" लोगों ने कहा-"यह क्या बकते हो?" तो बहू के साथ के लोगों ने कहा—"यह लो अपना पत्र पढ़ो।" उन्होंने कहा—"हमने तो यह लिखा था।" उन्होंने कहा—"हमने तो यह समझा था।" सच है—"क्रराक्षरा निष्ठुरा।"

११३-अँग्रेज़ी की लियाक़त

एक गाँव के एक बे पढ़े ज़िमींदार ने जिसके कुछ सीर, चीर भी थी अपने लड़के को औरों की देखा देखी अँग्रेज़ी पढ़ाई

परन्तु आप जानते हैं रईसों के लड़के भला ऐसे मन लगा कर कब पढ़ते हैं। इन्होंने कुछ पढ़ा और कुछ शहरों की हवा खाते रहे। थोड़े दिन में यह बाबू साहब जब अपने घर आये तो वही अँग्रेज़ी ठाट कोट पतलून बूट सिगरट पीते हुए रहने लगे। एक दिन इस ज़िमीदार के पास कुछ पढ़े लिखे मनुष्य और कुछ बे पढ़े इसके मित्र गण बैठे थे इतने में ज़िमीदार के बेटे ने ज्योंही आकर 'गुड मौर्निङ्ग' किया कि ज़िमीदार बोला कि—"भाई, हमारो लल्ला तौ खूब अँगरेज़ी पढ़ि आओ।" इसके पास के बैठनेवाले मनुष्य ने कहा कि—"जब आप एक अक्षर भी अँगरेज़ी नहीं पढ़े तो आपको क्या मालूम कि यह लड़का खूब अँगरेज़ी पढ़ आया।" ज़िमीदार ने कहा कि—"हम तौ यहिसों जान्ति हैं कि वहु एकु तौ कोट और पतलून पहिरे है, दुसरे मुण्डा जूता पहिरे है, तिसरे फकाफक सिगरट्ट पियति है, चौथे ठाढ़े मूतति है, पँचये जूता पहिरे चौकै चलो जाति है, हम तौ जहाँ यहु पढ़ति रहै सबु देखि आये हैं, छुठे नै संध्या नै गायत्री, नै होम, नै यज्ञ, नै देव, नै पितर सतैं कहति है कि परमेसुर के ह्वैबे का सबूतु है, परमेसुर हैं यैं नाईं, अठैं गिट-पिट गिटपिट बोलति है, नवैं गाँव वालेन केहू की तीर नाईं बैठति है, दसैं बिसकुट खाति हैं, यहि सों हम जान्ति हैं कि जहु एमे एलल्ल बी पासु है।"

कोटश्च बूटं पतलून दिव्यं चुरटा मुखे चञ्चलमाद्वितीयम् ।
लेडी गुलामं शमश्र महीनं बाबू भयं मद्यं मांस स्लीलम् ॥

———

११४–उर्दू बीबी

एक तहसीलदार के नाम एक बार कलेक्टर साहब ने अपने पेशकार से एक हुकमनामा लिखवाया कि—"फुलाँ तारीख़ को गंगा दरिया पर बीस या पचीस किश्तियें तय्यार रक्खें और मल्लाहों के झोपड़े जो दरिया के किनारे हैं उनको वहां से फेकवादें।" यहाँ तहसीलदार साहब ने उसे पढ़ा कि "बीस या पचीस क़स्बियें फलाँ फलाँ तारीख़ को दरिया के किनारे तय्यार रक्खो और दरिया के किनारे जो मल्लाहों के झोपड़े हैं फुकवा दो।" बस तहसीलदार साहब बीस पचीस रण्डियाँ बुलवाकर उन्हें साथ ले उस तारीख़ को दरिया के किनारे हाज़िर हुए और दरिया के किनारे के सब मल्लाहों के झोपड़े को फुकवा दिया। उधर जब कलेक्टर साहब आये तो देखते हैं कि एक नाव पर तहसीलदार बीस पचीस क़स्बियें लिये खड़े हैं। साहब ने पूछा—"वल तहसीलदार, यह क्या?" तहसीलदार ने कहा—"हुजूर का हुक्म था कि फलाँ तारीख़ को बीस या पचीस क़स्बियाँ दरिया के किनारे तैयार रक्खें।" साहब ने कहा—"पेशकार तुमने तहसीलदार को क्या लिखा था?" पेशकार साहब बोले कि—"मैंने तो लिखा था कि बीस या पचीस किश्तियें तैयार रक्खो।" साहब बोला—"फिर आपने ऐसा क्यों किया?" पेशकार ने कहा—"हुजूर, उर्दू में किश्तियें का क़स्बियें भी पढ़ा जा सकता है।" थोड़ी देर में साहब के आगे मल्लाह हाथ जोड़ आ खड़े हुए और बोले—"हुजूर, हम लोगों के झोपड़े तहसीलदार साहब ने फुकवा दिये।" साहब कलेक्टर ने कहा—"तहसीलदार, तुमने इनके झोपड़े क्यों फुकवाये?" तहसीलदार ने कहा—"हुजूर, आपने हुक्म दिया था।"

पुनः साहब ने पेशकार से पूछा तो पेशकार ने कहा—"हमने तो हुजूर यह लिखा था कि मल्लाहों के झोपड़े फेंकवा दो, पर उर्दू में वैसा भी पढ़ा जा सकता है।" साहब ने कहा—"उर्दू बड़ी ख़राब ज़बान है।" संस्कृत में भी कहा है—

अपठ्यं शूद्र म्लेच्छे ।

शोक है कि आज लोग सम्पूर्ण जबानों की माँ और सब से शुद्ध और पवित्र भाषा को छोड़ इस वाक्य के रूप बने हैं कि—

ईसा गिरजा को छोड़ ईसू गिरजा में जाय शङ्कर स्वदेशी लोग पिपर बहावेंगे। पैंट कोट वेस्ट कम्फ़ाटर टोपी कोट जाकट के पाकट में वाच लटकावेंगे॥ फिरंग घमंडा बने ब्रांडी को पग हाथ पीकर बरफ़ी मीट होटल में खावेंगे। फारसी की आरसी उड़ाय अंगरेजी पढ़ि मानो देवनागरी को नाम ही मिटावेंगे॥

११५—फूट से हानि

एक ब्राह्मण, एक क्षत्री और एक नाई तीनों कहीं को जा रहे थे। रास्ता लम्बा था। रास्ते में तीनों को क्षुधा ने सताया और एक चने का फला हुआ खेत भी इन तीनों के दृष्टि आया। इन तीनों ने सोचा कि प्रथम तो इस समय इस जङ्गल में कोई है भी नहीं जो हम लोगों को इस खेत से चने उखाड़ते हुए देख ले दूसरे यदि कोई देख भी लेगा, तो हम लोग उससे कह देंगे कि भाईजी हमने भूख के कारण थोड़े थोड़े चने उखेड़े हैं। वह

खेत एक जाट का था और दुपहर का समय था। जाटजी ने सोचा कि दुपहर का समय है हो न हो चलो एक चक्कर खेत ही की ओर कर आयें कि जिससे कोई नुक़सान न करे। जाट जी काँधे पर कुल्हाड़ा धर खेत की ओर को पधारे। वहाँ जा कर क्या देखते हैं कि हमारे खेत में तीन जवान चने उखेड़ रहे हैं। जाट ने सोचा कि अगर तुम एकाएक इन तीनों से कुछ कहते हो तो प्रथम तो यह जङ्गल, यहाँ कोई है नहीं, दूसरे हम अकेले और ये तीन हैं, इसलिए युक्ति से काम लेना चाहिये, अतः जाटजी ने तीनों के पास जा प्रथम द्विज महाराज से पूछा कि—"आप कौन हैं?" इन्होंने उत्तर दिया कि-"हम ब्राह्मण हैं।" तब तो जाटजी ने कहा—"महाराज, आप तो परमेश्वर की देह हैं, आपने बड़ी दया की, भला आप काहे को कभी हमारे खेत में आते। धन्य हो महाराज, हमारा तो खेत पवित्र हो गया। यदि आपको और दो चार गट्ठे चनों की आवश्यकता हो तो उखेड़ लीजिये। आपका तो खेत ही है।" इसके पश्चात जाटजी ने कुँवरजी से पूछा कि—"महाराज, आप कौन हैं?" इन्होंने कहा—"हम तो क्षत्री हैं।" जाटजी बोले—"धन्य हो महाराज कुँवरजी, आपने तो हमारे ऊपर बड़ी ही दया की। भला आप कभी हमारे खेत में काहे को आते। इत्तिफ़ाक़ की बात है। आपको यदि और दो चार गट्ठे चनों की आवश्यकता हो तो घोड़ों वगैरः के लिए उखड़वा मँगाइये। आपका तो खेत है।' अब इसके पश्चात जाटजी ने तीसरे यानी हज्जामजी से पूछा—"आप कौन हैं?' यह बोला—मैं तो आपका हज्जाम "हूँ।" जाटजी बोले कि—"भला अगर इन ब्राह्मण जी ने चने उखेड़े तो ये हमारे पूजनीय ठहरे और कभी कथा वार्त्ता सुना देते, कभी ब्याह काज करा देते, और कुँवरजी ने उखेड़े तो यह तो हमारे राजा ठहरे और फिर कभी हम लोगों पर आमदनी

ही में दया करते, हमारी रक्षा करते, पर तूने साले चने क्यों उखेड़े ? गधे के खाये, न पाप में पुण्य में।" ऐसा कह जाटजी ने उतार जूता हज्जाम की चाँद काट दी। अब तो ब्राह्मण और क्षत्री दोनों बोले कि—"अच्छा हुआ जो यह नथ्या पिट गया, यह कुछ बदमाश भी था। इस साले को जब कभी घर से बाल बनवाने को बुलाओ तो घंटों नहीं निकलता था, चलो आज ठीक हो गया।" उधर नाई सोचने लगा कि मैं पिट गया और ये बच गये. ये लोग जाकर गाँव में कहेंगे कि देखो नथ्या पीटा गया। परमेश्वर, कहीं इन दोनों के भी चाँद में दस-दस जूते लग जाते तो ठीक हो जाता। जब नथ्या पिट पट के कुछ दूर गया तो जाटजी बोले कि—"क्यों कुँवरजी, यह खेत कोई माफ़ी है, या मुफ्त में तय्यार हुआ था ? भला ब्राह्मणजी ने उखेड़े तो वह तो हमारे माननीय ठहरे, पर आपने चने क्यों उखेड़े ?" ऐसा कह जाटजी ने उतार जूता इनकी भी खोपड़ी लाल कर दी और मारे बेंतों के चूतर लालकर दिये।" अब तो ब्राह्मणजी बोले कि—"अच्छा हुआ, यह भी बड़ा टर्रबाज था, कभी सीधा बोलता ही न था, हमेशा अकड़ के चलता था, आज सारी अकड़ निकल गई।" उधर क्षत्री मन में सोचने लगा कि देखो हम दो पिट गये पर यह ब्राह्मण बच गया। यह गाँव में जाकर कहेगा कि नाई और क्षत्री दोनों खूब पिटे, परमेश्वर कहीं इसके भी सिर में १० जूते लग जाते तो ठीक हो जाता इस प्रकार जब कुँवरजी पिट कुटकर चले और कुछ दूर पहुँचे तब जाटजी पूज्यमान की पूजा के हेतु उनकी ओर मुखातिब हुए और ब्राह्मणजी से कहा—"क्यों महराज, यह खेत ऐसे ही ही तैयार हो गया था, इसमें मिहनत नहीं पड़ी थी ? क्या आप संस्कारों या कथा वथा में अपने टके छोड़ देते हो ? अरे भाई, ये चने क्यों उखेड़े ?" यह कह जाटजी ने उतार

जूता इनकी भी खोपड़ी साफ़ करदी। नाई की कभी ज़रूरत ही न रक्खी।

अब आप लोग नतीजा निकालें। अगर ये तीनों आपस में न फूटते तो तीनों की चाँद न काटी जाती। मित्रो, ठीक यही हमारी आपकी सबकी हालत है। क्या इस पर आप लोगों को अफ़सोस नहीं जो आपस में हमेशा अंगुल-अंगुल जगह पर, एक एक पनाले पर, एक-एक खूँटे पर निष्प्रयोजन रात दिन बैर विरोध किया करते हैं। अब आप ज़रा समझ सोच भारत पर कृपा कीजिये।

११६—उजबक

एक बार एक उजबकजी को यह सूझी कि किसी प्रकार रामचन्द्र के दर्शन करना चाहिये। उजबकजी इस ख्याल में थे कि हमें कोई ऐसा गुरु मिल जाय कि जो सहज में ही कोई साधारण युक्ति बता दे ताकि विना परिश्रम ही राम-दर्शन हो जायँ। उजबक ऐसे गुरू की तलाश में ही थे कि इनको 'यादृशी शीतला देवी तादृशः खर वाहनः' के अनुसार एक घोंघाबसंत मिल गये। इन्होंने घोंघाबसंतजी से कहा—"महाराज, हमें कोई ऐसी युक्ति बताओ कि सहज में ही राम-दर्शन हो जायँ?" घोंघाबसंत ने उपदेश किया कि-"आज से आप जब प्रातःकाल पाख़ाने जाया करें तो अपने लोटे में जो जल भर कर पाख़ाने के लिए ले जाते हो उसमें का कुछ आबदस्त लेने से बचा रक्खा करो और उसे तुम नित्यप्रति बबूल पर चढ़ादिया करो। इस प्रकार करने से तुम्हें प्रथम हनुमानजी के दर्शन होंगे, पश्चात् वे तुम्हें रामचन्द्र के दर्शन करायंगे।" उजबकजी ने वही व्रत

धारण किया। उस दिन से वे पूरे तौर से आबदस्त भी न लेते थे पर बबूल पर चढ़ाने के लिए जल अवश्य बचा रखते और रोज़ जल चढ़ाया करते थे। एक दिन एक बुड्ढा पुरुष जिसकी लम्बी-लम्बी दाढ़ी थी, प्रातःकाल पाखाने गया और वह उस बबूल के उस तरफ़ बबूल की जड़ से मिलकर पाखाने बैठगया। माघ पूस का महीना था। जाड़ा खूब पड़ रहा था। इतने में यह उजबक पाखाने गया। यह झटपट पाखाने हो जल चढ़ाने के कारण पूरे तौर से आबदस्त भी न ले लोटे में आधा पानी बचा उसी बबूल पर इस ओर से जा और आधा लोटा जल ज़ोर से फेंक दिया। जल बहुत ही ठंढा था और ज्योंही उस बूढ़े के ऊपर जो कि बबूल की जड़ से भिड़ा हुआ उस ओर पाखाने बैठा था पड़ा तो जल पड़तेही बुड्ढा भरभरा के उठ बैठा। यह दृश्य इस उजबक ने ज्योंही देखा तो इसे क्या मालूम पड़ा कि यह बबूल के अन्दर से निकला है और हो न हो यही हनूमान् हैं। बस उजबक ने वहाँ से लौटकर जाकर उस बुड्ढे के पैर पकड़ लिये। वह बेचारा पाखाना फिरे हुए था, इस कारण बोलने से लाचार था और यह उजबक बोला कि—"महाराज, बहुत दिन के बाद आपके दर्शन मिले।" बेचारा बुड्ढा बोलने से तो लाचार ही था परन्तु हाथ हिलाता था और संकेतों से यह कहता था कि—"तुम अलग जाओ।" परन्तु यह उजबक कहता था—"वाह महाराज, खूब रहे, बारह वर्ष हमने जब बबूल पर जल चढ़ाया है तब बाद मुद्दत के आपके दर्शन मिले हैं, सो आप अलग-अलग करते हैं। भला मैं आपको छोड़ सकता हूँ? आप तो हनुमान् हैं।" यह बुड्ढा फिर हाथ हिला कर संकेत से बोला कि—'हूँ हूँ, ऊँ हुं, ऊँ हूँ" यानी मैं हनूमान नहीं हूं, तुम अलग हटो। परन्तु इसने कहा—"अरे जाव महाराज, अब एक

नहीं चलने की, हमने बहुत दिन में आपके दर्शन पाये हैं, आप तो भक्तों से पहले ऐसा कहा ही करते हैं।" बेचारे बुड्ढे को आबदस्त लेना मुहाल हो गया। इस प्रकार जब बुड्ढे ने देखा कि इससे पीछा छूटना कठिन है तो बोला कि—"अच्छा मैं हनूमान हूँ, तुम अपना अभिप्राय कहो, क्या है?" इसने हाथ जोड़ कहा—"महाराज, हमें राम के दर्शन कराओ।" बुड्ढा यह सुन हैरान हुआ कि मैं इसे रामचन्द्र के दर्शन कहाँ से कराऊँ, परन्तु अनायास उसी समय चार सवार घोड़े पर किसी राजा के पास डाक लिये जाते थे, जब बुड्ढे ने देखा कि यह किसी प्रकार न मानेगा तो उसने कहा—"देखो, वे चारों भाई जा रहे हैं, और बोला कि—

आगे आगे राम जात हैं पीछे लछिमन भाई।
उसके पीछे भरत जात हैं, पीछे शत्रुघ्न दिखाई॥

यह सुनतेही उजबक बुड्ढे को छोड़ सवारों की ओर दौड़ा। उन में तीन सवार तो आगे निकल गये थे, पीछे वाले सवार के साथ यह उजबक जा चिपटा और बोला कि—"बहुत काल के बाद दर्शन हुये।" सवार ने कहा—"क्या है क्यों चिपटता है, तू कौन है?" यह बोला—"महाराज मैं आपका भक्त हूँ, कृपा-नाथ '१२ वर्ष तो मैं ने बबूल पर जल चढ़ाया, तब तो हनूमान्‌जी ने आपको बताया है।" सवार ने कहा अरे भाई, हम सरकारी सवार हैं, डाक लिये जाते है, हमें तुमने क्या समझ रक्खा है।" इसने कहा—"महाराज, दास को क्या धोखा देते हो? आप राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न चारो भाई हो।" सवार ने कहा—"नहीं, हम सवार हैं।" उसने कहा—"आप तो प्रथम भक्तों से ऐसा ही कहा करते हैं कि जिसमें हमें छोड़ दें, सो हम आपको छोड़नेवाले नहीं।" सवार ने जब देखा कि यह इस

प्रकार पीछा न छोड़ेगा और डाक को मुझे देर होती है तो ले हण्टर पीटने लगा और यह गिर पड़ा। पीछे बोला कि—

मारे गये चाहे पीटे गये, दर्शन तो कर ही लिये।

सम्पादिता सपदि दर्दुर दीर्घ नादा यत्कोकिला कल रुतानि निराकृतानि। निष्पीतम्बु लवणं नतु देवनद्याः पर्जन्य तेन भवता विहितो विवेकः।

११७—स्त्रियों के परदे से हानि

एक बार एक कलकत्ता के निवासी सेठजी अपनी बहू को बिदा कराये बम्बई से आरहे थे और दूसरे सेठ कानपुर निवासी अपनी बहू को बिदा कराये दक्षिण हैदराबाद से आरहे थे। दोनों का इलाहाबाद स्टेशन पर संगम हो गया और दोनों बहुयें एक ही बिस्तर पर बैठ गईं, परन्तु अब बात यह थी कि परदा के कारण न तो कानपुरवाले सेठ अपनी बहू को पहचानते थे और न कलकत्तावाले सेठ अपनी बहू को पहचानते थे। थोड़ी देर के बाद दोनों ओर की जानेवाली गाड़ियों का मिलान वहीं पर हुआ। सेठों ने बहुओं से कहा कि—"बहुओ, तुम ज़रा अलग खड़ी होजाओ तो हम असबाब सम्हाल लें।" प्रतिपाल यह हुआ कि कलकत्ता के सेठ की बहू कानपुरवालों के साथ चली आई और कानपुरवालों की बहू कलकत्तेवालों के साथ चली गई। जब ये बहुयें कलकत्ता और कानपुर चार चार दिन रह चुकीं तो पीछे मालूम हुआ कि कलकत्ता की बहू कानपुर और कानपुर की बहू कलकत्ता चली गई। अन्त में यह हुआ कलकत्तावाला कानपुर अपनी बहू को लेने आया और अपनी

स्त्री को रास्ते ही में मार दिया। दूसरे ने कलकत्ते से कानपूर आकर यहीं उसे छोड़ दिया कि तू हमारे काम की नहीं।

११८—वर्तमान स्त्रियों की विद्या

एक लड़की ने अपने मायके में रहकर विचारी ने एक-एक पैसा जोड़ हर प्रकार की तकलीफ़ सह कर सौ रुपये जोड़े। जब यह विचारी अपने सासुरे गई तो इसे सौ तक गिनती तो आती ही न थी, इस कारण अपने रुपयों को दो दो बराबर कर लिया करती थी और जब दो दो बराबर हो जाते थे तो समझ लेती थी कि अब मेरे रुपये पूरे हैं। परन्तु निकालनेवाली भी बड़ी ही चतुर थी; यह भी दो ही दो निकाला करती थी। यहाँ तक कि निकलते-निकलते इसके पास केवल चौबीस रुपये रह गये। परन्तु जब भी यह अपने बरराबर कर लेती और कहती चली आई कि मेरे पूरे हैं। एक दिन निकालने वाली चुट्टी इसके रुपये निकाल रही थी कि यह आ गई, इस कारण निकालने-वाली ने एक ही रुपया निकाल पाया। इसने फ़ौरन् ही अपने रुपयों को दो दो बारबर किया परन्तु एक घट रहा। तब इसे मालूम हुआ कि मेरी आज चोरी हो गई। तब तो इसकी सास ने कहा—"ला मैं तेरे रुपये गिन दूँ।' यह दो-दो बराबर कर बोली—"१) रुपया तो बढ़ता है तू किसका चुरा लाई?" अब आप लोग सोच लें कि इनके सिपुर्द हमारा सब घर का कार-ख़ाना और बाल बच्चे हैं, ऐसी स्त्रियों की सन्तानें जितनी मूर्ख न हों उतना ही थोड़ा है।

११६—बेवा स्त्रियों का मुख्य धर्म

एक बार झाँसी की रानी महाराणी लक्ष्मण बाई किसी स्थान पर एक पण्डित की कथा श्रवण करने गईं। कथा में पण्डित जी ने एक दृष्टान्त कहा कि—'इन बेवा स्त्रियों के मक्कर देखो कि जब तक तो इनका पति जीवित रहता है तब तक तो काँच की कच्ची चूरियाँ चार चार या छै छै पैसे की पहनती हैं और जब पति मर जाता है तो सोने या चाँदी का गहना या पनरिया दस दस, बीस बीस, पचास पचास रुपये की पहनती हैं।" महाराणी लक्ष्मण बाई ने पण्डित जी को उत्तर दिया कि-"महाराज क्षमा कीजिये, आपने इस महत्व को नहीं समझा। इसका मतलब यह है कि जब तक इनका रिश्ता अपने पति से है तो ये समझती हैं कि पति का पाञ्चभौतिक अनित्य क्षणभंगुर शरीर काँच की कची चूरियों की तरह ज़रा से धक्के में कुट्ट से हो जाने वाली है, इसलिए ये जब तक इनका रिश्ता कुम्हार के कच्चे घड़े की तरह फूटनेवाले पति के शरीर से रहता है तब तक काँच की कच्ची चूरियाँ पहनती हैं और जब पति मर गया तो अब संसार में इनका एक उस पक्के परमात्मा से जो कभी भी टूटने फूटने वाला नहीं सम्बन्ध हो जाता है, इसलिये ये सोना चाँदी की पक्की चूड़ियाँ पहिर ईश्वर-भक्ति में अपने जन्म को विता देती हैं।"

१२०—असंभव बात कभी सच नहीं होती

एक बार एक जगह गप्पें उठ रहीं थी, तब तक एक दूसरे गप्पी आ गये। अब क्या था 'गप्पी के घर गप्पी आये' के अनुसार जब गप्पियों के यहाँ गप्पी आये तो गप्प मारने की क्या

कमी। यह बोला कि—"हमारे गुरू तो अपना सिर काट के अपने सिर के जूँ बीन लिया करते हैं।" दूसरे ने कहा-"आँखें तो सिर के साथ कट जाती है फिर सिर के जूँ किसके देखते हैं?" इसने अपने मुँह में अपने ही हाथ से एक थप्पड़ मारा और कहा-"बस, इतनी ही तो झूठी निकल गई, नहीं तो सब सच्ची ही थी।"

१२१—तन बदन का होश नहीं

एक बढ़ई अपने बसूले को कंधे पर रक्खे हुए उसे ढूँढता फिरता था कि बसूला कहाँ गया और इधर,उधर बिलबिलाता हुआ व्याकुल हो रहा था। किसी ने कहा-"कन्धे पर क्या है?" वह झट उस पुरुष के पैरों गिर पड़ा और बोला कि-"आप न बता देते तो हमारा बसूला गया ही था।"

१२२—चोर की दाढ़ी में तिनका

एक बार एक मनुष्य के यहाँ चोरी हो गई थी। उसका पता लगना कठिन हो गया था। उस पुरुष ने जाकर बादशाह के यहाँ प्रार्थना की। बादशाह का वज़ीर बड़ा ही चतुर था। वह तमाम बदमाशों और चोरों को इकट्ठा कर बोला कि—"चोर की दाढ़ी में तिनका है।" अब तो जिस मनुष्य ने चोरी की थी, वह अपनी दाढ़ी देखने लगा। बस, वज़ीर ने समझ लिया कि इसने चोरी की है।

१२३—आज कल की सती

किसी स्त्री ने अपनी सास से पूछा कि—"सती के क्या माने हैं?" उसने जवाब दिया कि—'जिसने सात सात खसम किये हों, उसको सती कहते हैं।" इस पर उसने कहा कि—"तेरा लड़का मेरा आठवाँ खसम है।" सास ने जवाब दिया कि—'तूने अब दूसरे सत पर क़दम रक्खा है।'

१२४—बिना सम्बंध के वार्त्ता

एक वैद्य जी एक रोगी को देखने लगे और उनके साथ उनका एक मूर्ख शिष्य भी गया। वैद्यजी ज्योंही रोगी के पास पहुँचे तो चने के छिलके इधर उधर पड़े देख उसकी बदपरहेज़ी पर चिढ़ कर बोले कि—"तुम्हारी नाटिका में तो आज चने उछल रहे हैं।" रोगी हाथ जोड़ बोला—"महाराज, आज भूल हो गई, मैंने दो झोंक चाब लिये, पर आइन्दा ऐसा कभी न होगा।" थोड़ी देर में वैद्यराज चले आये। रास्ते में शिष्य ने पूछा—'महराज, आपने यह कैसे जान लिया कि इसकी नाटिका में चने कूद रहे हैं?' वैद्यजी ने कहा कि—"चनों के छिलके उसकी चारपाई के पास पड़े थे, इसलिए ऐसा कह दिया।" दूसरे दिन जब उस रोगी के घर के मनुष्य फिर लिवाने गये वैद्यराज तो रोगी की बदपरहेज़ी से चिढ़े थे, इस कारण आपने अपने उसी शिष्य को भेज दिया कि जाओ उस रोगी को देख आओ। इतने में रोगी के घर कोई उसका मेहमान ऊँट पर आया और ऊँट की काँठी रोगी की चारपाई के पास रख बैठ गया। जब तक वैद्यराज के शिष्य रोगी को देखने

पहुँचे। यह ऊँट की काठी पास रक्खी देख रोगी की नाडिका पकड़ के क्या बोले कि—"आज तो यह ऊँट खा गया है, इस की नाडिका में ऊँट कूद रहा है।" रोगी के घर के लोगों ने कहा-"महाराज, क्यों पागलपन करते हो? ले यहाँ से अब आप रवाना तो हूजिये।"

अमन्त्रणमक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम्।
अयोग्य पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभाः॥

———

१२५—बिना योग्यता के काम

एक वैद्यराज अपने नौकर को साथ ले बाहर वैद्यकी के निमित्त चले, परन्तु उस देश की प्रथा यह थी कि अगर कोई रोगी मर जाता था तो वैद्यजी ही को उठाना पड़ता था। वैद्यराज बड़े चतुर और चालाक थे। हर बार शव उठाने में अपने नौकर को रोगी के सिर की ओर और आप पैरों की ओर रहा करते थे। वैद्यराज जहाँ-जहाँ दवा करने जाते थे वे प्रायः सभी मर जाया करते थे। अब की बार वैद्यराज एक रोगी की दवा करने गये तो नौकर ने कहा कि—"महाराज, नाडिका पीछे पकड़ो, पहले यह ठहरा लो कि अब की हम पैरों की ओर रहेंगे।" यह सुन वहाँ से दोनों निकाले गये—

लोभात् क्रोधः प्रभवति क्रोधात् द्रोहः प्रवर्त्तते।
द्रोहेण नरकं यान्ति शास्त्रज्ञोऽपि विचक्षणः॥

———

१२६---अत्यन्त लोभ से हानि (बड़े कंजूस)

एक बार एक सेठजी का बहुत दिन से यह इरादा हो रहा था कि अगर कोई सब से थोड़ा खाने वाला ब्राह्मण मिले तो एक ब्राह्मण खिलावें। यद्यपि सेठजी अपने घर के बड़े मालदार थे परन्तु अत्यन्त लोभी होने के कारण उनकी यह दशा थी कि वे बहुत दिन तक ऐसे ब्राह्मण की खोज में रहे। सेठजी के बहुत दिन यह विचार रहने के कारण गाँव वाले ब्राह्मणों ने समझ लिया था कि सेठ बड़े लोभी हैं और सेठजी का ऐसा ऐसा विचार है। एक दिन सेठजी से एक गाँव वाले ब्राह्मण से वार्त्ता हुई। सेठजी ने पूछा—"आप कितना खाते होंगे?" ब्राह्मण ने कहा—"एक छटाँक भर के क़रीब।" यह सुन सेठजी ने उसी समय उस ब्राह्मण को दूसरे दिन के लिए न्योता दिया और ब्राह्मण से बोले कि—"पण्डितजी मैं तो कल फलाने स्थान में सौदा तुलाने जाऊँगा, आप मेरे घर जाकर भोजन कर आवें" ब्राह्मण ने कहा—'बहुत अच्छा, लालाजी की जै बनी रहे हम तो हमेशा आपही लोगों का खाते है।" यही समाचार सेठ ने अपने घर जाकर सेठानीजी से कह दिया कि हम अमुक ब्राह्मण को कल के लिए न्योत आये हैं, सो मैं तो कल फलाँ स्थान में सौदा तुलाने जाऊँगा और तुम जो २ ब्राह्मण माँगे सो दे देना, क्योंकि सेठजी ने यह तो जान ही लिया था कि जब पंडितजी की छटाँक भर की खुराक है तो माँगेंगे ही क्या? दूसरे दिन सेठ तो सौदा तुलाने चले गये और ब्राह्मण ने आकर सेठानी को आशीर्वाद दिया। सेठानी वैसी लोभिनी न थी और बड़ी साध्वी, पतिव्रता, ब्राह्मण भक्त थी। उसने पूछा-"बोलिये पण्डितजी, आपको क्या २ चाहिये?" इन्होंने कहा-"१० मन आटा, २ मन घी, ४ मन शाक, २ मन शक्कर, पाँच

सेर नमक, २ सेर मसाला तो घर के लिये।" सेठानीजी ने पति की आज्ञानुसार सब निकलवा दिया और पण्डितजी ने इस समान को घर भेज सेठानीजी से कहा कि—"ले हमारे लिये जल्दी चौका लगवाओ।" सेठानीजी ने चट-पट चौका लगवा पण्डितजी को भोजन बनवाये। भोजन करने के बाद पण्डितजी बोले कि—"सेठानीजी, अब हमारी १०० अशर्फ़ियाँ जो दक्षिणा की चाहियें वह भी मिल जाँय तो हम तो आशीर्वाद दे घर चलें।" सेठानीजी ने १०० अशर्फ़ियाँ भी दे दीं। ब्राह्मण आशीर्वाद दे बिदा हुआ और अपने घर में जा पिछौरा ओढ़ पड़ रहा और अपनी स्त्री (ब्राह्मणी) से बोला कि—"अगर सेठ आवें तो तू रोने लगना और कहना कि पण्डित तो जब से आपके घर से भोजन करके आये हैं तब से ही बहुत सख्त बीमार हैं, बल्कि बचने की आशा नहीं। न जाने आपने क्या खिला दिया।" इधर जब शाम हुई तो सेठ दिन भर के भूखे (यहाँ तक कि ये कभी लोभ से कँकड़ी भर गुड़ खाकर पानी भी बाहर नहीं पी सकते थे) घर में आये तो सेठानी से पूछा—"ब्राह्मणजी भोजन कर गये?" सेठानी ने कहा कि—"हाँ, पण्डितजी ने इतना इतना सामान घर के लिये माँगा और ५ सेर तक की पूड़ियाँ यहाँ बना खाकर १०० अशर्फ़ियाँ दक्षिणा की भी ले गये।" सेठ यह सुन मूर्छित हो गया। थोड़ी देर में जब सेठ को होश आया तो वह उस ब्राह्मण के घर पहुँचा। ब्राह्मणी दर्वाज़े पर बैठी थी। सेठ ने पूछा कि—"ब्राह्मण कहाँ है?" यह सुन ब्राह्मणी फूट फूट कर रोने लगी और बोली-"उनको तो जब से आपके यहाँ से भोजन कर आये हैं, न जाने क्या हो गया, बहुत सख्त बीमार हैं, बल्कि बचने की आशा नहीं न जाने आपके घर में क्या खिला दिया?" सेठ ब्राह्मणी के हाथ जोड़ने लगे और बोले कि—"चिल्लाओ मत, हम २००) तुमको और दिये जाते हैं,

सो उनकी दवा दारू करो, पर यह मत कहना कि सेठजी के घर खाने गये थे सो न जाने क्या खिला दिया ।"

१२७—कर्कशा

एक कर्कशा स्त्री हमेशा उलटा वर्त्ताव किया करती थी। जो पति के मुख से निकले उसके विरुद्ध करना ही इसका काम था। यदि पुरुष कहे कि इस साल एक यज्ञ कराऊँगा तो यह कहती कि यज्ञ तो कभी न होगा और चाहे कुछ हो। अगर पति कहता कि इस साल ब्रह्मभोज कराऊँगा तो यह कहती थी ब्रह्मभोज तो कभी न होगा और चाहे कुछ हो। पति ने जब जान लिया कि स्त्री का यह स्वभाव ही है तो वह युक्ति से काम लेने लगा, यानी जो-जो कुछ इस पुरुष को कर्त्तव्य होता, सदैव उसका उलटा कहा करता था। यदि इसे यज्ञ करना होता तो कहता था इस साल मैं यज्ञ, ब्रह्मभोज कुछ न करूँगा। तब स्त्री कहती कि और चाहे कुछ न हो पर यज्ञ और ब्रह्मभोज तो इस साल अवश्य होगा।

इस दृष्टान्त के लिखने का प्रयोजन यह है, कि अगर मनुष्य बुद्धिमान् और युक्तिवान् है तो दुष्ट से दुष्ट और विरोधी से विरोधी मनुष्य भी उसका कुछ नहीं कर सकता।

१२८—ग़र्जवन्दा बावला

एक सेठजी ने एक बदमाश को एक हज़ार रुपये क़र्ज़ दे दिये। जब सेठजी उस बदमाश से विशेष तक़ाज़ा करने लगे तो उसने एक वैद्यराज से जो उसके पड़ोस में रहा करते थे

सलाह पूछी। वैद्यराज ने कहा कि—"तुम बीमारी का बहाना कर अपने घर लोट रहो, तो हम सेठ का दो चार सौ रुपया बिगड़वा दें।" बदमाश ने ऐसा ही किया और गाँव में वैद्यराज ने यह प्रकट कर दिया कि अमुक बदमाश बहुत सख्त बीमार है, आज ही कल में मरने वाला है। अब सेठजी विचारों का तक़ाज़ा तो भूल गया और वे दुवक्ता उसे देखने आते थे और इसी फ़िक्र में पड़े कि किसी तरह यह अच्छा हो जाय। सेठजी ने वैद्यराज से पूछा कि—"किसी युक्ति से यह अच्छा भी हो सकता है?" वैद्यराज ने कहा कि—"अगर अमेरिका का उल्लू कहीं मिल जाय और उसका कलेजा निकालकर इसकी दवा बनाई जाय तो यह आराम हो सकता है। लेकिन अमेरिका का उल्लू ५००) रुपये में आता है।" सेठजी ने सोचा कि अगर यह मर गया तब तो एक कौड़ी वसूल न होगी और इस प्रकार अगर ५००) उल्लू में चले जायँगे तो ५००) तो मिलेंगे अतः उन्होंने यह खर्च स्वीकार कर लिया। थोड़ी देर में वैद्यराज ने उसी बदमाश के किसी सम्बन्धी को उल्लू लेकर बाज़ार में बेचने के लिए भेज दिया और यह कह दिया कि बाज़ार में कहना कि—"लो अमेरिका के जंगल का उल्लू।" सम्बन्धी बाज़ार में जा बोलने लगा कि—"लो अमेरिका के जंगल का उल्लू।" सेठजी विचारे तो आसामी की बीमारी से घबड़ा ही रहे थे, उन्हों ने पुकारा—"ओ अमेरिका के जंगल के उल्लूवाला! उल्लू यहाँ ले आ।" जब वह पास लाया तो सेठजी ने उसकी क़ीमत पूछी। उल्लूवाले ने कहा पाँच सौ रुपया।" सेठजी ने फ़ौरन ही ५००) उल्लूवाले को दे और उल्लू ले बदमाश के दर्वाज़े पहुँच कर वैद्य से कहा—"लो हम अमेरिका के जंगल का उल्लू ले आये।" तब तो वैद्यराज ने कहा कि—"रोगी तो अच्छा हो गया, अब आप के उल्लू

की क्या आवश्यकता है, आप अपना उल्लू ले जाइये।" अब तो सेठजी ने इसको एक पिंजड़े में रख अपनी दुकान के सामने टाँग दिया और जो कोई ग्राहक आकर कहता था—'सेठजी, हरदी, है?" तो सेठजी कहते थे कि—"हरदी है, मिरच है, धनिया है, उल्लू है।" कोई पूछे जी लाची है?" तो जवाब देते-"लौंग है, मिर्च है, लाची है, उल्लू है।" गरज़ जो कोई कुछ पूछे तो दो एक और चीजों के नाम ले पीछे कह दिया करते थे "उल्लू है।"

यावत् प्रीतिर्भवत लोके यावत् स्वार्थं सु सिद्ध्यति।
वत्सः क्षीरमयं दृष्ट्वा परित्यजति मातरम्॥

———

१२९—दो ब्याह करनेवाले की दुर्दशा

एक सेठ के घर में एक चोर चोरी करने के निमित्त बैठा, परन्तु उस सेठ के पास दो औरतें थीं और उसका घर दुखण्डा बना हुआ था, एक औरत नीचे सोती थी और एक ऊपर सो रही थी। परन्तु नीचे से ऊपर जाने के लिए पास ही एक खिड़की थी, सेठ नीचे सोते थे। जब रात को नीचे से उठ कर ऊपर जाने लगे तो नीचे की औरत ने तो उनके पैर पकड़ लिए और ऊपरवाली ने चोटी पकड़ ली और दोनों अपनी अपनी ओर खींचने लगीं, स्त्रियें रात भर खींचती रहीं चोर रात भर तमाशा देखते रहे। प्रतःकाल चोर पकड़ लिये गये और सेठजी उनको राजा के पास ले गये। राजा ने कहा—"चोरों को क्या सजा होनी चाहिये?" सेठजी ने कहा कि—"इनके दो ब्याह कर दो।" चोर बोले—"हुजूर, चाहे हमें

फाँसी दे दी जाय, पर दो ब्याह न किये जाँय।" राजा ने कहा-"क्यों ?" चोरों ने कहा—"सेठ से पूछ लीजिये।"

१३०—रण्डीबाज़ को उपदेश

एक रण्डीबाज़ ने एक बार कुछ रुपया एक रण्डी के यहाँ रक्खा। उसने खर्च कर डाला। रण्डीबाज़ रण्डी से माँग रहा था और रण्डी कहती थी कि मेरे पास रुपया कहाँ ?" तब तक एक भले आदमी पहुँच गये और उस रण्डीबाज़ से बोले कि—"भाई, तुमने कभी इसके नाम से नहीं विचारा ? अरे भइया, जोड़नेवाली तो जोड़ू हुआ करती है और जोड़ू हीं जोड़ा करती है, यह तो है आसना। अफ़सोस आप "आसना से आस रखते हैं।"

वेश्यासो मननज्वला रूपमेन्धन समेधिना।
कामिभिर्यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च॥

१३१—चार श्रोता

एक पंडितजी ने एक बार एक दृष्टान्त दिया कि श्रोता चार प्रकार के हुआ करते हैं एक गपुआ, दूसरे तकुआ, तीसरे लखुआ, चौथे भकुआ। पंडितजी बोले कि गपुआ श्रोता वे कहलाते हैं जो कथा में गप्पें लगावें, और तकुआ वेजो यह ताके रहते हैं कि अब के अच्छी वार्ता आवे तो सुनें और लखुआ वे जो अर्थ लखा करते हैं, ओर भकुआ वे जो कथा में सो रहा करते हैं। एक कवि का वाक्य है—

अप्रतिबुद्धे श्रोतरि वक्तुर्वाक्यं प्रयाति वैफल्यम् ।
नयनविहीने भर्त्तरि लावण्यं विमेह खञ्जनीवाणाम् ॥

———

१३२—जिसको एक बार नियत बगिस्ता देखे उसके पास दुवारा न खड़ा हो

एक बेर ठगावे सो बावन वीर कहावे ।
बेर बेर ठगावे सो गप्पूनाथ कहावे ॥

एक कुएँ में बहुत से मेंढक, एक गोह और साँप रहा करते थे। मेंढकों के प्रधान का नाम था गंगदत्त और साँप का प्रियदर्शन तथा गोह का भद्रा। प्रियदर्शन और गंगदत्त में अज़हद दोस्ती थी, लेकिन प्रियदर्शन उन कुओं के मेंढकों में से एक मेंढक रोज़ खा लिया करता था। होते-होते उस कुएँ के सब मेंढक प्रियदर्शन ने खा लिये और एक दिन समय ऐसा आया कि प्रियदर्शन के खाने को कुछ न रहा। प्रियदर्शन ने सोचा कि हो न हो तो आज गंगदत्त ही को अपने खाने के काम में लाऊँ। आप जानते हैं कि मन को मन समझ जाता है, गंगदत्त ने समझ लिया कि इसने हमारे सब भाइयों को तो खा ही डाला और लाखदर्जे आज मुझ पर हाथ साफ़ करने का विचार किया होगा। अतः गंगदत्त कुएँ में गश्त लगाकर ज्योंही प्रियदर्शन के पास पहुँचे तो बोले—"मित्र, आज हमें एक बात का बड़ा अफ़सोस है कि हमारे सब भाई तो निपट गये और अब केवल हम ही रह गये हैं सो यदि आप आज हमको भी खा लेंगे तो कल से आप क्या खाँयगे? इसलिए यदि आप एक बात करें तो आप

को बहुत दिन को खाने का प्रबन्ध हो जाय।" प्रियदर्शन ने कहा—"वह क्या ?" गंगदत्त बोला कि—"बाहर एक तालाब में मेरे बहुत से भाई रहते हैं सो यदि आप भद्रा को आज्ञा दें तो वह अपनी पीठ पर चढ़ाकर मुझ बाहर उतार आवे और मैं उस ताल के सब मेंढकों को लिवा लाऊँ।" ऐसा ही हुआ। प्रियदर्शन ने फ़ौरन ही भद्रा को आज्ञा दे दी कि—"तुम गंगदत्त को अपनी पीठ पर चढ़ाकर बाहर उतार आओ।" भद्रा ने पीठ पर चढ़ा गङ्गदत्त को बाहर उतार दिया। उस समय गंगदत्त बोला कि—

विभुक्षितः किन्न करोति पापं क्षीणा जनाः निष्करुणा भवन्ति ॥
त्वं गच्छ भद्रे प्रियदर्शनाय न गंगदत्तः पुनरेपि कूपम् ॥

अर्थ—भूखा क्या पाप नहीं करता उस क्षीण पुरुष में दया कहाँ? सो हे भद्रे! तुम तो प्रियदर्शन के पास जाओ, अब गंगदत्त फिर कुएँ में न जायँगे।

नोट- इन दृष्टान्तों को देख कहीं आप लोग यह कुतर्क न उठाने लगें कि साँप और गोह और मेंढक भी कहीं बोला करते हैं? नहीं, वास्तव में यह केवल मनुष्यों के समझाने के लिये साँप, गोह, मेंढकों के नाम ले ले अलंकार बाँध कहे गये हैं। इसलिये कोई दोष नहीं। यदि मैं लिखता कि यह सच्चा वाक़या है तो बेशक झूँठा था।

१२१—जिसका परमेश्वर बचानेवाला है उसको कोई नहीं मार सकता

एक वृक्ष के ऊपर एक कबूतरी और कबूतर बैठे हुये थे। इतने में एक बहेलिया धनुष वाण लिये हुये शिकार को पहुँचा और इस कबूतरी और कबूतर को बैठा देख अपना धनुष वाण चढ़ा इसकी ओर पूरा निशाना लगा दिया। इतने में ऊपर की ओर एक उड़ता हुआ बाज कहीं से आ रहा था, उसने भी अपनी घात लगाई कि इस पर धावा करना चाहिये। यह दशा देख—

कान्तं वक्ति कपोतिका कुलतया नाथान्तकालोऽधुना।
व्याधोऽधाधृतचापसन्धितशरा शेनस्तु खे दृश्यते ॥
एवं सत्यऽहिना सदष्ट इषुना शेनातु तेना हथा।
तूर्णं तौ तु गतौ यमालय महो दैवी विचित्रा:गतिः ॥

अर्थ—अपने पति से कबूतरी व्याकुल होकर बोली कि हे नाथ, काल सिर पर आ गया। देखो नीचे दुष्ट बहेलिया धनुष वाण चढ़ाये पूरा-पूरा निशाना लगाये हुये ऊपर की ओर ताक रहा है और धनुष से वाण छोड़ने ही वाला है और ऊपर की ओर देखो वह बाज जो उड़ रहा है वह भी पूरी-पूरी घात लगाये हुये है यहाँ तक कि झप्पा मारने ही वाला है। परन्तु होता क्या है कि बहेलिये ने ज्योंही अपना वाण छोड़ना चाहा, त्योंही उसके पैर में एक सर्प चिपट गया और उसने बहेलिये को काट खाया जिससे उसका निशाना तिरछा हो गया और उसका वाण ऊपर वाले बाज के लगा जो कबूतर कबूतरी

पर झप्पा मारने के लिये समीप आ रहा था । बस बाज तो ऊपर मरा और बहेलिया नीचे मर गया ।

परमेश्वर तेरी महिमा धन्य है !

११४-विना परीक्षा कोई काम न करना चाहिये

एक ब्राह्मणी ने एक न्योरा पाल रक्खा था जिसको वह बड़े प्यार से रखती थी । नित्य प्रति अच्छी से अच्छी वस्तुयें उसे खिलाया करती थी । एक दिन ब्राह्मणी अपने छै मास के नन्हें बालक को एक खटोले पर लिटाकर गंगा-जल भरने चली गई । न्योला लड़के के खटोले के पास बैठा था कि इतने में एक सर्प उस लड़के के काटने के निमित्त आया । न्योले ने सर्प को कुछ तो खा लिया और कुछ तोड़ फोड़ वहीं रख दिया । अब न्योला यह अपना कर्त्तव्य ब्राह्मणी को जताने के लिये उसके पास को चला । न्योला मार्ग में ब्राह्मणी को मिला । ब्राह्मणी ने उसके मुँह में खून भरा हुआ देख ख्याल किया कि यह मेरे पुत्र को काटकर आया है । यह ख्याल करते ही उसको क्रोध आ गया और उसने न्योले को वहीं मार डाला । पश्चात् जिस समय ब्राह्मणी अपने स्थान पर पहुँची तो क्या देखती है कि मेरा बालक आनन्द से चारपाई पर खेल रहा है और उस बालक के खटोले के पास ही एक सर्प खुतरा हुआ पड़ा है । ब्राह्मणी ने जान लिया कि यह सर्प मेरे लड़के को काटने आया था और न्योला इसे तोड़ फोड़ मुझे यह दिखाने गया था कि

देख तेरे लड़के को सर्प काटने आया था, उसे मैं तोड़ फोड़ के रख आया हूं। पुनः ब्राह्मणी को यहाँ तक पश्चाताप हुआ कि जब ऐसा अपना हितैषी न्योला मर गया तो अब प्राण रखने से क्या? इसीलिये कहा है कि—

अपरीक्षित न कर्त्तव्या, कर्त्तव्यं सु परीक्षितम्।
पश्चात्भवति संतापो, ब्राह्मण्यां नकुलार्थतः॥

अर्थ—विना परीक्षा किये कभी कोई काम न करना चाहिये, बल्कि हर काम को भली भाँति परीक्षा कर करना चाहिये, नहीं तो इसी प्रकार का पश्चाताप प्राप्त होगा जैसा कि न्योला मारने से ब्राह्मणी को हुआ।

१२५—विना बुद्धि के विद्या निष्फल है

एक जंगल में एक महाबलवान् सिंह रहता था और सिंह जंगल के जानवरों में बड़ा उपद्रव किया करता था, यहाँ तक कि खाता तो एक ही आध जानवर था और तोड़-फोड़ दस पाँच को डालता था। अतः जंगल के सम्पूर्ण जानवरों ने सम्मति की कि हम तुम सब मिलकर वनराज के पास चल कर यह प्रार्थना करें कि ऐसा करने से आपको क्या फल कि आप खावें तो एक और मारें दस को। इस प्रकार हम सब बहुत जल्द निबट जाँयगे, इसलिये अगर आपकी राय हो तो हम लोग अपनी-अपनी ओसरी बाँध लें और एक रोज़ आपके पास चला आया करे। इस भाँति हम सब भी कुछ दिन जीवित रहेंगे और आपको भोजन भी बहुत दिन तक मिलता रहेगा। सिंह ने जानवरों की यह राय स्वीकार कर ली और ऐसा ही होने लगा, यानी उन जानवरों में से एक रोज़ चला जाता था

और सिंह अपनी तृप्ति कर लिया करता था। एक दिन एक खरगोश की बारी आई और यह खरहा सिंह के पास बहुत विलम्ब से पहुंचा। सिंह बड़ा ही क्षुधित और गुस्से से जला भुंजा बैठा था। ज्योंही उसके सामने खरहा पहुंचा तो तड़प के बोला कि—"क्यों रे दुष्ट, तू इतनी देर तक कहाँ रहा?" खरहे ने उत्तर दिया—"महाराज मैं तो आपकी सेवा में बड़े सबेरे आता था लेकिन मुझे दूसरा सिंह मिल गया और वह बोला—"क्यों रे खरहे, तू कहाँ जाता है?" मैंने कहा-"कि उस वनमें जो हमारा बनराज रहता है, मैं उसके पास जाता हूँ।" तब तो सिंह ने कहा कि—"चल, उस सिंह को दिखला कि वह कहाँ है?" खरहे ने थोड़ी दूर ले जाकर सिंह को एक कुआँ बतलाकर कहा कि इसमें है। सिंह ने ज्योंही तड़प कर कुएँ में आवज़ लगाई कि कुएँ में से भी आवाज़ आई। सिंह को यह निश्चय हो गया कि इसके भीतर सिंह अवश्य है। बस यह समझ सिंह कुएँ में कूद पड़ा और खरहे ने अपनी राह ली। सच—

वरं बुद्धि न सा विद्या, विद्यायां बुद्धिरुत्तमम्।
बुद्धि विद्या विनश्यैव, यथाते सिंह कारका॥

१३६—भेषधारी

एक बिल्ली बड़ी ही दुष्ट और रात-दिन चूहे तोड़ा करती थी, इस कारण इससे चूहे भी होशियार हो गये थे और इसके सामने कभी कोई चूहा बिल के बाहर नहीं निकलता था। जब बिल्ली ने देखा कि अब मेरा गप्फा नहीं जमता तो उसने यह आडम्बर रचा कि कुछ दिन उसने चूहा तोड़ना छोड़ दिया और इधर-उधर से लोगों के घरों में जा कहीं दूध, कहीं

रोटी, कहीं कुछ, कहीं कुछ उठाकर खाया करती थी। कुछ दिन के बाद बिल्ली एक घड़े का घेरा अपने गले में पहिर चूहों के पास आकर बोली—"मैं केदारनाथ को गई थी, सो यह केदार कंकण पहिर आई हूँ और वहाँ रहकर मैंने बड़ा तप किया और यह प्रतिज्ञा की कि मैं कभी 'हिंसा' न करूँगी और न कभी किसी जीव को सताऊँगी सो अब तुम हमसे बे फिक्र रहो, मैं अब तुमको नहीं सताऊँगी।" चूहे यह सुन बेखटके हो गये और अब सब चूहे बिल्ली के सामने निकलने लगे, परन्तु बिल्ली जिस समय सब चूहे आते थे तो चुपचाप सीधी सादी खड़ी रहती थी और जब चूहे निकल जाते थे तो पीछे से एक उड़ा लिया करती थी। एक दिन चूहों ने अंतरङ्ग की कि—"क्यों भाई, यह बिल्ली तो तीर्थ वासिनी और तपस्विनी है तथा केदार कंकण भी पहिरे हुये है, पर हम लोगों की तादाद नित्य कम होती जाती है, इससे आज एक काम करो कि आज कल क़ौमी तरक़्क़ी के लिए हर क़ौमों के बड़े-बड़े लोग अपनी २ कुर्बानी कर रहे हैं, सो (उन चूहों में से एक बाणा चूहा था) बाणे चूहे से कहा गया कि आज जिस समय हम लोग बिल्ली के सामने से चलने लगें तो पीछे आप रह जाँय ताकि पता लग जाय कि बिल्ली हम लोगों को खाती है या नहीं ?" बाणे ने स्वीकार कर लिया और ऐसा ही हुआ। जब बिल्ली के सामने से सब चूहे चले गये और बाणेराम पीछे रह गये तो बाणे को बिल्ली शीघ्र ही निगल गई। पुनः दूसरे दिन बिल्ली के सामने आते ही चूहे बोले—

केदार कंकणं कण्ठ तीर्थवासी महत्तरः।
सास्य पथ्य शतं हन्ति बण्ड पुच्छं न दृश्यते॥

कि तू कण्ठ में ता केदार कंकण पहिरे है और तीर्थ-वासनी तथा महा तपस्विनी भी है, पर हम सब एक हज़ार थे उनमें से तू ने १०० उड़ा लिये और उसका प्रमाण यह है कि आज बणऊँ नज़र नहीं आते।

११७—जो जिसके पास रहता है वही उसके गुण दोष जानता है

एक बार महाराज रामचन्द्र तथा लक्ष्मणजी दोनों चले जा रहे थे। महात्मा रामचन्द्रजी पम्पासर तालाब को देख बोले कि—

पश्य लक्ष्मण पंपायां, बकः परम धार्मिकः।
मन्दं मन्दं पदं धत्ते, जीवानां वधशंकया॥

अर्थ—हे लक्ष्मण! इस पम्पासर तालाब को देखो। इसमें यह बगुला कैसा धार्मिक है देखिये कैसे धीरे-धीरे टपा-टपा पैर रखता है कि कहीं कोई जीव न मर जाय। यह सुन मछली बोली कि—

बकः किं वर्ण्यते राम, तेनाहं निष्कुली कृतः।
सहवासी विजानीयात्, चरित्रं सहवासिनां॥

अर्थ—हे राम! बगुले की आप क्या प्रशंसा करते हो, इसने तो हमें निर्वंशी कर दिया। भगवन्! आप क्या जानें, जो जिसके पास रहता है वह उसके गुण अच्छी तरह जानता है। महाराज, इस बगुले को हम अच्छी तरह जानती हैं।

१३८—डपोल संख

एक बार एक ब्राह्मण घर से धन की खोज में निकले। परन्तु चारों ओर संसार पर्यटन कर आये, पर कहीं धन का ठीक न लगा। अनायास एक महात्मा से इनकी मुलाक़ात हो गई और इन्होंने दण्डप्रणाम के बाद अपनीसारी व्यवस्था कह सुनाई। महात्मा ने ब्राह्मण को विशेष दुःखी देख इन्हें एक इस प्रकार की काञ्चनीमुद्रा दी, जो रोज़ एक अशरफ़ी दिया करती थी और पण्डितजी से कहा—"अब आप इसे ले जाइये, यह नित्य एक अशरफ़ी आपको दिया करेगी, जिससे आपका दुःख दूर हो जायगा।" ब्राह्मण उस काञ्चनीमुद्रा को लेकर चल दिये परन्तु उनके दिल में पूर्ण रूप से यह विश्वास न था कि यह काञ्चनीमुद्रा रोज़ एक अशरफ़ी देगी, इसलिए चित्त में यह लगी थी कि कहीं उतरें और स्नान पूजन करके इससे अशरफ़ी माँगे, फिर भला देखें कि यह देती है या नहीं? ब्रह्मदेव ने ऐसा ही किया। मार्ग में एक गाँव मिला जहाँ एक शिवालय और कुँवा बड़ा अच्छा बना था और पासमेंही बनिये की दुकान थी। यह देख ब्रह्मदेवजी शिवाले में उतर पड़े और कुँए पर स्नान कर शिवाले में पूजन करने लगे। वहीं पास की दूकान वाला बनिया भी बैठा था। ब्रह्मदेव ने पूजा कर उस काञ्चनी मुद्रा से कहा—"या काञ्चनीमुद्रा महाराणी। अब एक अशरफ़ी दीजिये।" यह सुनते ही काञ्चनीमुद्रा ने एक अशरफ़ी दे दी। बनिया देखकर दंग हो गया और मन में सोचने लगा कि हम दिन भर मेहनत करते हैं जब बमुशिकल तमाम दो आने पैसे पैदा होते हैं और यह काञ्चनीमुद्रा तो बहुत ही अच्छी है कि विना मेहनत एक अशरफ़ी दिया करती है। यह समझ बनिये ने ठान ली कि ब्रह्मदेव की यह काञ्चनीमुद्रा किसी

प्रकार लेनी चाहिये। अतः दोपहरके बाद जब ब्रह्मदेवजी वहाँ से चलने लगे तो उस बनिये ने ब्रह्मदेवजी से बहुत कुछ लल्लो चप्पो की कि—"महाराज, अभी धूप है और दिन थोड़ा है, कहाँ कुकुर बसेर करते फिरोगे और यह तो आपका घर है, आप हमारे पूज्य हैं, आपकी सेवा करना हमारा धर्म है. भला आप लोगों की सेवा हमें कहाँ मिल सकती है, आपको यहा कोई तकलीफ़ न होने पावेगी, अतएव आप प्रतःकाल उठ कर चले जाइयेगा।" यह सुन उन्हें, आख़िर ब्राह्मण ही ठहरे, दया आ गई और ब्रह्मदेवजी ठहर गये। बनिये ने ब्रह्मदेव की बड़ी सेबा की और जब रात को वे सोगये तो सेठजी ने उनकी काञ्चनी मुद्रा तो निकाल ली और उसकी जगह एक दूसरी बटिया रख दी। ब्रह्मदेवजी प्रातःकाल उठकर चल पड़े, लेकिन इनके मन में अभी यह शंका लगी थी कि काञ्चनी मुद्रा ऐसा न हो कि एक ही दिन अशरफ़ी दे कर रह जाय और दूसरे दिन न दे, सो नहा डालें और पूजा करके अशरफ़ी माँगें, देखें यह रोज़ की अशरफ़ी देने वाली है या नहीं? अतः ब्रह्मदेव नदी में स्नान कर और पूजा कर बोले कि—"या काञ्चनी मुद्रा, ले अब एक अशरफ़ी दीजिये।" परन्तु अब वहाँ दे कौन? काञ्चनी मुद्रा जो थी वह तो सेठ के पास गई, उसके स्थान में एक पत्थर की बटिया थी, भला वह अशरफ़ी कब दे सकती थी। जब काञ्चनी मुद्रा ने उस रोज़ अशरफ़ी न दी तो ब्रह्मदेव ने समझा कि महात्मा जी ने हमारे साथ बड़ा धोखा किया। कहा था कि यह काञ्चनी मुद्रा तुम को रोज़ एक अशरफ़ी देगी, सो यह एक ही दिन देकर रह गई। यह सोच ब्राह्मण फिर महात्मा के पास पहुंचा और महात्मा से हाथ जोड़ बोला कि—"महाराज, आपने हमको बड़ा धोखा दिया। आप कहते थे कि यह काञ्चनी मुद्रा आप-

को रोज़ एक अशरफ़ी देगी, सो महाराज इसने तो सिर्फ एक ही दिन अशरफ़ी दी, दूसरे दिन इससे हम बहुत कुछ माँगते रहे पर इसने अशरफ़ी न दी।" महात्मा यह सुनकर हैरान हो गये और सोचने लगे कि कारण क्या है जो ऐसा हुआ। पुनः महात्मा ने ब्राह्मण से पूछा—"तुम कहीं रास्ते में भी ठहरे थे ?" ब्राह्मण ने सारा मार्ग का किस्सा महात्मा को कह सुनाया महात्मा ने सब रहस्य जान लिया और ब्राह्मण को एक संख दिया और कहा कि इसे ले जाओ और जहाँ जिस शिवाले पर उस दफे ठहरे थे वहीं फिर ठहरना और वैसे ही पूजा करना और इस संख से अशरफ़ी माँगना और रात को उस बनिये के यहाँ ठहर जाना। यह संख तुमको वह काञ्चनीमुद्रा जो बनिये ने तुम्हारी बदल ली है दिला देगा और फिर तुम जब काञ्चनी मुद्रा पा जाना तो सिवा घर के और कहीं न ठहरना।" ब्राह्मण ने वैसा ही किया। चलते २ उसी शिवाले पर आकर ठहरा और कूँए पर स्नान कर ब्राह्मण पूजा करने लगा और फिर वही बनिया ब्राह्मण के पास आकर बैठ गया और पूजा देखने लगा। ब्राह्मण पूजा कर संख से बोला—"संख महाराज, अब दो अशरफ़ी दीजिये।" संख बोला—"कल चार इकट्ठी दो रोज़ की दे दूँगा।" पुनः जब ब्रह्मदेव चलने लगे तो बनिये ने अपने मन में सोचा कि काञ्चनीमुद्रा तो एक ही अशरफ़ी रोज़ देती है यह तो दो रोज़ देता है, इस कारण ब्राह्मण को रखना चाहिये। अतः बनिये ने ब्राह्मण की खुशामद दरामद कर फिर रख लिया और उसकी बड़ी सेवा की। जब रात को ब्राह्मण सो गया तो सेठ ने पहिले की काञ्चनीमुद्रा तो उसके पास रख दी और संख उठा लिया। अब प्रातःकाल ब्राह्मण तो काञ्चनीमुद्रा ले रवाना हुआ, रहे सेठ सो नहा धो जब संखजी से बोले कि—"संखजी कल चार देने कहते थे, अब

आज चार दीजिये ।" संखजी बोले—'कल आठ।" जब दूसरे दिन सेठ ने कहा-'महाराज संखजी, अब आज आठ दीजिये।" तब संखजी ने कहा—"कल सोलह।" जब तीसरे दिन सेठ ने कहा कि—"संखजी अब आज १६ दीजिये।" तो संखजी बोले कि—

जालाट काञ्चनी मुद्रा सा गता पद्मसंखिनी ।
अहं डपोलसंखस्य न ददामि वदाम्यहम् ॥

अर्थ—जो वह काञ्चनीमुद्रा पद्म और संखों की देनेवाली थी सो तो गई; और मैं तो डपोलसंख हूँ, कहता जाऊँगा, पर दूँगा एक कौड़ी नहीं।

१२१—अनधिकार चेष्टा

एक जंगल में एक बार दो बढ़ई एक शीशम की सिल्ली चीर रहे थे। बढ़ई प्रायः जब लकड़ी चीरा करते हैं तो आरे के कुछ आगे एक छोटा काष्ठ का खूँटा सा ठोंक दिया करते हैं जिसको खटखिल्ली कहते हैं। दोपहर को लकड़ी चीरना बन्द कर बढ़ई रोटी खाने चले गये। शीशम की सिल्लीमें खटकिल्ली ठुकी हुई थी जिससे कि सिल्ली फटी हुई थी। इतने में एक बन्दर सिल्ली पर आगे की ओर आकर बैठ गया।

बन्दर के अण्डकोश सिली की दराज़ के भीतर हो गये और वह उस खटकिल्ली को पकड़कर हिलाने लगा, इसलिये खट-किल्ली बाहर निकल पड़ी और सिल्ली के दोनों पल्ले जो फटे थे परस्पर मिल गये, अतः बन्दर के अण्डकोश जो उस सिल्ली के दराज़ के भीतर थे दब गये जिससे कि बन्दर उसी समय मर गया सच कहा है कि—

अव्यापारेषु व्यापारं यो जनःकर्त्तुमिच्छति ।
सखलु निधनं याति कीलोत्पाटीव वानरः ॥

अर्थ—जो मनुष्य अनधिकारी हो उस काम करने की इच्छा करता है उसकी यही दशा होती है जैसे जङ्गल की सिल्ली से कील उखाड़ने में बन्दर की हुई ।

१४०—जिसकी बुद्धि आपत्ति आने पर ठीक रहती है वह बड़े बड़े दुःखों से तर जाता है

एक बन्दर एक बार एक दरिया में तैर रहा था कि इतने में उस दरिया के रहनेवाले घड़ियाल ने इसकी टाँग पकड़ ली तब तो दूसरा बन्दर जोकि दरिया के किनारे बैठा था इस बन्दर को पैरने से ठहरा हुआ देख बोला कि—"क्या हुआ, क्यों रुक गया ?" बन्दर ने जवाब दिया कि—'क्या बतावें, एक घड़ियाल ने एक लकड़ी को अपने मुँह में दबाये समझ रक्खा है कि मैंने बन्दर की टाँग पकड़ ली ।' यह सुन घड़ियाल ने बन्दर की टाँग छोड़ दी । सच है—

उत्पन्नेषु विपत्तेषु, बुद्धिर्यस्य न हीयते ।
स एव दुर्गं तरति, जलस्थो वानरो यथा ॥

अर्थ—आपत्ति के उत्पन्न होने पर भी जिसकी बुद्धि नहीं बिगड़ती वह बड़ी बड़ी कठिनाइयों से तरता है जैसे कि दरिया से बन्दर तर आया ।

१४१—टके टके की चार बातें

एक बादशाह शिकार खेलने गया। लौटते समय देर हो जाने के कारण एक स्थान पर ठहर गया। थोड़ी देर में क्या देखता है कि एक बान बटनेवाले का बान उरझ गया है। उस बानवाले ने अपनी स्त्री से कहा कि—"अगर यह मेरा बान तू सुरझा दे तो मैं तुझे टके-टके की चार बातें सुनाऊँ।" स्त्री ने बान सुरझा कर कहा कि—"अब आप वे चार बातें सुनाइये।" पुरुष ने कहा कि—"पहिली एक टके की बात तो यह है कि अपना काम किसी दूसरे के भरोसे न छोड़े और दूसरी बात यह है कि अपनी स्त्री को कभी मायके में न रक्खे तीसरी बात यह है कि कमीने की नौकरी न करे और चौथी बात यह है कि अपनी धरोहर कभी दूसरे के पास छिपा कर न रक्खे। इन चारों बातों को बादशाह ने ध्यान से सुनकर मन में सङ्कल्प किया कि इन चारों बातों की परीक्षा अवश्य करनी चाहिये। यह सोच आते ही अपने राज्य का सम्पूर्ण काम मंत्री आदि के सपुर्द किया और कह दिया कि—"अब छै मास तक मैं राज्य का काम बिलकुल न करूँगा, यहाँ तक कि मैं हस्ताक्षर भी न करूँगा।" यह कह कर बादशाह महल में रहने लगा। परन्तु बादशाह की बीवी बादशाह की ससुराल में ही थी, इस लिये बादशाह ने सोचा कि अपनी ससुराल चल स्त्री का भेद देखना चाहिये कि मायके में रहने से क्या हानि होती है? ऐसा विचार बादशाह ने एक हज़ार अशरफ़ी नक़द और एक लाल अपनी जाँघ के अन्दर रख भेष बदल ससुराल का मार्ग लिया। वहाँ पर पहुंच कर सराय में जा ठहरा और अपनी एक हज़ार अशरफ़ी चुपके से मठियारिन के पास रख दीं और उस

से कहा कि आवश्यकता पड़ने पर मैं तुमसे ले लूँगा और आप एक महान् दीन का भेष बना यानी केवल एक लँगोटी लगा मैली देह ले शहर के कोतवाल के पास जाकर हुक्का भरने में केवल रोटियों ही पर नौकरी कर ली। उस कोतवाल के पास बादशाह की स्त्री (जिसने कि हुक्का भरने में नौकरी की थी) आया जाया करती थी। एक रोज़ का वृत्तान्त है कि दोनों यानी वह औरत और कोतवाल एक ही चारपाई पर लेटे हुये थे। इतने में कोतवालने उस हुक्केवाले सेकहा-"अबे हुक्केवाले,ज़रा हुक्का भर कर रख जा" और यह हुक्का भरकर रखने गया कि बादशाह की स्त्री इसकी सूरत देखकर समझ गई कि हो न हो यह मेरा पति बादशाह है, मेरा हाल जानने के लिये इसने ऐसा स्वाँग रचा है। अतः उस औरत ने कोतवाल से पूछा कि—"यह आदमी आपने कब से नौकर रक्खा है?" कोतवाल साहब ने उत्तर दिया कि—"इसको रक्खे हुये अभी तो दस पन्द्रह दिन हुये होंगे।" तब तो उस औरत ने कहा कि—"इसे आप मरवा डालिये।" कोतवाल ने बहुतेरा कहा—"इस बेचारे ने तुम्हारा क्या लिया है, ख़ाली रोटियों पर सारे दिन मिहनत किया करता है, यह बेचारा बोलना भी तो नहीं जानता है क्योंकि बौरा है और न कुछ सुनता ही है क्योंकि बहरा है।" परन्तु बादशाह की स्त्री के बहुत हठ करने पर कोतवाल साहब ने विवश होकर हुक्केवाले को जल्लादों के हवाले किया और जल्लादों से कह दिया कि इसे जङ्गल में मार कर डाल आओ। जल्लाद उसको लेकर जङ्गल में पहुंचे और अपने हथियार निकाल उन्होंने उसे मारने का इरादा किया। इतने में इस हुक्के भरनेवाले ने कहा कि—"आप लोग मुझ से एक हज़ार अशरफ़ियाँ ले लीजिये और मुझे छोड़ दीजिये।" बहुत वाद विवाद के पश्चात जल्लादों ने आपस में यह निश्चय कर कहा कि—

"एक हज़ार अशरफ़ियाँ लाइये, हम आपको छोड़ देंगे।" हुक्के-वाला जल्लादों को ले सराय में गया और भठियारिन से अपनी धरोहर यानी एक हज़ार अशरफियें माँगी। तब तो भठियारिन ने डाट कर कहा—"चल बे भँडुये, कल तक तो हमारे कोतवाल साहब के यहाँ रोटियों पर नौकर रहा और लँगोटी लगाये घूमता रहा, तेरे पास अशरफ़ियाँ कहाँ से आई?" तब यह बेचारा लाचार हो अपनी जाँघ से लाल निकाल जल्लादों को दे अपनी जान बचा घर आया और यहाँ से कुछ दिन के बाद अपने ससुर को पत्र लिखा कि—"फलाँ मिती को बिदा कराने आवेंगे।" यह समाचार सुन बादशाहज़ादी को ज्ञात हुआ कि हमारे बादशाह वह नहीं थे कि जिसको हमने शुभा से मरवा डाला। बादशाह ने बिदा का पत्र स्वीकार कर लिया। बादशाह नियत तिथि पर बिदा कराने पहुंच गया और दो तीन दिन बादशाह ने अपने दामाद की बड़ी ख़ातिर की, परन्तु दामाद कुछ गुम सुम सा उदासीन वृत्ति धारण किये रहा क्योंकि इसके पेट में तो और ही बात समाई हुई थी। उसके ससुर ने पूछा कि—"आप उदासीन क्यों हैं? और आपने इस दफे हम से कोई चीज़ नहीं माँगी, सो जो आपकी इच्छा हो सो माँगिये।" अपने ससुर बादशाह का विशेष आग्रह देख इस बादशाह ने कहा कि—"हमारे शहर का प्रबन्ध ठीक नहीं है, इस लिये आप अपने शहर के कोतवाल को हमारे यहाँ प्रबन्ध करने के लिए हमें दे दीजिये, दूसरे हमारे शहर की सरायों में बड़ी गड़-बड़ी मची रहती है इस लिए आप अपने यहाँ की फलाँ भठियारिन को भी दे दीजिये।" बादशाह का दामाद इन दोनों को दहेज में ले बिदा कराकर रुख़सत हुआ और कोतवाल तथा भठियारिन दोनों रस्ते में बड़े प्रसन्न होते चले जाते थे कि अब तो हमारी खूब बन आई, वहाँ जाकर सैकड़ों

हमारी मातहती में रहेंगे और हमारी बड़ी इज़्ज़त तथा तरक्की होगी। इधर बादशाह ने अपने शहर में पहुँच कर दूसरे ही रोज़ आम दरबार किया और उन बान बटनेवाले दोनों स्त्री पुरुषों को बुलवा कर पूछा कि—"फलाँ तारीख़ को फलाँ महीने में, फलाँ वक्त जब तुमने अपना बान उरझने पर अपनी स्त्री से बान सुरझा देने के एवज़ में चार टके की चार बातें बतलाई थीं वे कौन सी बातें हैं ?" यह बेचारा डर के मारे कुछ बतला नहीं सकता था। पुनः बादशाह ने उसे धीरज देकर कहा कि-"तुम घबड़ाओ नहीं, बल्कि प्रसन्नता पूर्वक अपनी बातें कहो।" बानवाले ने कहा कि—"हुज़ूर, पहली बात तो एक टके की यह थी कि अपना काम किसी के भरोसे पर न छोड़े। पुनः बादशाह ने जब अपने दफ्तर की जाँच की तो बड़ा ही उलट पुलट और बड़ी ग़लतियाँ पाईं यहाँ तक कि करोड़ों रुपिया लोग ग़बन कर गये थे। बादशाहने उन सबको उचित दण्ड दे बानवाले से कहा कि—"तुम्हारी यह बात एक टके की नहीं किन्तु एक लाख की थी।" पुनः बादशाह ने कहा कि-"आप अब अपनी दूसरी बात सुनाइये। तब तो बानवाले ने कहा कि—'हुज़ूर, दूसरी बात यह है कि अपनी स्त्री को कभी मायके में न रक्खे। तब तो बादशाह ने अपनी बेगमको दरबारे आम में बुलाकर कहा-"क्यों हरामज़ादी ! तू मायके में रह कर कोतवाल से मोहब्बत करते हुये मुझ से इतनी विरुद्ध हो गई थी कि मेरे मार डालने का हुक्म दे दिया था ?' इतना कह बादशाह ने गरम तेल कराकर उसकी मूत्रेन्द्रिय में डला कर उसे मरवा डाला। और बानवाले से कहा कि-"तुम्हारी दूसरी बात एक टके की नहीं बल्कि दो लाख रुपये की थी अब आप कृपाकर अपनी तीसरी बात सुनाइये।" बानवाला बोला कि—

'सरकार, तीसरी बात यह थी कि कमीने की नौकरी कभी न करे। यह बात सुन बादशाह ने कोतवाल साहब को बुलाकर कहा—"क्यों जी, जब मैं आपके यहाँ रोटियों पर नौकर था और हुक्का भरता था तो आपने इस हरामज़ादी के कहने पर मुझे जल्लादों के सपुर्द किस अपराध पर किया था ?" कोतवाल उत्तर ही क्या देता, अतः बादशाह ने कोतवाल साहब को भी जहन्नुम रसीद किया और बानवाले से कहा कि—"यह तुम्हारी तीसरी बात एक टके की नहीं बल्कि तीन लाख की थी और अब कृपा कर अपनी चौथी बात सुनाइये। बानवाले ने कहा—"महाराज, चौथी बात यह है कि अपनी धरोहर किसी के पास छिपाकर न रक्खे। इस बात को सुन कर बादशाह ने भठियारी को बुला कर कहा—"क्योंरी, हमने जो तेरे पास एक हज़ार अशरफ़ियाँ इस शर्त पर रक्खी थीं कि समय पड़ने पर ले लूँगा, पर जब मैं जल्लादों के साथ तेरे पास अशरफ़ियाँ माँगने गया तब तू साफ़ इनकार कर गई और ऊपर से मुझे अण्ड बण्ड बातें सुनाईं।" भठियारी हाथ जोड़ क्षमा माँगने लगी। तब बादशाह ने कहा—"उस समय तुझे मेरी जान नहीं प्यारी थी, तो इस समय मुझे तेरी जान क्यों कर प्यारी हो सकती है, अतः बादशाह ने भठियारिन को कमर तक गड़वाकर शिकारी कुत्ते उस पर छोड़ उसे नोचवा डाला और बान वाले से कहा कि—"तुम्हारी यह चौथी बात भी एक टके की नहीं बल्कि चार लाख की थी।" इस प्रकार बानवाले को १० लाख दे बिदा किया।

हारं वक्षसि केनापि दत्तमज्ञेन मर्कटः।
लेढि जिघ्रति संक्षिप्य करोत्युन्नत माननम्॥

१४२-राजा भोज का विद्या का शौक

यह बात भली भाँति प्रसिद्ध है कि राजा भोज के यहाँ जो कोई नई कविता करके ले जाता था उसको महाराज बहुत धन दिया करते थे। एक बार चार मूर्खों ने यह विचार किया कि बहुत से लोग कुछ न कुछ कविता बना जब महाराजा भोज के यहाँ से पुष्कल धन ले आते हैं तो हम तुम भी कोई कविता बनावें। सबों ने कहा, बात तो बड़ी अच्छी है। अब सबके सब कविता बनाने में प्रवृत्त हुए कि उन में से एक बोला कि—"मुनुन मुनुन रहँटा मुन्नाय।" लो हमारा तो बन गया। दूसरा बोला कि—"तेली का बैल खरी भुस खाय।" मेरा भी बन गया। तीसरा बोला—"डगर चलन्ते तरकस बन्द।" मेरा भी बन गया। चौथा बोला कि—"राजा भोज हैं मूसरचन्द।" तुम्हारा सबका बन गया तो मेरा भी बन गया।" अब तो चारों की यह सम्मति पड़ी कि यह कविता चलकर महाराज भोज को सुनावें और यह विचार कर चारों महाराज भोज की ड्योढ़ी पर पहुँचे। परन्तु महाराज भोज की ड्योढ़ी पर प्रायः महाकवि कालिदास भी रहा करते थे। इन चारों ने कालिदास से कहा कि—"हम लोग कुछ कविता बनाकर लाये हैं सो महाराज को सुनाना चाहते हैं।" परन्तु कालिदास इनकी शकल देख बोले—"क्या कविता बना लाये हो जो महाराज को सुनाना चाहते हो? प्रथम हमें तो सुनाओ।" यह सुन उन में से एक बोला कि—"मुनुन मुनुन रहँटा मुन्नाय।" कालिदास ने कहा-"तुम्हारी कविता अच्छी है।" दूसरा बोला—'तेली का बैल खरी भुस खाय।" कालिदास ने कहा—"तुम्हारी भी अच्छी है।" तीसरा बोला कि "डगर चलन्ते तरकस बन्द।" कालिदास ने कहा—"तुम्हारी भी अच्छी है।" चौथा बोला कि

"राजा भोज है मूसरचन्द।" कालिदास ने कहा कि—"तुम्हारी कविता अच्छी नहीं, इसलिए तुम ऐसा कहना कि—"राजा भोज जैसे शरद के चन्द।" चौथे मूर्ख ने मान लिया और चारों महाराज भोज के पास पहुंचे और महाराज को दण्डप्रणाम कर बोले कि—"महाराज, हम लोग आपको कुछ कविता सुनाने आये हैं।" महाराज इनकी शकल देख और इनके मुख से शब्द सुन बड़े प्रसन्न हो इनकी ओर मुखातिब हो बोले कि—"तुम लोग अपनी कविता सुनाओ।" उनमें से एक बोला कि-"मुनुन मुनुन रहँटा मुन्नाय।" महाराज ने इस विचारे की यह रुचि और साहस देख कि यद्यपि पढ़ा नहीं है पर इसकी इस ओर रुचि और इतना साहस तो हुआ जो इतने अक्षर जोड़ हमारे पास तक आया अतः महाराज ने कहा कि १००) इसे पारितोषिक दिये जायँ। दूसरा बोला कि—"तेली का बैल खरी भुस खाय।" महाराज ने इसे भी १००) रुपये की पारितोषिक की आज्ञा दी। तीसरा बोला कि—"डगर चलन्ते तरकस बन्द।" महाराज ने इसे भी १००) रुपये पारितोषिक देने की आज्ञा दी। चौथा बोला कि—" राजा भोज जैसे शरद के चंद।" राजा भोज ने यह सुन विचारा कि इसका साथ तो इन तीन मूर्खों का है और यह भी कुछ पढ़ा लिखा नहीं मालूम पड़ता है। यह शब्द कहीं से पा गया या किसी से पूछ आया है, नहीं तो ऐसे शब्द यह कभी नहीं बना सकता, अतएव राजा भोज ने कहा—"इसे एक कौड़ी भी न दी जाय।" तब यह मूर्ख बोला—"महाराज हमारा छन्द कलिदसवा ने बिगाड़ डाला।" महाराज भोज ने कहा कि—"अच्छा जो तुम बना लाये हो वह कहो।" तब वह बोला कि महाराज पहले हमारा छन्द ऐसा था कि—"राजा भोज हैं मूसरचन्द।" महाराज ने कहा कि—"अब ठीक है। अब इसे २००) पारितोषिक दिये जायँ।"

धन्य है महाराजा भोज को। अभागे भारत! तेरे वे दिन अब कहाँ गये?

१४३—पुराने काल में यज्ञ का प्रचार

जिस समय महाराज रामचन्द्र और लक्ष्मण वन को जा रहे थे और प्रयाग कुछ ही दूर रह गया था तो लक्ष्मण ने महाराज रामचन्द्र से पूछा कि—

किमयं दृश्यते तात धूमपुञ्जोयमग्रतः।
प्रयागो दृश्यते तात यजन्तेत्र महर्षयः॥

भाई जी, यह धुएँ की गुब्बारी जो आगे उठ रही है सो क्या दिखलाई पड़ता है? महात्मा राम ने उत्तर दिया कि भाई लक्ष्मण, यह प्रयाग दिखलाई पड़ता है, यहाँ महर्षि लोग यज्ञ कर रहे हैं, उसका यह धुआँ है, बल्कि प्रिय लक्ष्मण, इसका प्रयाग नाम ही इस लिए पड़ा है कि-"प्रकृष्टेन यजते यस्मिन् असौ स प्रयागः।" जिसमें प्रकृत रूप से यज्ञ हो वह प्रयाग कहलावे।

पुनः किसी कवि ने कहा है—

यदि कदाऽपि पुरा पतिता श्रुवः श्रुतिगताऽहि द्विजानचवाऽन्यथा
परमियं वसुधाऽत्र विना क्रतुं परित्रताऽश्रुजलैरिति चित्रताम्॥

पुराने जमाने में यदि कभी किसी के आँसू निकलते थे तो केवल यज्ञ के धुयें से, नहीं तो प्रजा की आँखों से कभी आँसू नहीं निकलते थे।

१४४—पूर्वकाल में हमारे यहां अधर्मी न थे

एक महात्मा को एक ब्राह्मण निमंत्रण देने गये तो महात्मा ने इन्कार किया। पुनः ब्राह्मण ने कहा कि—

नमे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी न च स्वैरिणी॥

अर्थ—महाराज! न हमारे यहाँ कोई चोर है न कोई कदर्य्य अर्थात् कंजूस, न शराबी और न अग्निहोत्र से रहित, न मूर्ख न पर स्त्री-गामी और न स्त्रियें ही पर-पुरुष-गामिनी हैं, फिर आप हमारे यहाँ भोजन करने क्यों नहीं चलेंगे? यह वाक्य सुन महात्मा ने निमंत्रण स्वीकार कर जाके भोजन किया और जाकर यह देखा कि सम्पूर्ण मनुष्यों के घरों में उनके मकानों की धन्नियाँ धुएँ से काली हो रही थीं।

—— ——

१४५—बाल विवाह

जातोवा न चिरंवत् जीवे वा दुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत्॥

एक ब्राह्मण ने अपनी कन्या का ब्याह आठ ही वर्ष में कर दिया। ब्राह्मण अपने घर का धनवान् था और कुछ पढ़ा लिखा भी था, इस कारण यह अपनी कन्या को भी पढ़ाया करता था और ब्राह्मण का समधी और दामाद दीन होने के कारण कलकत्ता में नौकर थे। ब्राह्मण का दामाद बड़ा ही छैल और ग़रीब

गुण्डा तथा उजड्ड भी था। अपने बाप को बिल्कुल नहीं दबता था। ब्याह होने के बाद सोलह वर्ष मुतवातिर यह परदेश में रहा और ब्राह्मण की कन्या यहाँ पढ़ लिखकर बहुत कुछ योग्य हो गई। सोलह वर्ष के बाद जब ब्राह्मण का दामाद आया तो ब्राह्मण ने इसकी बड़ी ख़ातिर की। जब रात का समय आया तो ब्राह्मण की लड़की से उसकी सखी सहेलियों ने कहा कि—"तुम्हारे पति आये हैं, जाकर उनकी सेवा करो।' उसने उत्तर दिया—"किसका पति ? मेरा पति वह हर्गिज़ नहीं है।' सखियों ने कहा—"क्यों, क्या तुम्हारे माँबाप ने तुम्हारा ब्याह उसके साथ नहीं किया ?' लड़की ने कहा—'तो वह मेरे माँ बाप के पति होंगे, माँबाप उनकी सेवा करें। मैंने उसके साथ कोई प्रतिज्ञा नहीं की।'' सखियों ने कहा—"तुम छोटी थीं, तुम्हें याद नहीं, तुमने छोटेपन में प्रतिज्ञा की है।''लड़की ने कहा—"जब कि मैं अपने ठीक-ठीक होशहवास में ही न थी तो प्रतिज्ञा कैसी ?'' पुनः जब ये समाचार ब्राह्मण और उसकी स्त्री को मालूम हुआ तो उन दोनों ने अपनी लड़की को बहुत समझाया और बोले—'वह बिदा कराने आये हैं, तू ऐसा कहती है !'' लड़की ने बाप से कहा कि—'तो आपही बिदा होके उसके साथ चले जाइये, क्योंकि आपने ब्याह किया और आप ही का वह पति है।' आख़िर यह मुक़दमा अदालत तक पहुँचा, वहाँ साहब मजिस्ट्रेट के पूछने पर लड़की ने कहा कि—"मेरा ब्याह मुझे मालूम भी नहीं कब हुआ और किसने प्रतिज्ञा की। अब यह न मालूम कौन कहाँ से आ गया। मेरा बाप कहता है कि तुम इसके साथ जाओ, मैंने तुम्हारा इसके साथ ब्याह किया है। तो मैंने बाप से कहा—जब तुमने बिवाह किया तो तुम्हीं इसके साथ बिदा हो के चले जाओ, मैंने इसके साथ कोई इक़रार नहीं किया।' आख़िर मुक़द्दमा ख़ारिज हो गया

और लड़की को हुक्म हुआ कि तुम अपना ब्याह अपनी मर्ज़ी के मुआफ़िक कर सकती हो।

— —— —

१४६—पूर्व स्त्रियों की विद्या और योग्यता

पूर्व स्त्रियों की विद्या और योग्यता के ग्रन्थ के ग्रन्थ भरे हुए हैं और ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो भारत की देवी गार्गी मैत्रेयी, कात्यायनी, सुलभा आदि की ब्रह्मविद्या तथा कैकेई, दुर्गावती, ताराबाई, संयोगिता, लक्ष्मीबाई की वीरता, पद्मावती सीता आदि का सतीत्व न जानता हो। परन्तु हमें तो दिखलाना यह है कि अभी गये गुज़रे समय में आपके यहाँ एक एक स्त्री इतनी योग्य और विदुषी होती थी कि जिसके लिए मैं आप के सामने महारानी विद्योत्तमा का चरित्र उपस्थित करता हूँ।

विद्योत्तमा एक बड़ी ही सुयोग्य और विदुषी कन्या थी। उसने एक विद्या का संग्रामरूपी यज्ञ रच रक्खा था अर्थात् संसार भर में यह विज्ञापन दे रक्खा था कि जो कोई मुझे शास्त्रार्थ में आकर जीत ले उसीके साथ मैं अपना ब्याह करूँगी रूप में भी एक ही रूपवती थी, इस कारण बड़े बड़े विद्वानों ने आ आकर इसके साथ शास्त्रार्थ किये, परन्तु वे संग्राम में पराजित हो अपना सा मुँह ले-ले चले गये विद्योत्तमा इस शोक में थी कि क्या संसार में मुझे कोई वर न मिलेगा? उन परास्त पण्डितों ने यह सम्मति की कि इसका ब्याह ऐसे मूर्ख के साथ कराना चाहिये कि जो एक अक्षर भी न जानता हो। अतः वे मूर्ख की खोज करने लगे। एक जगह एक पुरुष एक वृक्ष पर जिस डाली पर बैठा था उसे ही काट रहा था। पंडितों ने यह दृश्य देख विचार किया कि इस से बढ़कर मूर्ख शायद

अब संसार भर में न मिलेगा, अतः विद्योत्तमा का व्याह इसी से कराना चाहिये। बस पण्डितों ने विद्योत्तमा के सामने उस मूर्ख को लाकर खड़ा कर दिया और कहा—"आप इससे शास्त्रार्थ कीजिये।" विद्योत्तमा ने एक अँगुली उठाई जिसके माने यह थे कि ब्रह्म एक है या दो? पण्डितों ने इसे समझाया कि यह कहती है कि मैं तेरी एक आँख यह अँगुली घुसेड़ कर फोड़ दूँगी। तब तो वह दो अँगुली उठा मन में बोला कि अगर तू मेरी एक आँख फोड़ेगी तो मैं तेरी दोनों फोड़ दूँगा, जिसका अभिप्राय पण्डितों ने यह समझाया कि कहता है कि दो हैं एक जीव और एक ब्रह्म। पुनः विद्योत्तमाजी ने पाँच अँगुलियें उठाई जिसका मतलब यह था कि पाँचों इन्द्रियें तुम्हारी बस में हैं? पण्डितों ने इस मूर्ख से कहा कि कहती है कि थप्पड़ मारूँगी। इस मूर्ख ने मूठी बाँध के घूँसा उआया और मनमें बोला कि अगर तू थप्पड़ मारेगी तो मैं घूँसा मारूँगा। इसका अभिप्राय पंडितों ने विद्योत्तमा को समझाया कि कहता है पाँचों इन्द्रियाँ मेरे मूठा में हैं। आखिर विद्योत्तमा का व्याह उस मूर्ख कालिदास से हो गया। जब रात में ये दोनों स्त्री पुरुष इकट्ठे हुए तो अनायास एक ऊँट उस समय किसी का छुट कर बलबलाता जा रहा था। मूर्ख कालिदास बोला कि उट्ठ उट्ठ उट्ठ। यह सुन विद्योत्तमा ने समझ लिया कि यह मूर्ख है। महाराणी विद्योत्तमा ने उस भेंड़ों के चरानेवाले गड़रिये मूर्ख कालिदास को इस प्रकार पढ़ाया कि वही कालिदास रघुबंश और मेघदूत सरीखे काव्यों का रचयिता हुआ और संसारमें उसने महाकविकी उपाधि प्राप्ति की। यह सब उसकी स्त्री का ही प्रताप था। एक भाषा कवि का वाक्य है कि—

दमयन्ति सीता गार्गी लीलावती विद्याधरी।

विद्योत्तमा मन्दालसा थीं शास्त्रशिक्षा से भरीं ॥
ऐसी विदुषी स्त्रियें भारत कि भूषण हो गईं।
धर्मव्रत छोड़ा नहीं गो जान अपनी खो गईं ॥

१४७–अन्धेर नगरी अनबूझ राजा

एक ग्राम बड़ा ही रमणीक और सुन्दर था। वहाँ प्रायः सभी चीज़ सदैव टके सेर बिका करती थी। एक गुरु और उनके दो चेले एक बार चलते-चलते उसी गाँव में पहुँच गये। गुरु ने गाँव के लोगों से पूछा–"भाई, ग्राम का क्या नाम है?" लोगों ने कहा—"अन्धेर नगरी चौपट्ट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा।" गुरु ने कहा कि चलकर देखें कैसी अन्धेर नगरी है जहाँ सब चीज़ टके सेर ही बिकती है। जब गाँव में जा बाज़ार में पहुँचे तो अनाजवालों से पूछा—"भाईजी कितने सेर?" दूकानदार ने कहा—"टके सेर और गेहूँ टके सेर, और और चावल टके सेर और सरसों टके सेर।" पुनः हलवाइयों के पास जाकर पूछा—"अरे भाई हलवाई, बरफ़ी कितने सेर?" हलवाई ने कहा—"टके सेर और पेड़ा टके सेर और बताशा टके सेर।" पुनः बजाजों से पूछा— 'भाई बजाज, मारकीन क्या भाव?' बजाज बोला—' टके सेर, मलमल टके सेर, रेशम टके सेर।' पुनः काछियों के पास जा पूछा—"पालक क्या भाव?" काछी बोले—"टके सेर, बैंगन टके सेर।" गुरु ने यह दशा देख चेलों से कहा—"अरे भाई चेलो, सुनो—

छेदश्चंदन चूत चम्पक वने रक्षा करीर द्रुमे।
हिंसा हंस मयूर कोकिल कुले काकेषु नित्यादरः ॥

मातङ्गेन खरक्रयः समतुला कर्पूर कार्पासयो।
एषायत्र विचारणा गुणिजनो देशाय तस्मै नमः॥
सेत सेत जहँ एक मे, दधि अरु दूध, कपास।
ताहि राज्य में ना करिय, भूलि के कबहूँ वास॥

इसलिए चलो यहाँ से भाग चलें उन दोनों चेलों में से एक चेला बोला—"गुरुजी हम तो यहाँ से न जायँगे, मज़े से टके सेर मलाई ले-ले उड़ावेंगे।" गुरूजी ने कहा—"अच्छा बेटा मत चलो, पर एक बात हम कहे जाते हैं कि शायद तुम्हें कोई कभी आपत्ति आ पड़े तो हम अमुक शहर में रहेंगे, तुम हमें बुला लेना।" पुनः गुरूजी एक चेला को लेकर चले गये और यह दूसरा चेला टके सेर मलाई खा-खा खूब मोटा हुआ क्योंकि गाँव के लोग तो विचारे बहुत ही दुबले और टके सेर की बिक्री से हैरान थे, पर इन चेलाजी की तो यह दशा थी कि—

ऋन कै फिकिरि न धन कै चाट। ई धमधूसर काहे क्वाट॥

परन्तु कुछ दिन के बाद जब बरसात आई तो एक तेली की दीवार गिर पड़ी कि जिससे एक गड़ेरिये की भेड़ कुचल गयी। दीवारवाले ने राजा के यहाँ जाकर नालिश की कि—"हुजूर गडेरिये की भेड़ ने मेरी दीवाल को कुचल डाला।" राजा ने गड़ेरिये को तलब किया और पूछा-"क्योंरे गड़ेरिये, तेरी भेड़ ने तेली की दीवार को किस तरह कुचल डाला?" गड़ेरिया बोला-"हुजूर राज ने दीवार ही इस प्रकार की बनाई कि जो भेड़ ने कुचल डाला, इसलिए राज का कसूर है।" अब गड़ेरिया गया और राज आया। राजा ने उससे पूछा—"क्योंरे राज तूने तेली की दीवार किस तरह की बनाई जो दीवार को भेड़ ने कुचल

डाला और दीवार गिर गई?" राज बोला—"हुजूर, गारेवालों ने गारा ढीला कर दिया, इसलिये गारेवालों का कसूर है।" अब राज गया और गारेवाले आये। राजा ने पूछा—"क्योंरे गारेवालो, तुम लोगों ने गारा क्यों ढीला किया कि जिससे दीवार राज से कमज़ोर बनी और दीवार को भेड़ ने कुचल डाला?" गारेवालों ने कहा—"हुजूर, हम क्या करें, भिश्ती ने पानी ज़्यादा डाल दिया, इसलिए भिश्ती का कसूर है।" गारेवाले गये भिश्ती आया। राजा ने पूछा—"क्योंरे भिश्ती, तूने गारे में पानी ज़्यादा क्यों डाला जिससे गारेवालों से गारा ढीला हो गया और राज से दीवार कमज़ोर बनी कि जिससे गड़ेरिये की भेड़ ने तेली की दीवार कुचल डाली?" भिश्ती बोला—"हुजूर हम क्या करें, मशकवाले ने मशक बड़ी बना दी कि जिससे पानी ज़्यादा आ गया, इसलिए मशकवाले का कसूर है।" अब भिश्ती गया मशकवाला आया। राजा ने पूछा—"क्योंरे मशकवाले, तूने इतनी भारी मशक क्यों बनाई कि जिससे भिश्ती से पानी ज़्यादा गिर गया और गारेवालों से गारा ढीला हो गया और राज से दीवार कमज़ोर बनी कि जिससे गड़ेरिये की भेड़ ने तेली की दीवार को कुचल डाला?" मशकवाले कहा कि—"हुजूर, मैं क्या करूँ, अब को दफ़े शहर कोतवाल ने शहर की सफ़ाई अच्छी तरह नहीं कराई कि जिससे बड़े बड़े पशु मर गये और मशक बड़ी बन गई, इसलिए कोतवाल का कसूर है।" अब मशकवाला गया कोतवाल आया। राजा ने पूछा—"क्योंजी कोतवाल, तुमने इस साल शहर की सफ़ाई क्यों नहीं कराई कि जिससे बड़े-बड़े पशु मर गये और मशकवाले से मशक बड़ी बन गई और भिश्ती से पानी ज़्यादा गिर गया जिससे गारेवालों से गारा ढीला हो गया और राज से दीवार कमज़ोर बनी कि जिससे गड़ेरिये की भेड़ ने तेली की दीवार कुचल डाला?"

कोतवाल कुछ न बोला। राजा ने कोतवाल को एकदम सूली का हुक्म दिया। जब जल्लादों ने कोतवाल को ले सूली पर चढ़ाया और कोतवाल के बहुत दुबले होनेके कारण फाँसी ढील. हुई तो जल्लादों ने राजा से आकर कहा—"हुजूर, कोतवाल को ले जाकर सूली पर चढ़ाया, लेकिन सूली ढीली होती है।" यह सुन राजा ने कहा-"ओ, हमारी फाँसी मोटा माँगती है, अच्छा शहर भर में जो मोटा आदमी मिले, कोतवाल के बदले में चढ़ा दिया जाय।" यह आज्ञा पा राजदूत शहर में मोटा आदमी ढूँढने निकले, परन्तु इस नगर में मोटा आदमी कहाँ। अब तो वही गुरू के चेले जो गुरू के कहने पर नहीं गये थे और गुरू से कहा था कि हम तो यहाँ टके सेर मलाई ले लेकर उड़ायेंगे और मज़े करेंगे, राजदूतों को मिल गये। राजदूतों ने इन्हें पकड़ कहा—"चलिये, आपको राजा का फाँसी का हुक्म है।" इन्होंने कहा—"मेरा अपराध क्या?" दूतों ने कहा—"अपराध कुछ नहीं राजा की फाँसी मोटा माँगती है।" अब तो इन्होंने फौरन् ही गुरु को खबर दी। जिस दिन ये सूली पर चढ़ने लगे कि त्योंही गुरुजी आ गये। इनसे पूछा गया कि—"तुम किसी से मिलना चाहते हो?" इन्होंने कहा कि—"हम अपने गुरु से मिलना चाहते हैं।" अतः इन्हें गुरू से मिलने की इजाज़त दी गई। जब ये गुरू से मिलने गये तो गुरू ने इनसे चुपके से कह दिया कि—"तुम कहना हम फाँसी चढ़ेंगे और हम कहेंगे हम चढ़ेंगे, इस तरह तुम हम से झगड़ना तो हम फाँसी से तुम्हें बचा लेंगे।" बस ऐसा ही हुआ। वहीं फौरन् दोनों झगड़ने लगे। चेला कहता था कि मैं फाँसी चढ़ूँगा, गुरू कहता था कि मैं फाँसी चढ़ूँगा, यह झगड़ा राजा के पास गया राजा ने पूछा कि—"भाई, तुम लोग क्यों परस्पर लड़ते हो?" गुरू बोले—"हुजूर, आज ऐसा मुहूर्त है कि आज जो फाँसी पर चढ़ेगा वह

उस जन्म पृथिवी भर का राजा होगा और अन्त में मुक्ति पद प्राप्त करेगा।" तब तो राजा ने कहा—"हटाओ इनको, हमीं चढ़ेंगे।" और राजा स्वयं सूली पर चढ़ गया।

१४८—अयोग्य श्रोता

एक स्थान पर एक पण्डित बाल्मीकीय रामायण सुना रहे थे। जब रामायण समाप्त हो गई तब श्रोताओं ने कहा कि—"पण्डितजी, रामायण तो आपने सुनाई, परन्तु हम अब तक यह न समझे कि राम राक्षस थे या रावण?" तब तो पण्डित जी ने उत्तर दिया कि—"भाई, न राम राक्षस थे न रावण, राक्षस तो हम हैं जिन्होंने तुम सरीखे श्रोताओं को कथा सुनाई।"

१४९—उल्लू बसंत

एक उल्लू बसंत का बाप बहुत सी द्रव्य छोड़कर मरा था परन्तु इसने अपने उल्लूपने में अपनी द्रव्य का नाश कर दिया यहाँ तक कि इसकी स्त्री और बच्चे भूखों मरने लगे। स्त्री ने दुखी होकर कहा कि—"कुछ व्योपार किया करो, इस प्रकार कैसे पार होगी?" यह बोला—"अच्छा, आज तो आटा उधार ले आओ, कल व्योपार करूँगा।" इसी प्रकार यह नित्य किया करता था। एक दिन उसकी स्त्री बैठ रही कि अब पड़ोसी भी नहीं देते, मैं कहाँ से उधार ले आऊँ? और वास्तव में यही दशा थी, अतः उल्लूबसंत विवश हो बोला कि—"मुझे एक खुरपा ला दे तो मैं घास छील लाऊँ और उसे बेच लाऊँगा।"

स्त्री ने किसी पड़ोसी की खुरपी माँगकर ला दी। यह खुरपी ले प्रातःकाल से इधर-उधर घूमता-घामता गया और मरता हुआ १० बजे वन में पहुँचा। वहां एक स्थान पर खड़े होकर खुरपी से अपने नख काटने लगा कि इतने में एक बटोही आ निकाला और उसने कहा कि—'भैया, खुरपी से नख क्यों काटते हो? वह खुरपी तुम्हारे हाथ में कहीं लग जायगी।' यह बोला—"ऊँह ऐसे कहीं हाथ कटा करते हैं?" बटोही थोड़ी दूर गया था कि इतने में इसका हाथ कट गया और यह हाथ के कटते ही खुरपी डाल कर बटोही की ओर दौड़ा और हाथ जोड़कर उसके चरणों में गिर पड़ा और कहा कि—"महाराज, आप तो साक्षात् परमेश्वर हो।" उसने कहा—"भला क्यों?" उल्लू-बसंत बोला—"यदि आप परमेश्वर न होते तो यह कैसे आगे से जान लेते कि मेरा हाथ कट जायगा, अतएव अब आप कृपा कर हमें यह बता दें कि हम कब मरेंगे?" बटोही ने यह सुन कर समझ लिया कि यह कोई पक्का उल्लू ही है। उसने कहा कि—"जब तक तेरा डोरा नहीं टूटता तब तक तू नहीं मरेगा और जिस दिन तेरा डोरा टूट जायगा उसी दिन तेरी मौत है।" बस यह उल्लूबसंत उसी समय अपने घर आया और अपनी स्त्री से एक डोरा ले अपनी कमर में बांध समझ लिया कि जब तक यह डोरा नहीं टूटता तब तक मेरा जीवन है। पश्चात् जिस पड़ोसिन ने इस उल्लूबसंत की स्त्री को अपनी खुरपी माँगने में दी थी, वह खुरपी माँगने आई। उल्लूबसंत की स्त्री ने उल्लू-बसंत से कहा-"महाराज, वह खुरपी कहाँ है?" इसने कहा-"वह तो हम जंगल में डाल आये।" स्त्री ने कहा—"तो मैं अब इसे क्या दूँ।" उल्लूबसंत ने कहा-"हेंहेंहेंहेंहेंहेंहेंहें हम क्या जाने।" स्त्री ने कहा-"और घास नहीं छील लाये, खाओगे क्या?" इसने कहा-"तू ही ले आ कहीं से।" यह बिचारी हैरान थी, । क्या करती

फिर भी ला के खिलाया । एक दिन स्त्री ने ब्योपार को कहा और इसने इनकार किया। पुनः दोनों में बड़ा ही धक्कम-धक्का हुआ और इसका डोरा टूट गया तब तो इसने कहा—'अरे सुसरी, हमारा डोरा टूट गया, हमतो मर गये । अब देखुँ किस से नाज मँगावेगी।' और पैर फैलाकर सो गया और चिल्ला २ कर कहने लगा—"अबे कुनबे वालो, हमको कफ़न ले आओ, हम मर गये।' सब लोग बोले—"साला योंहीं बका करता है, कहीं मरे भी बोलते हैं।'' अतः कोई पास तक नहीं आया। उल्लूबसंत बोला कि—"कुनबा, तो कुनबा, साले पड़ोसी भी नहीं सुनते हैं कि मुहल्ले में मुर्दा पड़ा है और सब लोग रोटी पानी खाते पीते है । यहाँ के लोग बड़े बदमाश हैं, मेरे पास भी नहीं आते हैं कि यह मुर्दा क्या कहता है। खैर, हम अपने लिए कफ़न आप ले आवेंगे।' अतः बाज़ार में जाकर कफ़न-फ़रोश यानी बज़ाज़ से बोला कि—"भाई साहब, हम मर गये हैं, मेहरबानी करके हमें कफ़न दे दो, ताकि हम दफ़न हो जायँ।' बज़ाज़ ने समझ लिया कि यह पूरा उल्लूबसंत है। बज़ाज़ ने कहा-"अच्छा दाम लाओ।" यह बोला-"किसी दिन दे जायँगे।' बज़ाज़ बोला-"फिर किस दिन दे जाओगे, तुम तो दफ़न हो जाओगे, मैं किससे दाम पाऊँगा।" यह बोला-"अरे यार, दफन होके क्या नहीं आते ?' बज़ाज़ बोला—"मरे हुये नहीं आते।" इसने कहा—"खैर वैसे ही गड़ जायँगे।" इतना कह मरघट में जा एक क़बर खोद उल्लूबसंत उसमें जा सोये। थोड़ी देर बाद जब भूख ज्यादा लगी तब लगे घबड़ाने। दैवयोग, उधर से एक आदमी पीठ पर गठरी बाँधे और एक लड़का कंधे पर बिठाले चला आता था। उसको देख उल्लू ने सोचा कि इसके पास रोटी जरूर होगी, इससे माँगनी चाहिये , जब वह आदमी पास

आया तो यह क़बर से उठकर एक साथ खड़ा हो उसके आगे आकर रोटी माँगने लगा। वह आदमी पहले तो डरा, फिर उसने सोचा कि यह मुर्दा तो है नहीं, कोई उल्लू है और बोला-"अच्छा रोटी हम दे देंगे पर इस लड़के को कंधे पर रखकर ले चल।" उल्लू बोला—"अच्छा ला भाई, पर रोटी दे दे।" उसने रोटी दे दी। अब ये रास्ते में चलते जायँ और कहते जायँ कि—"देखो, मरने पर भी सुख नहीं, यहाँ भी मजूरी करनी पड़ी। लोग कहा करते हैं, जीने से मरजाना भला है, यह यह सब झूठ है, इससे तो जीना ही अच्छा है। ले भइया हम अब तक मरे सो मरे, अब नहीं मरेंगे। जो मजूरी मरे पर यहाँ करी सो घर ही में करेंगे जिसमें आनन्द से घर तो रहें, यहाँ तो क़बरों में सोना पड़ता है। यहाँ इतने मरे हुये आदमी हैं कोई किसी से नहीं बोलता। सो अपना लड़का ले हमको रुख़सत करो हम मजूरी करेंगे और खायँगे।" बटोही ने लड़के को उतार लिया और इसको रुख़सत कर दिया।

हे भाइयो, जो लोग माया के माते होते हैं, उनके लड़के ज़्यादा बिगड़ते हैं वे मजूरी के लायक़ भी नहीं रहते।

१५८—उल्लू का दादा उल्लूसिंह

एक उल्लू का दादा उल्लूसिंह करके ज़ाहिर था। उसका रोज़गार कहीं नहीं लगता था। एक वकील साहब को नौकर की चाहना हुई। दैवयोग से उल्लूसिंह को तलाश कर उन्होंने नौकर रख लिया। वकील साहब ने कहा—"यह वर्दी पहले सिपाही की रक्खी है सो तुम पहन लो।" और कोट, पायजामा साफ़ा तथा एक तलवार भी उसे दे दी और कहा-"मेरे सामने पहन कर दिखाओ।" उस उल्लू ने कोट की बाहें पैरों में चढ़ाई

और साफ़ा कमर में बाँध लिया, पैजामा हाथों में पहन लिया, म्यान फाड़ के गले में डाल ली और तलवार को पूछा—"इससे क्या करते हैं ?" वकील बोला—"यह उस वक्त काम आवेगी जब कोई हम से बोलेगा उसी वक्त साले को मार देना, यही तुम्हारा काम है।" उल्लू के पहनावे को देख वकील साहब खूब हँसे और उसे पहनना सिखाया। एक दिन उस वकील का साला आया और वकील से बातें करने लगा। उल्लू ने तलवार को निकालकर एक ऐसा हाथ मारा कि साले साहब के दो टुकड़े हो गये। वकील बोला—अबे यह क्या किया ?' वह बोला—"मेरा क्या क़सूर है, आपने कहा कि कोई साला हमसे बोले,उसे मार देना, जो साला तुमसे बोला था मैंने मार दिया।" फिर तो पुलिस ने मुक़द्दमा क़ायम किया। वकील ने उल्लू से कहा—"क़लमदान उठा ला अर्ज़ी लिखूंगा।" यह उल्लू इधर-उधर देख बोला कि—"हुजूर, क़लमदान न हो तो फुकनी उठा लाऊँ।" वकील और पुलिस के लोग हँसने लगे और मुक़द्दमा ख़ारिज कर दिया।

१११—दुनिया में सबसे बड़ी बात

एक राजा ने अपने दीवान के मरने के पश्चात् नियमानुसार दीवान के लड़कों के पढ़ने का पूर्ण प्रबन्ध कर दीवान का स्थानापन्न दूसरा दीवान उस समय तक के लिए नियत किया, जब तक पूर्व दीवान के लड़के पढ़ लिखकर योग्य न हो जाँय। कुछ काल के पश्चात् जब पूर्व दीवान के लड़के पढ़ लिखकर योग्य हुए तब इस स्थानापन्न दीवान ने ९६ सहस्र मुद्रा पूर्व दीवान के नाम राजा के खाते में डाल दिये

और जब राजा पूर्व दीवान के लड़कों को दीवान पद देने लगे तब इस दीवान ने राजा के सामने खाता ले जाकर रख दिया और कहा कि—"अन्नदाता, इन बच्चों के बाप के नाम ९६ सहस्त्र मुद्रा आपका पड़ा हुआ है जब तक वह सम्पूर्ण रुपया आपका न चुका दें तब तक यह पद इन्हें न दिया जावे।" राजा की भी समझ में ऐसा ही आ गया, अतः राजा ने लड़कों से कहा—"जब तक तुम हमारा सब रुपया न दे दोगे, तब तक तुम्हें यह पद न मिलेगा।" पूर्व दीवान के लड़के तो बड़े ही चतुर और बुद्धिमान् थे, अतएव बच्चों ने कहा—"श्रीमान् यदि हमें दीवान् पद नहीं दिया जाता तो जब तक हम दोनों को कोई अन्य काम दिया जावे, जिससे हमारे पेट का पालन हो और आपका रुपया भी पटे।" राजा ने बच्चों की प्रार्थना सुन एक बच्चे को अपनी ड्योढ़ी पर दरबानी का काम और दूसरे को बग़ीचे में माली का काम दे दिया। बच्चे बहुत दिन तक यह काम करते रहे, परन्तु इन कामों में बच्चों को वेतन केवल उतना ही मिलता था कि जितने से उनके पेट का पालन हो सके, अतः लड़कों ने सोचा कि इस प्रकार तो हम लोगों से ९६ सहस्त्र रुपया नहीं दिया जा सकता है और न दीवान का पद ही मिल सकता है, इसलिए कोई ऐसी युक्ति सोचनी चाहिये कि जिससे राजा के ऋण से शीघ्र उऋण हो दीवान पद प्राप्त करें। अतः लड़कों ने आपस में कुछ सम्मति कर दूसरे दिन जब राजा साहब बाहर निकले तो बड़े लड़के दरबान ने पूछा कि—"महाराज, दुनिया में सब से बड़ी चीज़ क्या है?" राजा ने कहा—"मैं इसका उत्तर कल दूँगा।" दूसरे दिन राजा ने प्रातःकाल दरबार में आते ही इस बात को सम्पूर्ण सभा के लोगों से पूछा कि—"भाई, सभा के लोगो, दुनिया में सब से बड़ी चीज़ क्या है?" किसी ने कहा—"अन्नदाता, सबसे बड़ा हाथी।" किसी

ने कहा—"सब से बड़ा ऊँट।" किसी ने कहा—"सबसे बड़ी खजूर।" किसी ने कहा-"सब से बड़ा ताड़।" किसी ने कहा—"सबसे बड़ा पहाड़।" किसी ने कहा—"सब से बड़ा रुपया।" किसी ने कहा-"सब से बड़ा बल।" ये सब उत्तर राजा ने दर्वान को दिये पर दर्वान ने इनमें से एक को भी न माना जब राजा के राज्य के सम्पूर्ण मनुष्य उत्तर दे चुके तो राजा ने सोचा कि अब केवल हमारे बग़ीचे का माली शेष है, उसे भी बुलाकर पूछना चाहिये। देखें वह क्या उत्तर देता है अतः राजा ने पूर्व दीवान के छोटे पुत्र माली को बुलाकर पूछा कि—"दुनिया में सब से बड़ी चीज क्या है?" उसने कहा—"यदि मेरे बाप के नाम से ३२ सहस्त्र रुपया काट दिया जावे तो मैं आपके प्रश्न का उत्तर दूँ।" माली की यह बात सुन राजा तथा सम्पूर्ण सभा के लोग चकित हो गये। अन्त में राजा ने कहा—"तुम्हारे बाप के नाम से ३२ सहस्त्र रुपया काट दिया जावेगा, तुम बताओ कि दुनिया में सबसे बड़ी चीज़ क्या है?" माली ने कहा—दुनिया में सबसे बड़ी चीज़ है बात।" यह उत्तर सुन राजा के भी मन में निश्चय हो गया कि ठीक है और दरवान ने भी मान लिया। पुनः दरवान ने पूछा कि—"महाराज, सब से बड़ी चीज़ बात तो है पर वह रहती कहाँ है?" राजा ने फिर दरवान से यही कहा—"मैं इसका उत्तर कल दूँगा।" और राजा ने सभा में आकर उसी भाँति पूछा कि—"दुनिया में सबसे बड़ी चीज़ बात तो है, पर वह रहती कहाँ है?" किसी ने कहा—"अन्नदाता, धनवानों के पास।" किसी ने कहा-"बलवानों के पास।" किसी ने कहा—"विद्वानों के पास।" राजा पूर्व की भाँति ये सब उत्तर दरवान को दिये, पर दरवान ने एक भी उत्तर स्वीकार न किया। पुनः राजा ने बागीचे से माली को बुलवा यह प्रश्न किया कि—"दुनिया में सब से बड़ी चीज़ बात है,

पर वह रहती कहाँ है ?" इसने कहा —"महाराज, ३२ सहस्र फिर निकलवा दीजिये ।" राजा ने यह सुन तुरन्त ही आज्ञा दी कि-"आप उत्तर दें ३२ सहस्र और निकाल दिये जावेंगे।" माली ने उत्तर दिया—"दुनिया में सबसे बड़ी चीज़ बात है और वह रहती है असीलों के पास।" उत्तर सुनकर राजा ने मान लिया और राजा ने दरवान को यही उत्तर दिया, दर्वान ने भी स्वीकार किया। पुनः दरवान ने राजा साहब से प्रश्न किया कि-"दुनिया में सबसे बड़ी चीज़ बात, रहती तो है असीलों के पास और खाती क्या है ?" राजा ने कल का वादा कर पुनः जाकर दूसरे दिन अपनी सभा में यह प्रश्न किया। प्रश्न सुन सब सभा चकित हो गई और कुछ काल तक सब के सभी मौन साध गये। पश्चात् कुछ आदमियों ने सलाह कर कहा कि—"महाराज, कहीं बात भी खाया करती है ?" राजा ने माली को बुला कर पूछा—"दुनिया में सब से बड़ी चीज़ बात, रहती तो असीलों के पास है और खाती क्या है ?" इसने कहा कि-"३२ सहस्र रुपया जो मेरे पिता के नाम बाकी हैं यदि वह भी कटा दें तो मैं बता दूँ कि वह खाती क्या है ?" राजा ने उसी समय स्वीकार कर कहा—आप उत्तर दीजिये।" इसने कहा कि—"महाराज दुनिया में सब से बड़ी चीज़ बात है जो रहती है असीलों के पास, पर खाती है ग़म।" राजा ने मान लिया और यही उत्तर दरवान को दिया दरवान ने भी मान लिया। पुनः दरवान ने राजा से प्रश्न किया कि—"दुनिया में सब से बड़ी चीज़ बात, रहती तो है असीलों के पास और खाती है ग़म पर करती क्या है ?" राजा ने फिर भी 'कल कह कर दूसरे दिन अपनी सभा में यह प्रश्न किया। सभा के लोग थोड़ी देर तो चुप रहे और फिर बोले—"महाराज, बात भी कहीं काम किया करती है ?" राजा ने पुनः बग़ीचे से माली

को बुला, उससे इस प्रश्न का उत्तर पूछा। उसने कहा—"महा-राज, अब के हमारे बाप का दीवान पद हम दोनों भाइयों में से किसी को दिया जावे क्योंकि आपका ऋण भी पट गया, और यह दीवान जो मेरे बाप के स्थान पर है इसने मेरे बाप के नाम ६६ सहस्र रुपया बिल्कुल झूठा डाला है, इसलिये यह जहन्नुम रसीद किया जावे तो मैं आपके प्रश्न का उत्तर दे सकता हूँ।" राजा ने सच्चा हाल समझ स्वीकार लिया और कहा—"आप उत्तर दीजिये, ऐसा ही होगा।" माली ने कहा—"महा-राज, दुनिया में सब से बड़ी चीज़ बात है और वह रहती है असीलों के पास तथा खाती है ग़म और करती है वह वह काम जो धन, बल, विद्या किसी से न हो।" राजा ने उत्तर स्वीकार किया और इन बच्चों को दीवान पद दे झूठे दीवान को जहन्नुम रसीद किया।

लक्ष्मी र्वसति जिह्वाग्रे जिह्वाग्रे मित्र बान्धवाः ।
जिह्वाग्रे बन्धनं प्राप्तं जिह्वाग्रे मरणं ध्रुवम् ॥

१५२—रमखुदैया

एक हिन्दू और एक मुसलमान साहब गंगा पार को जा रहे थे। रास्ते में जब गंगाजी पड़ी तो घाट पर नाव न होने के कारण दोनों सोच रहे थे क्या करना चाहिये, परन्तु कुछ वि-चार न आया। थोड़ी देर में हिन्दू ने तो कहा कि जै राम-चन्द्रजी की, मैं तो अपने एक तरफ़ से मँझाता हूँ, और वह ऐसे उथले ओर से गया कि पार हो गया। अब मुसलमान साहब सोचने लगे कि मैं कैसे पार जाऊँ? राम को सुमिरूँ या

खुदा को यह सोचते-सोचते मझाना प्रारम्भ कर दिया और यह मँझाने में भी यह विचार करता जाता था कि—"राम को याद करूँ या खुदा को?" इस रमखुदैया के कारण इसका ध्यान बट गया ओर यह गहरे में जाकर डूब गया।

बस, समझ लो कि रमखुदैयावालों की यही दशा होती है कि थोड़ा यह कर लें थोड़ा वह, यह करें या वह?

१५३—एक पतिव्रता

एक साहब किसी गाँव में रहा करते थे। उनकी स्त्री तो बड़ी चतुर और पतिव्रता थी किंतु वह अत्यन्त ही निकम्मा और मूढ़ थी, यहाँ तक कि कुछ कमाता धमाता न था दिन भर पड़े पड़े बातें बनाया करता था। औरत बिचारी इसे जहाँ तहाँ से उधार पुधार ला-ला खिलाया करती थी। यह पुरुष एक दिन बाज़ार में टहलने गया। वहाँ एक यवन से बहुत सी बात चीत होने के बाद यवन से किसी ने कह दिया कि इसकी औरत बड़ी खूबसूरत है, अतः यवन ने इससे कहा कि—"अगर तू अपनी औरत को मेरे पास सुलादे तो मैं १००) रुपये तुझे दूँगा।" यह पागल यवन को अपने घर ले आया और अपनी औरत से कहा कि—"अगर तू आज इसके साथ सो रहे तो ये सौ रुपये देगा, इसी लिए मैं इसे लिवा लाया हूँ।" यह सुन औरत उससे बहुत ही अप्रसन्न हुई। तब इसने कहा-"अच्छा, तू प्रथम इसे दो रोटी बना के खिला दे, फिर देखा जायगा।" औरत ने कहा—"रोटी मैं दो क्या चार बनाकर खिला दूँगी।" परन्तु औरत अपने पति की बद हरकत को भली भाँति जानती थी, इसलिये बड़े ही असमंजस में पड़ गई कि

ऐसे समय में इस दुष्ट से बचकर कैसे पतिव्रत की रक्षा हो अतः औरत ने अपने पति से कहा-"आप कृपा करके एक रस्सा चारपाई में दावन लगाने के लिए और एक मूसल पीसना छूरने के लिए ले आइये क्योंकि घर का मूसल टूट गया है जब तक मैं इस मुसाफिर के लिए रोटी का सामान लगाती हूं।" औरत पाव भर मिरचे निकाल सिल पर पीसने लगी और इसका पति रस्सा और मूसल लेने बाज़ार को चला गया। थोड़ी देर में यह औरत रोने लगी। मुसाफिर ने पूछा —'तू क्यों रोती है?" औरत ने कहा —"जनाब, रोती इस लिए हूं कि यह मेरा पति बड़ा ही बदमाश है और इसकी ऐसी बद आदत है कि यह रोज़ बाज़ार से किसी न किसी मुसाफ़िर को ले आता है और अपने घर में उसके हाथ पैर रस्से से बांध उसके पाख़ाने के मुक़ाम में मिरचे भरा करता है और पीछे मूसल घुसेड़ देता है, सो देखिये कि मिरचे तो मुझ से बँटवा गया है, मैं पीसती हूं और रस्सा और मूसल टूट गया था, उसे लेने बाज़ार गया था, सो देखो वह लिये आ रहा है।" यवन यह दशा देख कि वह वास्तव में रस्सा और मूसल लिये आता है विश्वास मान चल पड़ा। जब वह पुरुष अपने घर आया तो अपनी स्त्री से पूछा कि—"मुसाफिर क्यों चला गया?" औरत ने कहा —'मैं मिरचे पीस रही थी तो मुसाफिर कहने लगा कि ये मिरचे जो तू पीस रही है मए सिल के मुझे ऐसे ही दे दे। मैंने कहा—"ऐसे मिरचे आप लेकर क्या करेंगे, आप ही के लिए पीसती हूं रोटी बनाऊँगी तब खाना। बस इसी से गुस्सा होकर जाते हैं।" पुरुष ने कहा -"अरे तूने मए मिरचों के क्या न ऐसी ही सिल दे दी! अच्छा अब ला मैं दौड़ कर दे आऊँ।" और यह पुरुष मए मिरचों के सिल लेकर दौड़ा और पुकारा कि—"ओ मियाँ! ये लिये जाओ।" मियां ने जाना कि यह मेरे पाख़ाने के मुक़ाम

में मिरचे मरने आता है, इस लिये मियां भागे और यह पीछे दौड़ा। तब तो मियाँ को और निश्चय हो गया और वे प्राण छोड़ भग गये।

१५४-ग़मखाना

एक बार किसी शख़्स ने प्रश्न किया कि— 'ये बनिये इतने मोटे क्यों होते हैं!" दूसरे ने जवाब दिया कि—' ये ऐसी बस्तु खाते हैं, जिसे संसार में कोई नहीं खाता और न मान तो चल मैं तुझे दिखलाऊँ।" अब वह उस शख़्स को लेकर गया तो क्या देखता है कि एक पुलिसमैन ने बनिये की दूकान पर आटा लिया और अच्छे आटे को कहता था कि साले तूने इसमें चपड़ी मिलाई है और बहनचोद् ने जुआर का आटा भी मिलाया है, ग़रज़ यह कि पुलिसमैन ने सैकड़ों गालियाँ दीं, पर बनिया न बोला। तब उसने उस शख़्स से कहा—"क्यों साहब! समझ गये?"

१५५-बेरहमी

एक काबुली बहुत ही दीन और अत्यन्त बेवक़ूफ़ इस देश में आया और दिल्ली की बाज़ार में उसने जामुन बिकते हुए देख लोगों से पूछा कि—"यह क्या है? लोगों ने कहा--"यह हिन्दुस्तान की मेवा है।" बेचारा क्या करे, पैसा पास न था इसलिए विवश हो चला गया। पश्चात् घूमते-घामते कुछ काल में एक बगीचे में पहुँचा तो बाग में केतकी के वृक्षों तथा अन्य फूले हुए वृक्षों पर भौंरे गूँज रहे थे। इसने समझा कि

ये उसी हिन्दुस्तान की मेवे के वृक्ष हैं और इन में ये फूल फल लग रहे हैं। अतः इसने भौंरों को पकड़ २ कर खाना आरम्भ कर दिया। परन्तु जिस समय यह भौंरों को पकड़ता था तो भौंरे चीं चीं करते थे। काबुली बोला कि—"चाहे चें करो या में, काले काले साले एक नहीं छोड़ूँगा।"

१५६—निन्यानवे का फेर

एक सेठजी बहुत धनवान एक शहर में रहते थे और सेठ के तिखण्डे मकान के समीप ही दीवार से दीवार मिली हुई, एक दूसरे सेठ जो बहुत ही दीन थे, रहा करते थे। धनाढ्य सेठ अपने घर में ख़राब से ख़राब नाज की रोटी बनवाते और केवल नमक के साथ खाया करते थे और दीन सेठ नित्य अपने घर खीर पूड़ी हलुआ अच्छी २ चीज़ें बनवाते थे। अभिप्राय यह कि दीन सेठ जो कमाते थे वह खा पी डालते थे धनाढ्य सेठ की स्त्री यह चरित्र देख हैरान थी और कहा करती थी—"हाय हमारे बाप ने क्या धनाढ्य के यहाँ ब्याह किया। ऐसे धन से क्या, जो न भोगा गया, न दान दिया गया। इससे तो ये कंगाल ही अच्छा।" एक दिन उस धनाढ्य सेठ की स्त्री ने अपने पति से कहा कि—"आपके धनी होने से क्या लाभ? न आप खाही सकते हैं और न किसी को दे सकते हैं, आपसे तो यह कंगाल ही अच्छा जिसके यहाँ रोज़ हलुवा पूड़ी और खीर बना करती है।" सेठने कहा-"यह अभी निन्यानवे के फेर में नहीं पड़ा है. अच्छा आज मैं तुझे निन्यानवे रुपया देता हूँ और तू कल यह रुपया एक कपड़े में बाँध इस दीन सेठ के घर डाल देना।" धनाढ्य सेठ की स्त्री ने वह रुपया

एक कपड़े में बाँध दूसरे दिन दीन सेठ के यहाँ डाल दिया। दीन सेठ की स्त्री ने वह रुपयों की पोटरी पा अपने पति को दे दी। पति ने गिने तो रुपये निन्यानवे थे। उसने सोचा कि अगर मैं दो दिन हलुवा पूड़ी खीर न खाऊँ तो ये पूरे सौ हो जायँ। ऐसा ही हुआ, दूसरे दिन से ही हलुआ पूड़ी खीर का होना बंद हो गया और अब दो दिन में सौ हो गये। अब इसने सोचा कि दो दिन और न खाऊँ तो १०१ हो जायँ। जब दो दिन में १०१ हो गये तो सोचा कि दो दिन और न खाऊँ तो १०२ हो जायँ। बस यह दशा देख धनाढ्य सेठ ने अपनी स्त्री से कहा कि देखो अब यह भी निन्यानवे के फेर में पड़ गया और 'इसी को निन्यानवे का फेर' कहते हैं। परमात्मा न करे इस निन्यानवे के फेर में कोई भी पड़े।

१५७–एक तपस्वी और चार चोरों का साथ

एक महात्मा किसी वन में तप कर रहे थे। एक दिन रात को चार चोर पहुंचकर महात्मा से बोले कि—"महाराज, आप तो परोपकारी हैं, इसलिए हमारे साथ चलकर परोपकार कीजिये।" तपस्वीजी चोरों के साथ चल दिये और मन में यह सोचा कि इन दुष्टों को आज अपने परोपकार का परिचय दे देना चाहिये। जब यह महात्मा और चारों चोर एक धनिक के मकान पर पहुंचे तो चोरों ने धनिक के मकान में नक़ब लगा महात्मा से कहा "महाराज, अब आप आगे २ चलिये।" महात्मा और चारों चोर अन्दर पहुंच गये और जब चोर कोठों के अन्दर घुस माल निकालने लगे तब महात्मा ने बाहर से कोठों की ज़ंजीरें चढ़ा दीं। पास ही एक दालान में बाहर एक

थाल में कुछ बर्फियाँ रक्खी थीं और वहीं दीपक जल रहा था। महात्मा बर्फियाँ देखकर ललचाये और इन की जीभ लुपलुपाने लगी। इसलिये महात्मा ने थाल की बर्फियाँ उठा सोचा कि पहले ठाकुरजी की नैवेद्य लगा लूँ पीछे बर्फियाँ खाऊँ, अतः धनिक के मकान की भीतरी चौक में आ थाल के चारों ओर पानी फेर अपना संख बड़े ज़ोर-ज़ोर बजाने लगे। इतने में घर के सब लोग जग पड़े और मंदिर की ओर कान लगाने लगे कि आज रात को मंदिर में क्यों नैवेद्य लगाई जाती है। जब कुछ और ध्यान कर के देखा तो घरवालों को मालूम हुआ कि यह तो हमारे घर ही में नैवेद्य लग रही है। पुनः घरवाले उठकर गये और महात्मा से कहा—"तुम कौन ?" इन्होंने कहा—"हम अमुक वन में रहते हैं, और इस प्रकार हमें चोर ले आये और चोरों ने आपके मकान में नक़ब कर हमें भी घुसेड़ा और जब चोर इस कोठरी में आपका माल निकालने लगे तो हमने बाहर से ज़ंजीर चढ़ा दी। आपके थाल में बर्फियाँ रक्खी देख मुझे खाने की इच्छा चली तो मैंने कहा कि पहले ठाकुर जी को नैवेद्य लगा लूँ फिर बर्फियाँ खाऊँ, सो अब नैवेद्य लग गई, अब आप भी प्रसाद लीजिये और चारों चोरों को कोठरी से निकाल प्रसाद दीजिये।" धनिक अपने घर कई आदमी रखते थे, अतः चोरों को कोठरी से निकाल एक-एक चोर को हजारहा जूतों का प्रसाद दिया और अन्त में उनको पुलीस के हवाले कर तीन तीन वर्ष की कैद दिलाई। पुनः महात्मा ने चोरों से कहा—"कहो हम परोपकारी हैं या नहीं ?"

१५८—पांच ठगों की ठगी और उसका फल

एक पुरुष किसी साहूकार के यहाँ नौकर था। बहुत काल तक नौकरी करने पर जब उसने वेतन माँगा तो साहूकार ने कहा कि—"अगर तुम यह बैल लेना चाहो तो ले जाओ, वरना इसके सिवा मेरे पास कुछ नहीं है।" अतः साहूकार ने वह बैल अपने नौकर को तेरह रुपये में दे दिया। नौकर बैल लेकर घर को चला और मार्ग में एक ठगों के गाँव में जा निकला। एक जगह चार ठग बैठे हुये थे और उन चारों का बुड्ढा बाप अलग बैठा था। इन चारों ठगों ने उस बैल वाले को बुला कहा—"अबे बैल वाले! क्या यह बैल बेचेगा?" बैल-वाले ने कहा—"हाँ हाँ! लो अगर आपको लेना हो!" ठगों ने कहा—"बैल की क्या क़ीमत लोगे?" इसने कहा—"जो दो भलेमानस कह दें।" ठगों ने कहा—"तुम दो भले मानसों की मानोगे?" इसने कहा—"दो भलेमानसों की नहीं मानेंगे तो फिर किसकी मानेंगे।" यह प्रतिज्ञा करा ये चारों ठग बैल-वाले को अपने बाप के पास ले गये और कहा—"इनकी मानोगे।" बैलवाले ने कहा—"हाँ हाँ मैं मानूँगा।" बुड्ढे ने कहा—"सच सच पूछो तो बैल तो तीन रुपये का है।" बैलवाले ने बैल दे दिया और अपने घर को चल पड़ा। पर मार्ग में उसे मालूम होगया कि वे चारों ठग थे और बुड्ढा ठगों का बाप था, अतः यह बैलवाला थोड़े दिन बाद स्त्री का रूप बनाकर एक डोली में उसी गाँव में, ठगों के मकान के सामने जो कुआँ था, वहां आकर उतर पड़ा और रोने लगा। इतने में ये ठग निकले और कहा—"क्या है?" इसने कहा—"मेरे पति ने मुझे नाराज होकर निकाल दिया है!" ठगों ने कहा—"अच्छा तुम हमारे यहाँ बनी रहो।" इसने स्वीकार कर लिया। अब तो उन

चारों ठगों में बड़ा झगड़ा होने लगा। एक कहता था इसे मैं रक्खूँगा, दूसरा कहता था मैं रक्खूँगा। यह झगड़ा देख बाप बोला कि—"तुम चारों क्यों लड़ते हो? इसको मैं स्त्री बना रक्खूँगा और यह तुम चारों की माँ बनी रहेगी।" चारों ठगों ने मंजूर कर लिया और वह बैलवाला स्त्री रूप में ठगों के घर रहने लगा। अब बुड्ढे को यह पड़ी कि अगर मेरे लड़के इधर उधर जायँ तो मैं खूब विषय भोग करूँ। अतः लड़कों को इधर उधर भेज दिया। उस दिन बुड्ढे ने खूब हलुआ पूड़ी खीर बनवा भोजन किया और यह मना रहा था कि किसी प्रकार रात आये। स्त्री भी (बना हुआ बैलवाला) खूबश्रृङ्गार कर बैठ रही थी। जब रात हुई तो स्त्री ने किवाड़े मार एक रस्सा ले बुड्ढे को चारपाई से बाँध गला दबा पूछा कि—"बता तेरा धन कहाँ गड़ा है?" बुड्ढे ने जान के भय से सब बता दिया। उसने सबको खोद बहुत-सा धन बाँध एक सोंटा ले बुड्ढे को बहुत ही पीटा और कहता जाता था,—"क्यों रे मक्कार! तेरह का बैल तीन का!" और इसे पीट-पाट धन ले बैलवाला चल दिया। जब दो दिन बाद उस बुड्ढे के लड़के आये तो बुड्ढे को बँधा हुआ, सब देह फूली हुई और सब घर खुदा हुआ देख बड़े दुःखी हुए और बाप से बोले—"यह क्या हुआ" बुड्ढे ने कहा कि—

वह औरत न थी बल्कि था बैलवाला।
मुझे बाँध कर ले गया धन है साला॥

चारों ने अपने बाप को खोल दवा इलाज किया और फिर माल जमा करने लगे। कुछ दिन बाद वह बैलवाला वैद्य का भेष धर फिर उसी गाँव में आ विराजा। ये चारों ठग फिर

उन वैद्यराज के यहाँ पहुँचे और दो रुपये नज़र कर कहा-"महाराज, हमारे बाप बहुत बीमार हैं, आप कृपा कर उन्हें चलकर देख लिजिये।" वैद्यराज ने जाकर देखा, पर इसको तो सब हाल मालूम था, अतः इसने बुड्ढे के लड़कों से कहा— 'जब मैं १५ दिवस ठहरूँ तब इसे आराम हो सकता है।" बुड्ढे के लड़कोंने वैद्यराज के आगे बहुत कुछ हाथ पैर जोड़े और कहा कि "आप कृपा कर १५ दिवस ठहर जाइये, हम आपकी जो फ़ीस होगी देंगे और आपकी सेवा करेंगे।" वैद्यराज का तो यह अभिप्राय ही था, अतः वे ठहर गये। दूसरे दिन उन्होंने बुड्ढे के चारों लड़कों को दूर-दूर अंट-संट की दवायें बता कर इधर उधर भेज दिया और जब बुड्ढा अकेला रह गया तो उसे उसके घर में एक खम्भे से बाँध उसका गला दबा कर पूछा कि—"बता, अब बचा बचाया धन कहाँ रक्खा है?" बुड्ढे ने प्राण जाते देख बचा बचाया धन भी बता दिया। इस वैद्य (बने हुए बैलवाले) ने सब धन खोद और एक सोंटा ले पुनः बुड्ढे को खूब पीटा और कहता था—"क्यों रे मक्कार, तेरह का बैल तीन का?" और सारा धन लेकर चला गया। जब बुड्ढे के चारों लड़के दवा लेकर आये तो बाप की यह दशा देख बड़े शोकित हुए और अन्त में सोच समझ उसी तारीख़ से ठगी छोड़ दी।

१५६—लाल बुझक्कड़

किसी गाँव से होकर एक हाथी निकल गया और उसके गोल गोल चकले पैर भूमि में बन गये। गाँववालों ने कहा—"यार ये काहे के चिन्ह हैं?" सबों ने अपनी समझ के अनुसार विचारा, पर कोई विचार निश्चय न हुआ। अन्त में सबकी

यह राय ठहरी कि लालबुझक्कड़ को बुलाना चाहिये और उनसे पूछें कि ये काहे के चिन्ह हैं। जब लालबुझक्कड़ आये तो सबों ने कहा—"गुरू! बताओ, ये काहे के चिन्ह हैं?" लालबुझक्कड़ यह सुनकर बहुत हँसे। सबों ने कहा—"महाराज! इस समय आप क्यों हँसे?" लालबुझक्कड़ ने कहा कि—"हम हँसे इस लिये कि आप लोग हमारे शिष्य होकर भी यह ज़रा सी बात न जान सके।" पुनः लालबुझक्कड़ बहुत रोया। सबों ने कहा—"महाराज, आप रोये क्यों?" लालबुझक्कड़ बोले कि—"रोये इससे कि हमारे बाद तुम्हें कौन ऐसी ऐसी बातें बतावेगा? लो अब सुनो, भूलना नहीं—

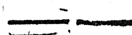
जानै बात बुझक्कड़ और न जानै कोय।
पग में चक्की बाँध के, हिरना कूदा होय॥

सबों ने कहा—"ठीक है।"

इसी प्रकार उस गाँववालों ने कभी कोल्हू नहीं देखा था। एक आदमी अपना कोल्हू लादे जाता था, लेकिन उसकी गाड़ी के बैल न चलने से वह उस कोल्हू को मये गाड़ी के छोड़ गया। अब गाँववाले उसी भाँति फिर हैरानी में पड़े। अन्त में उन्हीं लालबुझक्कड़ को बुलाकर पूछा—"महाराज, यह क्या है?" लालबुझक्कड़ ने कहा—

जानै बात बुझक्कड़ और न काहू जानी।
पुरानी होकर गई ये खुदा की सुरमादानी॥

सबों ने कहा—"ठीक है महाराज, ठीक है।"



१६०—परम लालची

एक सेठजी बड़े ही लालची थे, यहाँतक कि अपने पेट भर भली भाँति खा पी भी नहीं सकते थे। पर उनके कुटुम्बवाले उनके इस स्वभाव को अच्छा नहीं समझते थे और अपने आप सब अच्छी प्रकार खाया पिया करते थे। एक दिन सब लोग अच्छे-अच्छे पदार्थ, कोई हलुआ, कोई पूड़ी, कोई लड्डू, कोई खीर कोई रबड़ी, कोई मलाई वगैरः उड़ा रहे थे, इतने में सेठ-जी घर आ पहुंचे और यह दशा देख नाँद के नीचे से मट्ठा निकालकर पीने लगे और बोले कि—"भरभर है तो भरभरै सही, हम भी आज मट्ठा ही पियेंगे।"

मक्खी बैठी शहद पर पख गये लपटाय।
हाथ मले औ शिर धुने लालच बुरी बलाय॥

१६१—खुशक़िस्मत कौन है ?

एक बार यूरोप के किसी बादशाह ने एक आदमी से जिसका कि नाम सालिन था पूछा कि शायद मेरे बराबर तो दुनिया में कोई खुशक़िस्मत न होगा। सालिन ने एक महा कंगाल का नाम ले कहा—"हुज़ूर! उससे ज़्यादा खुशक़िस्मत दुनिया में और कोई नहीं है।" बादशाह ने कहा—"क्यों ?" सालिन ने कहा—"उसने अपनी सारी आयु सदाचार ही में व्यतीत की है और उसमें किसी प्रकार के किसी कलङ्क का धब्बा नहीं और संसार में उसका यश है और जिस समय वह मरा दुनिया उसके लिये रोती थी।" बादशाह ने समझा कि अगर यह सब से ज़्यादा

खुशक़िस्मत है तो दूसरा नम्बर मेरा ही होगा, यह समझकर पूछा कि—"उसके बाद फिर कौन खुशक़िस्मत है ?" इसने एक दूसरे कङ्काल का नाम ले कहा—"हुज़ूर ! यह उससे ज़्यादा खुशक़िस्मत है।" उसने कहा—"क्यों ?" सालिन ने उत्तर दिया कि—'इसने जिस हैसियत में अपने बाप से गृहस्थी पाई थी, वह वैसी ही गृहस्थी रखता हुआ, पुत्र पौत्र भ्राता आदिकों को छोड़ता हुआ, परमेश्वर का भजन करता हुआ, संसार की सम्पूर्ण आपत्तियों को झेलता हुआ आज प्राण छोड़ता है। बस इसी प्रकार यदि आपकी बादशाहत अन्त तक बनी रहे और उसमें कोई आपत्ति न आये तो मैं आपको भी खुशक़िस्मत कहूँगा।" बादशाह ने यह सुनकर सालिन पर क्रोधित हो राज्य से निकलवा दिया। पुनः थोड़े ही दिन में अनायास उस बादशाह के ऊपर एक बादशाह चढ़ आया और उसने सारा राज पाट छीन लिया और उसे क़ैदकर अपने राज्य में ले गया और थोड़े दिन में उसे सूली का हुक्म दिया। जब यह बादशाह सूली पर चढ़ने लगा तो इसने बड़े ज़ोर से पुकारकर कहा—'सालिन ! सालिन ! सालिन !" तब तो यह वाक्य सुन उस बादशाह ने कि जिसने इसको सूली दी थी, इसको अपने पास बुलाकर कहा कि—"आप क्या कहते हैं?" उसके पूछने पर इसने सारा क़िस्सा सालिन और अपनी बात चीत का वर्णन किया और कहा कि—"सालिन ठीक कहता था, देखिये। थोड़े दिन हुये मैं बादशाह था और आज सूली पर चढ़ रहा हूँ इसलिये मैं सालिन का नाम बार-बार पुकार रहा हूँ।" यह सुनकर बादशाह के होशहवास ठीक हो गये और उसने इसको सूली से मुक्त कर सारा राजपाट लौटा दिया।

१६२—अयोग्य मन्त्री

एक बादशाह के यहां एक बड़ा ही सुयोग्य मन्त्री था। परन्तु वह अपनी स्त्री के विशेष वशीभूत था और उस स्त्री का भाई बिल्कुल बेकार था, अतः स्त्री ने बादशाह से कहकर उस योग्य मन्त्री को हटाकर अपने भाई को नियत कराया और अपने भाई को यह समझा दिया कि तुम बादशाह की आज्ञा को कभी न तोड़ना, जैसा वे कहें वैसा ही करना। बादशाह ने एक बार इस नये मन्त्री से कहा कि—"आप १०००) रु० का एक नोट बाज़ार से ले आइये।" ये जब नोट लेने गये तो बैंक के मैनेजर ने कहा कि—"१०००) का एक तो नहीं है, पाँच पाँच सौ के दो चाहो तो ले जाओ।" ये वहाँ से लौट आये और बादशाह से कहा कि—"१००० का एक तो नहीं मिलता था पाँच पाँच सौ के दो मिलते थे, इसलिये मैं नहीं लाया।" बादशाह ने कहा कि—"मतलब तो एक ही था, आप क्यों न लेते आये?" कुछ दिन के बाद बादशाह की लड़की ब्याह के योग्य हो रही थी, इसलिये बादशाह ने अपनी कन्या के विवाहार्थ एक राज्य में इन मन्त्रीजी को भेजना चाहा और मंत्रीजी से कहा कि—"आप एक ऐसा वर ढूँढ़ें जिसका कुल, शील, समानता, वित्त आदि बातें योग्य हों और उमर २२ वर्ष से कम न हो।" तब तो इन मन्त्री महाराज ने कहा कि—"हुजूर, अगर ग्यारह ग्यारह वर्ष के दो हों?" बादशाह ने समझ लिया कि यह मूर्ख है और उसको उसी समय निकाल बाहर किया।

मुकुटेरोपितः काँचश्चरणाभरणे मणिः।
नहि दोषो मणेरस्ति किन्तु साधोरविज्ञता॥

१६३—भारत के शूरवीर

एक बार किसी गाँव में दो दर्ज़ियों में परस्पर लड़ाई हुई। एक ने अपनी सुई उठाई और दूसरे ने अपनी सुई उठाई। वह उसके सामने सुई उठाकर कहता था—"क्या साले नहीं मानेगा ?" और वह उससे कहता था-"क्या साले नहीं मानेगा ?" इतने में एक स्त्री आगई और बोली कि—'परमेश्वर खैर करे, आज शूरों ने शस्त्र उठाये हैं।'' वाहरी शूरवीरता और वाह रे शस्त्र। एक समय था कि—

ललाटदेशे रुधिरं स्रवत्तु शूरस्य यस्य प्रविशेच्च वक्त्रे।
तत्सोमपानेन समंभवेच्च संग्रामयज्ञे विधिवत्प्रवेष्टुम्॥

१६४—आय फँसे

एक बार मुसलमानों के ताज़िये हो रहे थे। वहां पर इस प्रकार भीड़ हो रही थी कि निकलने तक का मार्ग न था। इतने में उनके गोल में एक हिंदू भाई जा पहुँचे। वहाँ गोल में सब मुसलमान थे और वे सबके सब छाती पीट पीटकर यह कह रहे थे कि—'हाय हुसेन! हाय हुसेन!'' यह देख हिन्दू भी अपनी छाती पीट पीट यह कहने लगा कि—"आय फँसे। आय फँसे।"

१६१—भारत

एक संन्यासी एक महा सुन्दर वन में अकेला रहता था। वह वन नाना प्रकार की औषधियों और हरी-हरी घास से उपवन सा बन रहा था। संन्यासी उसी वन में निःसन्देह और निडर सुखपूर्वक अपने दिवस व्यतीत करता था। उसी वन में एक अति मनोहर तालाब स्वच्छ जल से पूरित था। एक दिन वह सायंकाल के समय तृषित हो तड़ाग पर गया, वहाँ जल पान करके तालाब की मनोहर शोभा को अवलोकन करने लगा तो क्या देखता है कि भाँति-भाँति के पक्षी तड़ाग के तट के वृक्षों पर नाना प्रकार की सुहावनी सुहावनी वाणियों से चहकार मचा-मचा वन को गुँजा रहे हैं। और अपने दिवस भर के छूटे हुये बच्चों से मिल बड़े हाव भाव से प्यार कर कर सारे दिन के वियोग के दुःख को मिटा रहे हैं। दूसरी ओर वन का रङ्ग आकाश की लालिमा से अपूर्व रङ्ग का हो रहा है। संन्यासी इन सब पदार्थों को विलोकता और इस शोभा को देख हर्षित हो रहा था, इतने में आकाश पर अचानक चन्द्रमा अपनी नक्षत्रों की सेना ले बड़े दल-बल के साथ आकर प्रकाशित हुआ और उसने सम्पूर्ण आसमान पर अपना अधिकार जमाया और अपनी मन्द मन्द किरणों द्वारा पृथ्वी को आलोकित किया। सांसारिक जन अपने-अपने कार्यों को त्याग सुखपूर्वक हर्षित हो अपनी स्त्री सहित एकत्र हो आनंदित हुये और सारे दिन की थकावट को शान्त करने लगे। अब दो घण्टे के समीप रात्रि व्यतीत हुई, सब लोग अपने अपने शयन करने के प्रबन्ध में हैं। जहाँ तहाँ मनुष्य मण्डली अभी तक नहीं सोई है, कोई खेल और कौतुकों में मस्त है, कोई भ्रष्ट पुस्तकों का पाठ कर रहा है, कोई ईश्वर को त्याग प्रकृति की उपासना में निमग्न है और

इस समय के विद्वान् तत्वज्ञान और परोपकार त्याग केवल अपने स्वार्थ में आ इस वाक्य के अनुसार कि—"स्वार्थी दोषं न पश्यति' कर्म अकर्म, सत्य असत्य कुछ नहीं देखते।

महाशयो ! इसी अवसर में वह संन्यासी भी विचार रूपी समुद्र में गोते लगा रहा था कि यकायक उसका ख़्याल एक बाग़ीचे की ओर पहुंच गया। उसने वहाँ जाकर देखा कि यह कोई अपूर्व वाटिका है, क्योंकि इसमें बहुत से रंग विरंगे पुष्प फल आदि विद्यमान हैं और चित्र विचित्र भूषणों से भूषित शोभा दे रहे हैं। विचारा तो ज्ञात हुआ कि यह वाटिका किसी बड़े ही बुद्धिमान् की सुसज्जित की हुई है। इस वाटिका की शोभा देख संन्यासी का चित्त चाहा कि इसे अवश्य देखना चाहिये। वह सन्यासी उसी मनोहर वाटिका की ओर देखने की लालसा से जाकर वाटिका के पास पहुँचा। वहाँ क्या देखता है कि वाटिका की चारदीवारी बहुत ही ऊँची है और उसकी दृढ़ता तथा सुन्दरता भी विलक्षण ही है।

यह सब देख संन्यासी महाराज का चित्त अन्दर जाने को चाहा, इसलिए संन्यासीजी वाटिका का दर्वाज़ा ढूँढ़ने लगे, परन्तु उन्होंने दर्वाज़ा न पाया। कुछ देर के बाद उनको एक नहर देख पड़ी कि जिससे उस वाटिका में पानी जारहा था। यह बेचारा उसी नहर के तट पर बैठ गया और अन्दर पहुंचने यत्न सोचने लगा, इसी विचार में था कि यकायक उसे एक मित्र मिल गया जिसका नाम बुद्धि था। संन्यासी ने अपने मित्र से निवेदन किया कि मुझे इस वाटिका के देखने को इसका दर्वाज़ा बताइये। संन्यासी ने अपने मित्र की बहुत काल तक सेवा की, तब उस मित्र ने उसका फाटक बतलाया। संन्यासी उस फाटक की सुन्दरता देख महा सुखी हुआ। इसके मेहराब की वक्रता ऐसी बुद्धिमत्ता से बनाई गई थी कि जिसकी बनावट एक अपूर्व

शोभा दिखला रही थी और उस मेहराब में नाना प्रकार के बहुमूल्य चमकीले पत्थरों से चित्रकारों ने ऐसी चित्र विचित्र रचना की थी कि जब दिवाकर की किरणें उस पर पड़ती थीं, तो ऐसा ज्ञात होता था कि मानो दूसरा सूर्य इस मेहराब में चमक रहा है। संन्यासी इस शोभा को देख कर आश्चर्य में था। उसके मित्र ने कहा—"चलिये, अब मैं तुमको वाटिका दिखलाऊँ।" संन्यासी मित्र के साथ अन्दर गया, पर फाटक की अपूर्व छटा उसे बार-बार याद आती थी। कुछ देर में वह वाटिका में पहुँचा तो वाटिका की अनुपम छटा देख अत्यन्त प्रफुल्लित हुआ। पुनः अपने मित्र के साथ इधर उधर घूम वाटिका को देखा और उसकी विचित्रता से संन्यासी दंग था। इस लिये कि उसके सम्पूर्ण पदार्थ ऐसी बुद्धिमत्ता के साथ चुने थे कि एक-एक को देख संन्यासी चकित था और जब वह उनकी बनावट पर अपनी बुद्धि दौड़ाता, तो बाग़ के पेड़ों का मन्द-मन्द उन्मत्तता से झूमना और पक्षियों का नाना प्रकार की प्यारी-प्यारी आवाज़ों का करना, बुलबुलों का फूलों पर गिरना, फूलों का खिलना, नरगिस की नज़रबाज़ी आदि विचित्र तमाशे देख संन्यासी अपने आपे में न रहा। थोड़े दिन वह उस बाग़ में रहा, पुनः बाहर निकल भ्रमण करने लगा। बहुत दिन बाद उसे पूर्व की दिशा में एक चारदिवारी नज़र आई जैसी कि उसने उस बाग़ में देखी थी। चश्मा और नहर उससे बहुत कम चौड़ी थी परन्तु दर्वाज़ा खुला हुआ था और दीवार गिरी पड़ी और टूटी फूटी थी। चारों ओर से नये-नये क़िस्म के पशु पक्षी आदमी आदि आ-आ कर अपने मन चाहे हुए पदार्थ निर्भयता से बैठे खा रहे थे और कोई तोड़-तोड़ ले जा रहे थे और वाटिका के बाग़बान सब गाढ़ निद्रा में सो

रहे थे। सन्यासी ने अपने मित्र से पूछा —"यह तो मुझे वही वाटिका ज्ञात होती है परन्तु नहीं मालूम कि इसकी यह दशा क्यों हो गई ? न तो दीवार ही में वह सुन्दरता देख पड़ती है न दर्वाज़े ही में वह शोभा है, नहर का पानी भी वैसा स्वच्छ नहीं देख पड़ता बल्कि उसके स्थान पर गँदला और महामटमैला जल बह रहा है। इस पर उसके मित्र ने बतलाया कि यह वह वाटिका नहीं है बल्कि दूसरी है यह पतझाड़ में ऋतु से शुष्क हो रही है और समय के हेर-फेर यानी परिवर्त्तन से बर्बाद हो गई है। यह सुन संन्यासी उस बाग़ के अन्दर जो गया तो उसको बाग़ के कुछ चिन्ह दिखलाई दिये, मगर न वह स्वच्छता थी न वह चहल-पहल ही थी। नहर में कुछ पानी बह रहा था, मगर वह सफ़ाई और सुन्दरता न थी। फूल जितने थे सब कुम्हिलाये और मुरझाये हुए पड़े थे। जहाँ घास अपनी हरियाली से तरह-तरह की सुन्दरता दिखलाती थी वहाँ अब शुष्क हो हो कर काली हो रही है। जहाँ सुन्दर विविध समीर शीतल मंद सुगन्ध मनको प्रफुल्लित करती थी वहाँ अब आँधी ज़ोर से हाहाकार उठा रही है। जहाँ पिक और कोयल आदि अपने २ प्यारे स्वरों से चित्त को आनन्दित करते थे, वहां अब नीच काक और उलूक घृणित स्वरों से चित्त को दुखित कर रहे हैं। वह संन्यासी यह सब देखता हुआ नहर के तट पर पहुंचा। वहाँ क्या देखता है कि थोड़े से महा स्वरूपवान नवयुवक पुरुष आकर उसी नहर में डुबकी लगाकर नहाने और पानी पीने लगे। जब वे वहां से निकले तो उन लोगों की शकल पलटी हुई थी। न वह धर्म कर्म, न वह बल बुद्धि, न वह शील स्वभाव ही था और सब के दो २ सींग निकल आये और एक दूसरे से इस कवि वाक्य के अनुसार कि —

लोकानन्दनचन्दन द्रुमसखे नास्मिन्वने स्थीयताम्।
दुर्वंशैः पुरुषैरसार हृदयै राक्रान्त मेतद्वनम्॥
ते ह्यन्योन्य निघर्षजातदहन ज्वालावलिसंकुलाः।
न स्वान्येव कुलानि केवल महो सर्वं दहयु र्वनम्॥

लड़ने लगे। किसी का हाथ किसी का पैर आदि टूटे, यानी इसी प्रकार असभ्यता का संग्राम करते करते जा रहे हैं।

संन्यासी भारतरूपी उपवन की यह दुरव्यवस्था देख दुःखी हुआ और उसमें सुखपूर्वक रमण करनेवाली भारत-सन्तान की वह दुर्दशा देख उसका दिल भर आया और ठंढी आह भर कर बोला—"क्या इस उपवन का सुधारक कोई माली ईश्वर भेजेगा?"

६३--शील

एक ग्राम में दो भाई रहा करते थे। उनमें से एक अत्यन्त ही विद्वान, मधुरभाषी, सरल और शांत तथा किसी दूसरे के विशेष क्रोध करने या साधारण दबाने पर बेचारा तत्काल ही दब जाता था और सदैव ऐसे स्थान में बैठता था कि जहां से कोई न उठा सके। और दूसरा निरक्षर भट्टाचार्य्य, अत्यन्त कटुवादी लकड़ी सी तोड़नेवाला और दूसरे के किंचित् क्रोध पर उसका सिर फोड़ देने वाला था इन दोनों में पहला भाई अपने ग्राम में जिस किसी काम के लिए किसी के पास जाता तो लोग तुरन्तही इसकी सहायता करते थे और जब यह दूसरा किसी के पास जाता तो लोग इससे बात भी नहीं करते थे। अतः इसने एक दिन अपने भाई से पूछा कि--"भाई, तुम्हारे पास इस

कौन सी युक्ति है कि जिस से तुम से सब से मेल रहता है और आप सब जगह से अपना काम कर लाते हैं, पर हम जहाँ जाते हैं वहाँ लोग हमसे बात भी नहीं करते।' भाई ने उत्तर दिया—"सब जगह से काम कर लाना तो क्या बल्कि—

वन्हिस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत् क्षणात्।
मेरुः स्वल्प शिलायते मृगपतेः संघः कुरंगायते॥
व्यालो माल्य गुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते।
यस्यांऽगेऽखिल लोकवल्लभतमं शीलं समुन्मीलति॥

अर्थ—अग्नि उस पुरुषको जल के समान जान पड़ती है और समुद्र स्वल्प नदी सा तथा मेरु पर्वत स्वल्प शिला के तुल्य जान पड़ता है और सिंह शीघ्र ही उसके आगे हरिन बन जाता है, सर्प उसके लिए फूल की माला बन जाता है, विष-रस उस पुरुष को अमृत की वृष्टि के समान हो जाता है जिस पुरुष के अङ्ग में समस्त जगत् का मोहने वाला शील (नम्रता) प्रकाशमान है। बस, यही युक्ति है, सो आप भी धारण कीजिये। किसी भाषा कवि का वाक्य है—

दोहा-गिरि ते गिरि परबो भलो, भलो पकरिबो नाग।
अग्नि माहिं जरिबो भलो, बुरो शील को त्याग॥

१६७—सन्तोष

एक सेठ जी बड़े धनाढ्य और अत्यन्त पुरुषार्थी, कुटुम्ब से भरे पुरे एक ग्राम में रहा करते थे और उनके समीप ही उसी ग्राम में एक अति दीन, पढ़ा लिखा विद्वान् ब्राह्मण रहा करता

था। यह ब्राह्मण बड़ा ही सहनशील और सन्तोषी था, जो कुछ अपने परिश्रम से उपार्जन करता उसी में आनन्दित रहता, परंतु सेठजी सदैव तृष्णा की तरङ्गों में ही गोते खाया करते थे। इस कारण सेठजी यद्यपि ब्राह्मण से बहुत धनवान् और परिश्रमी थे तथापि इस कवि वाक्य के अनुसार—

निःस्वो वष्टि शतं, शती दशशतं, लक्षं सहस्राधिपो।
लक्षेशः क्षितिपालतां, क्षितिपतिश्चक्रेश्वरत्वं पुनः॥
चक्रेशः पुनरिन्द्रतां, सुरपति ब्रह्मास्पदं वाञ्छति।
ब्रह्मा विष्णुपदं पुनः पुनरहो तृष्णावधिं को गतः॥

अर्थात्—निर्धन मनुष्य सौ रुपये चाहता है, सौ वाला सहस्र, सहस्रवाला लक्ष, लक्ष वाला राज्य, राजा चक्रवर्त्ती होना चाहता है, चक्रवर्ती इन्द्र पदवी और इन्द्र ब्रह्मा पद, ब्रह्मा विष्णु पद अतः इस तृष्णा का अन्त किसने पाया है? इसकी अवधि को किसने प्राप्त किया है? इसी प्रकार सेठ को भी दिन रात यही पड़ी रहती थी कि अब सौ के दो सौ और दो सौ के चार सौ कर लें। इस से सेठजी खाना पीना सोना, अच्छे वस्त्र पहनना आदि सभी तृष्णा की तरङ्गों में भूले रहते और दिन रात इसी हाय हाय में लगे रहते थे। एक दिन पड़ोसी ब्राह्मण सेठजी को समझाने लगा—"सेठजी, देखो संसार दुःखों का मूल है, इसमें मनुष्य को कभी सुख नहीं मिल सकता है, हाँ यदि कुछ सुख मिल सकता है तो केवल एक सन्तोषी पुरुष ही को। आप भली भाँति जानते हैं कि विशेष ख्वाहिशों का बढ़ना ही मनुष्य के लिये महान् दुःख और बन्धन का हेतु है। मनुष्य की जैसे जैसे ख्वाहिशें बढ़ती जाती हैं वैसे ही वैसे वह उनके पूरा करने के प्रयत्न में लगता है और उनके पूरा हो जाने पर

सुख और अधूरा रहने में मनुष्य को दुःख हुआ करता है।"
परन्तु सेठजी का मन उस समय इन बातों पर न बैठा। एक बार सेठजी अपने घर के द्वार पर बैठे थे कि उनको एकाएक यह सूचना मिली कि आपकेलड़के के लड़का उत्पन्न हुआ। सेठजी यह सूचना पा अत्यन्त हर्षित हो रहे थे। नाना प्रकार के उत्साह सेठजी मना रहे थे कि इतने ही में घर से दूसरी खबर आई कि जो लड़का उत्पन्न हुआ था वह और उसकी माता दोनों का देवलोक हो गया। सेठजी यह खबर सुनते ही महान दुःख सागर में डूब गये और सिर पटक २ कर रोने लगे। इस विकलता में सेठजी पड़े ही थे कि अनायास थोड़ी ही देर में एक दूत ने आकर यह कहा कि अमुक वर्ष में जो आपने अमुक माल पर एक चिट्ठी डाली थी वह माल आप ही के नाम पड़ गया और एक लाख का माल लदा हुआ आपका जहाज़ आ रहा है। सेठजी पुनः उस पौत्र तथा उसकी माता के कष्ट को भूल एक लाख के माल की प्राप्ति की प्रसन्नता में निमग्न हो गये और दूत से प्रश्नोत्तर करने लगे कि वह जहाज़ अब कहाँ तक आया होगा, तुमने कहाँ छोड़ा था? यह कह ही रहा था कि थोड़ी ही देर के बाद एक दूसरे दूत ने आकर यह संदेशा दिया कि वह जहाज़ जो आप चिट्ठी में जीते थे, आ रहा था, लेकिन फलाँ बन्दर पर तूफ़ान के आने से डूब गया। सेठ सुन फ़िर उसी दुःख सागर में पड़ गये और सोचने लगे कि यथार्थ में सांसारिक ख्वाहिशों को बढ़ा उनका पूर्ति के लिए तृष्णा की तरङ्गों में पड़ना दुःख ही का कारण है। सेठजी ने उसी दिन से तृष्णा पिशाचिनी को त्याग संतोष साधु की शरण ली। किसी कवि ने सच कहा है कि—

सन्तोषः परमं लाभः सन्तोषः परमं धनम्।

सन्तोषः परमं चायुः सन्तोषः परमं सुखम् ॥

अर्थ—सन्तोष ही परम लाभ है, सन्तोष ही परम धन है, संतोष ही परन आयु है, संतोष ही परम सुख है ।

———

१६८--अत्यन्त दब्बू रहने से हर क़ौम अपने स्वरूप और बल तथा अधिकारों का भूल जाती है

एक बार एक शेर के बच्चे को एक गड़रिया जंगल से उठा लाया और उसको अपनी भेड़ों के साथ रखने लगा । शेर का बच्चा भेड़ों की ही रहन सहन की भाँति रहा करता, भेड़ों ही के साथ चरा करता, जहाँ वे बैठतीं वहीं वह बैठा रहता, जहाँ से उठ कर वे चल देतीं वह भी चल देता जैसे वे घुटने तोड़कर पानी पीतीं वैसे ही पानी पीता, जैसे वे मिमियातीं वैसे ही वह भी बोला करता । गड़रिया जिस प्रकार अपनी भेड़ों पर शासन रखता था इसी प्रकार शेर पर भी शासन रखता था यानी जिस समय गड़रिया दूरही से शेर को डाँट बतलाया करता तो शेर वहीं से वापिस आ बेचारा दीन हो चुपचाप खड़ा हो जाता था। एक दिन ऐसा हुआ कि एक दूसरा बड़ा बलवान शेर जंगल में जहां गड़रिया भेड़ें चरा रहा था आया और आकर इतनी ज़ोर से गरजा कि गड़रिये की सारी भेड़ें भग गईं और गड़रिया मारे डर के एक वृक्ष के ऊपर चढ़ गया । उस बलवान शेर ने उन भगी हुई भेड़ों का पीछा किया । उन्हीं के झुण्ड में वह शेर भी भगा जा रहा था जो कि बचपन से गड़रिये के दबाव में भेड़ों के साथ रहता था । थोड़ी ही दूर के बाद एक जलाशय पड़ा । शेर उसे उल्लंघन कर जलाशय के उस किनारे

पर खड़ा हो रहा और पीछे की ओर देखने लगा कि इतने में यह दूसरा बलवान शेर भी जलाशय के इधर के किनारे पर पहुँचकर दहाड़ने लगा। भेड़ों के साथ के रहने वाले शेर ने जल में उस सिंह की और अपनी दोनों की एक ही प्रकार की परछाहीं देख सोचा कि मैं भी तो वही हूं जो यह है, मैं क्यों भागता हूँ। बस, मैं भी तो वही हूँ यह ध्यान आते ही इसे अपने भूले हुए स्वरूप, बल और अधिकार का ज्ञान आ गया और इसने भी दहाड़ मारी। इसके दहाड़ मारते ही वह बलवान शेर तो ढीला पड़ वहाँ से लौट गया, क्योंकि उसने समझ लिया कि यह भेड़ों का समुदाय नहीं किन्तु सिंहों का समुदाय है और भेड़ें भी इसकी दहाड़ सुन इसके साथ से भग खड़ी हुईं और गड़रिया भी वैसा ही भय करने लगा जैसा इस बलवान शेर से करता था। कहाँ तो इस पर शासन करता था और अपनी डांट के साथ इसको इधर उधर घुमाता था, कहाँ फिर उसके पास भी जाने में भयभीत होने लगा।

पदस्थितस्य पद्मस्य मित्रे वरुणभास्करौ।
पदच्युतस्य तस्यैव क्लेशदाहकरावुभौ॥

१६९—शांति से लाभ

सिकंदर यूनान का एक बड़ा ही दिग्विजयी और प्रसिद्ध बादशाह था। उसने सुना कि अमुक स्थान में एक बड़े ही पहुंचे हुए प्रसिद्ध महात्मा रहते हैं, सिकंदर उन महात्मा की परीक्षार्थ वहाँ गया और समीप के ग्राम में ठहर कर एक दूत के हाथ कहला भेजा कि जाओ उस साधु से कह दो कि "—दिग्विजयी

सिकन्दर बादशाह आया है और उसने आप को बुलाया है, अगर आप नहीं चलेंगे तो आपको मरवा देगा।" महात्मा ने पूछा—"दिग्विजयी का अर्थ क्या है?" उसने कहा—"सबको जीतनेवाला, सबको मार कर बस में करने वाला।" महात्मा ने पूछा—"सिकन्दर कितना करोड़ दो करोड़ मन खाता है?" दूत ने कहा—"नहीं नहीं।" तब महात्मा ने कहा—"तो लाख दो लाख मन का खानेवाला तो हो ही गा?" दूतने कहा—"नहीं महाराज, लगभग आध सेर के, जितना कि अन्य लोग खाते हैं उतना ही अन्न सिकन्दर भी खाता है।" साधू ने कहा—"तुम्हारे बादशाह से तो यह वृक्ष अच्छा है जो बिना किसी की हिंसा किये मेरा पेट भर देता है।" दूत ने जाकर ऐसा ही सिकन्दर बादशाह से कहा। दूत के मुख से यह वाक्य सुनते ही सिकन्दर के रोमांच खड़े हो गये और सिकन्दर जाकर उन महात्मा साधू के चरणों पर गिर पड़ा और बोला कि—"जिस सिकन्दर ने बड़े २ राजों के शिर नीचे किये अथवा बड़े-बड़े राजाओं के शिर अपने चरणों पर गिरवाये, वही सिकन्दर आज आपकी शांति के सामने शिर को आपके चरणों पर रक्खे है।"

१७०—दो किसी के पास नहीं आते

राजा रणजीतसिंहजी के पास एक साधू गये और जाकर यह कहा कि—"महाराज, हमने कभी अशरफ़ी नहीं देखी, सो आप कृपा कर हमें अशरफ़ी दिखलवा दें।" राजा साहब ने कुछ अशरफ़ियें महात्मा जी के सामने रखवा दीं। पुनः कुछ देर के बाद महात्मा ने राजा साहब से कहा कि—"अब ये अशर-

फ़ियें आप उठवा लें ।" राजा साहब ने कहा कि—"अब ये अशरफ़ियें मुझे उठवाकर क्या करना है, आप ही ले जाइये ।" महात्माजी ने कहा कि-"हम तो संन्यासी हैं, हम द्रव्य नहीं छूते ।" राजा ने कहा—"जिन पुरुषों को ब्रह्मज्ञान होता है या जिनको रासायनिक ज्ञान होता है, ये दो प्रकार के महात्मा हम लोगों के तो क्या बल्कि किसी के भी दरवाज़े पर नहीं जाते ।"

१७१—बनावटी महात्मा

एक पादरी साहब एक शहर में उपदेशार्थ गये। वहाँजाकर एक मछली बेचने वाले की दूकान के सामने उपदेश करने लगे कुछ देर के बाद जब दूकान वाले का चित्त कुछ इधर उधर हुआ तो पादरी साहब मछलीवाले की दूकान से एक मछली चुरा अपने पाकट में डाल कर चल दिये। यह बात दूकान वाले को मालूम हो गई। तब तो दूकानवाला वहाँ से दौड़ पादरीजी के पास आ हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया और कहा—"महाराज पादरी साहब, आपके उपदेश से तो मुझे ईश्वर मिल गया और आयतें उतरने लगीं। पहली आयत यह उतरी है कि—'या तो मछली छोटी चुरावे या फिर पाकट बड़ी रखावे।'

आबद्ध कृत्तिम सटा जटिलां सभित्ति,
रा रोपितो मृगपतेः पदवीं यदिश्वा ।
मत्तेभ कुम्भपरिपाटन लम्पटस्य,
नादं करिष्यति कथं हरिणाधिपस्य ॥

१७१–बदमाशों की दशा और उत्तम स्त्रियों को दुष्टों से अपनी धर्म-रक्षा

महाराज भोज के राज्य में एक वररुचि नामक ब्राह्मण पण्डित रहता था। इस ब्राह्मण से किसी अपराध होने के कारण राजा ने उसको निकलवा दिया। ब्राह्मण जिस समय ग्राम से जाने लगा तो अपनी स्त्री से कह गया कि—"मेरा इतना इतना रुपया अमुक सेठ के यहाँ जमा है, अतः जब तुझे आवश्यकता पड़े तब मँगवा लेना।" जब वररुचि ब्राह्मण राज्य से चला गया तो कुछ काल के बाद उसकी स्त्री ने अपनी दासी को भेज उस सेठ से रुपया मँगवाया, किन्तु सेठ ने दासी से कहा कि इस समय मेरी बही वगैरा सब राजा के यहाँ चली गई हैं, इस लिये रुपया नहीं मिल सकता।" दासी ने आकर ऐसा ही वररुचि की स्त्री से कह दिया। ब्राह्मणी सुन कर विवश हो चुप रही कुछ काल के पश्चात् वररुचि की स्त्री अपनी दासी के साथ अपने ग्राम के समीप जो नदी थी उसमें एक दिन स्नान करने गई। ब्राह्मणी स्नान करके लौटी आ रही थी कि इतने में वह सेठ जिसके पास वररुचि महाराज का रुपया जमा था मिल गया और वररुचि की स्त्री को देख मोह वश हो उसने दासी से पूछा कि—"यह किसकी स्त्री है?" दासी ने कहा कि—"यह महाराज वररुचि की स्त्री है।" तब तो सेठ ने कहा कि—"इससे कह दो कि जब रुपये की आवश्यकता पड़े तब मँगा लें।" वररुचि महाराज की स्त्री ने कहा कि—'खैर रुपये की तो जब आवश्यकता पड़ेगी तब मँगा ही लूँगी, पर आप मुझे सायंकाल को मिलें, आप से कुछ कार्य्य है।" यह वार्त्ता कह ब्राह्मणी कुछ ही दूर चली थी कि मार्ग में इसे

कोतवाल साहब मिले और इसे देख मोह वश हो इस से बोले कि—'तू किसकी स्त्री है, कहाँ गई थी?'' ब्राह्मणी ने कहा—"मैं वररुचि की स्त्री हूँ, अमुक स्थान में रहती हूँ।" पुनः कोतवाल ने ब्राह्मणी से कुछ बुरा संकेत किया। तब ब्राह्मणी ने कहा-"आप दस बजे रात को मेरे मकान पर आइयेगा।"जब ब्राह्मणी कुछ आगे चली तब एक दीवान साहब मिले और उन्हों ने भी ब्राह्मणी को देख मोहवश हो पूछा—"तू कहाँ रहती है, किसकी स्त्री है?" वररुचि की स्त्री ने इन्हें भी अपना समाचार बतला एक बजे रात को इन्हें भी बुलाया और ब्राह्मणी अपने घर पहुँची। सायंकाल को सेठजी बड़े उत्साह और सज-धज से वररुचि महाराज के घर पहुँचे। ब्राह्मणी ने प्रथम ही अपनी दासी से तीन सकोरों में तीन प्रकार के रंग, एक में काला, दूसरे में लाल, तीसरे में पीला, घुलवाकर एक कोठरी में रख छोड़ा था और वहीं तीन बड़े-बड़े सन्दूक़चे मँगवा रक्खे थे। जब सेठजी पहुँचे तो वररुचि महराज की स्त्री ने कहा कि—"आप अन्दर चलिये और वहाँ यह दासी आपको स्नान करायेगी, तेल लगायेगी और जब आप शुद्ध हो जाएँगे तो मैं आपके पास आऊँगी।" जब सेठजी मकान के अन्दर कोठरी में पहुँचे तो दासी ने स्नान करा काले रंग का तेल सेठजी के सम्पूर्ण शरीर में लगाया कि इतने में ही कोतवालजी भी पहुँचे और ब्राह्मणी की ज़ंजीर खटखटाई। वररुचि महाराज की स्त्री ने कहा-"कौन है?" इसने कहा—"मैं कोतवाल हूँ, खोलो किवाड़े" तब तो सेठ ने कहा कि—"मैं कहां जाऊँ, अब क्या करूँ।" ब्राह्मणी ने कहा कि—"आप इस सन्दूक़ में बैठ जाइये।" यह सुन सेठ सन्दूक़ में बैठ गये। ब्राह्मणी ने सन्दूक़ बन्द कर कोतवाल को किवाड़े खोले और कुछ वार्त्ता के बाद कोतवाल से भी वैसा ही कहा कि-"आप मकान के अन्दर जाइये, आपको यह दासी स्नान

वगैरा करा तेल लगयेगी। इस भाँति आप शुद्ध हूजिये। पुनः मैं आऊँगी।" तब तो कोतवाल साहब अन्दर पहुँचे और दासी ने उन्हें स्नान करा, लाल तेल इनके सारे शरीर में मल दिया। इतने ही में दीवान साहब पहुँचे और पहुँच कर दर्वाज़े की जंजीर खटखटाई। तब ब्राह्मणी ने कहा कि—'कौन है?" दीवान साहब ने कहा कि—"मैं दीवान हूँ।" यह सुन कोतवाल साहब ने कहा कि—'अब मैं कहां जाऊँ क्या करूं, अगर दीवान जान गया तो मेरी तो नौकरी जायगी?' वररुचि की स्त्री ने कहा कि—"आप इस सन्दूक में बैठ जाइये।" कोतवाल साहब जब सन्दूक में बैठ गये तब ब्राह्मणी ने वह भी सन्दूक बन्द कर दर्वाजे के किवाड़ दीवान को खोल दिये और दीवान से भी इसी प्रकार कहा—"आप अन्दर चलकर शुद्ध हूजिये पुनः मैं आऊँगी।" जब दीवान साहब अन्दर पहुँचे तो दासी ने स्नानादि करा इनके शरीर भर में पीले तेल का रङ्ग मल दिया कि इतने ही में वररुचि की स्त्री ने कहा कि—"हमारा एक आदमी आ गया, आप जरा इस संदूक में बैठ जाइये। पुनः मैं आपको निकाल लेऊँगी।" जब दीवानजी भी सन्दूक में बैठ गये तब ब्राह्मणी शीघ्र ही सन्दूक बन्द कर दुपट्टा तान सो रही और प्रातःकाल होते ही उसने राजा के यहाँ रिपोर्ट की कि—"मेरे यहाँ चोरी हो गई" जब राजा के यहाँ से सिपाही नक़ब देखने आये तब ब्राह्मणी ने कहा कि—"मेरा इतना इतना धन तो चोर ले गये और मेरे घर में ये तीन सन्दूकें छोड़ गये हैं, सो ले जाइये।' राजदूत वे तीनों सन्दूकें आदमियों के सिर पर लदा राजदरबार में पहुँचे। और साथ ही वररुचि महाराज की स्त्री भी पहुँची। महाराज, भोज ने पूछा—"तू कौन है, क्या हुआ?" ब्राह्मणी ने उत्तर दिया कि—'महाराज, मैं वररुचि की स्त्री हूं, मेरे स्वामी अमुक अपराध से जब आपके

राज्य से निकाले गये तब मुझ से कह गये थे कि मेरा इतना २ रुपया अमुक सेठ के पास है, सो जब तुम्हें आवश्यकता पड़े तब मँगा लेना। सो मैंने उन सेठ के यहाँ से रुपया मँगाया परन्तु महाराज वह नाना प्रकार के बहाने करता है, रुपये नहीं देता और इस बात की मेरी ये दोनो सन्दूकें गवाह हैं।" राजा ने कहा कि—"यह कैसा ?" तब तो स्त्री ने एक सन्दूक़ पर हथेली फटफटा कर कहा-"कहरे करियादेव! मेरा इतना रुपया सेठ पर है या नहीं ?" तब तो सन्दूक़ के भीतर से सेठ बेचारा डर के कहता है कि—"हूं हूं।" इसी भाँति दूसरे से कहा कि—"कहरे पीले देव, मेरा इतना रुपया सेठ पर है या नहीं ?" इसने भी कहा कि-"हूँ हूँ।" इसी भाँति तीसरे को भी पुकारा राजा को यह दृश्य देख बड़ा आश्चर्य हुआ। तब ब्राह्मणी ने राजा से सब सच्चा वृत्तान्त कह सुनाया कि महाराज, जब मेरा पति आपके राज्य से निकाला गया तो अमुक सेठ के यहाँ इतना रुपया बतला गया था। जब मैंने उससे मँगाया तब तो उसने दिया नहीं और एक दिन जब मैं स्नान को गई तो सेठ और आपके राज्य के कोतवाल और दीवान मुझे मिले और मुझे बुरी दृष्टि से देखा तो मैंने इन्हें बुलाया और ये तीनों मेरे घर पर मेरी इज्जत लेने गये थे, सो मैंने इस इस भांति इन्हें सन्दूक़ों में बन्द किया है, सो आप इन्हें उचित दण्ड दें।" तब राजा ने सन्दूक से तीनों देवों को निकलवा उचित दण्ड दिया।

१७३—सुशिक्षित माता का बेटा सुशिक्षित

एक बार महाराज भोज अपने पाठशाला में विद्यार्थियों की परीक्षा लेने गये। जब राजा सब ब्रह्मचारियों की परीक्षा ले चुके

तो अन्त में एक ब्रह्मचारी के सामने गये । राजा ज्योंही पहुँचे तो ब्रह्मचारी ने तुरन्त ही यह श्लोक बना कर पढ़ा कि—

त्वद्यशो जलधो भोज निमज्जन भया दिव ।
सूर्येन्दु बिम्ब मिसतो घन्ने तुम्बि द्वयं नभः ॥

अर्थ—महाराज, आपके यशरूपी समुद्र में डूबने के भय से आकाश सूर्य और चन्द्र इन दोनों को तूंबा बना घन्नै बाँध उस पर सवार हुआ है ।

तब महाराज ने बालक की इस चातुर्यता को देख अध्यापक महाराज से पूछा कि—"श्रीमान् पण्डितजी, इस बालक के विशेष चतुर होने का कारण क्या है ?" अध्यापकजी ने उत्तर दिया कि—"महाराज इस बालक की माता संस्कृत पढ़ी हुई है और उसने इसे प्रथम घर में ही कुछ साहित्य पढ़ाया है ।"

१७४–सब से बड़ा देवता कौन ?

एक राजा ने एक संन्यासी महाराज से पूछा कि—'महाराज, संसार में सब से बड़ा देवता कौन है ?' संन्यासी महाराज ने साधारण ही राजा साहब को शालिग्राम की एक काली सी बटिया उठाकर दे दी और कहा—'यही सब से बड़े देवता हैं ।" राजा साहब उस बटिया को अपने घर ले गये और उस की नित्य पूजा करने लगे । एक दिन राजा साहब ने शालिग्राम की बटिया पर कुछ अन्न का पदार्थ चढ़ाया था, इस कारण उस बटिया पर एक चूहा आकर उसे खाने लगा । जब राजा ने यह दृश्य देखा तो कहा कि—"शालिग्राम को हम सब से

बड़ा देवता मानते थे, आज तो इनके सर पर चूहा चढ़ा है, बस चूहा ही सब से बड़ा देवता है।" पुनः राजा साहब चूहे की पूजा करने लगे। कुछ काल के पश्चात् एक दिन चूहा राजा साहब की पूजा का सामान खा रहा था कि इतने में बिल्ली आगई और बिल्ली ने चूहे की ओर ज्योंही झपाटा मारा तो चूहा भगा। बस राजा साहब ने समझ लिया कि चूहा नहीं किन्तु बिल्ली ही सब से बड़ा देवता है और राजा साहब बिल्ली की पूजा करने लगे। कुछ ही काल के बाद एक दिन बिल्ली राजा साहब के पूजा के पदार्थ खा रही थी कि इतने में एक कुत्ते ने बिल्ली पर धावा किया और बिल्ली भागी। बस राजा साहब ने समझ लिया कि बिल्ली क्या बल्कि कुत्ता ही सब से बड़ा देवता है और वे उसी की पूजा करने लगे। कुछ दिन के बाद एक दिन ऐसा हुआ कि राजा साहब कुत्ते की पूजा की तैयारी कर ही रहे थे कि इतने में कुत्ता जहाँ कि रानी साहब रसोई बना रही थीं चला गया, रानी साहब ने एक चैला उठा उस कुत्ते के जमाया। अब तो राजा यह दृश्य देख दोनों हाथ जोड़ रानी के पैरों पड़ गये और कहा - "अरे बड़ा ही धोका हुआ, हम व्यर्थ ही इधर-उधर ढूँढ़ते रहे, सब से बड़ा देवता तो हमारे घर में ही मौजूद था" और उस दिन से वे नित्य रानी की पूजा करने लगे। कुछ काल के पश्चात राजा साहब को रानी साहब से किसी काम के बिगड़ जाने पर क्रोध आया और राजा साहब ने उठा रानी साहब के पाँच छः हण्टर रसीद किये। पुनः सोचे कि रानी क्या सब से बड़ा देवता तो हम हैं। बस राजा उस दिन से अपनी ही पूजा यानी अच्छी तरह से खाने पीने लगे। कुछ काल के बाद जब राजा साहब बीमार पड़े तो विशेष कष्ट होने पर इनके मुख से निकल गया - "हा राम।" बस राजा ने समझ लिया कि मैं भी कुछ नहीं,

संसार में सब से बड़ा देवता राम है। राजा साहब उसी दिन से राम की उपासना करने लगे और अन्त में मोक्ष प्राप्त की।

१७५—खुदा को दीमक खागई

आप लोग सुन के चकित होंगे कि खुदा को दीमक खागई, यह क्या और किस प्रकार खुदा को दीमक खा गई? लीजिये सुनिये जिस प्रकार खुदा को दीमक खा गई—

एक महादेव का मन्दिर जंगल में था। एक महाशय वहाँ पहुँचे तो देखा कि मन्दिर तो बड़ा अच्छा बना है, पर इस में मूर्ति नहीं। कुछ लोग वहाँ पशु चरा रहे थे। जब उनसे पूछा तो मालूम हुआ कि इसमें चन्दन के काष्ठ की मूर्ति थी, उसको दीमक खा गई। वाहरे महादेव! जब तुम अपने को दीमक से नहीं बचा सके, तो अपने उपासकों को दुःखों से कैसे बचाओगे?

१७६—शुद्ध हो बुरे को शुद्ध कर सकता है तथा बन्धन से मुक्त हो बन्धनवाले को मुक्त कर सकता है

एक वैश्य को एक पण्डितजी ने भागवत की कथा सुनाई। जब सप्ताह समाप्त हुआ तो वैश्य ने कहा—"क्यों पण्डितजी महाराज, इस भागवत का तो यह माहात्म्य है कि जो कोई कथा सुने उसके लिये विमान आवे क्योंकि जब श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित को कथा सुनाई थी तो उनके लिये विमान आया

था फिर हमारे लिए क्यों नहीं आया?" पण्डितजी ने कहा कि -"अब कलियुग है इस लिए अब चतुर्गुण धर्म करने से वह फल होता है।' वैश्य ने ३००) उस कथा पर चढ़ाये थे अतः उसने ६००) और जमा कर दिये और कहा—"महाराज, तीन बार और सुनाइये।" पंडितजी ने सेठजी को तीन बार और सप्ताह सुनाई, पर विमान फिर भी न आया। अब तो बिचारे पण्डितजी भी बड़े ही चक्कर में पड़े कि यह क्या बात है? तब तो पण्डितजी सेठ को लेकर एक महात्मा के पास पहुँचे और सारा वृत्तान्त कह सुनाया कि—' महाराज, इन सेठजी को हमने लेखके अनुसार चार बार सप्ताह सुनाई, तब भी बिमान न आया, पर शुकदेवजीके तो एक ही बार सुनाने पर राजा परिक्षित के लिए विमान आया था।" तब महात्माजी ने उठकर उन पंडित महाराज और सेठ दोनों को बाँध कर डाल दिया। जब बहुत देर तक वे दोनों बँधे पड़े रहे तो दोनों एक दूसरे का मुंह ताकते रहे। तब महात्मा ने कहा कि—"क्यों एक दूसरे का मुँह देखते हो, खोल न लो?" कहा—"महाराज, हम नहीं खोल सकते, आप ही कृपा करके हमें खोल दीजिये।" महात्मा ने उन्हें खोल दिया और कहा— 'देखो, जिस प्रकार तुम दोनों बँधे होते हुए एक दूसरे को नहीं खोल सकते थे, इसी प्रकार तुम दोनों विषय-वासनाओं से बँधे हो, अतः एक दूसरे को खोल मुक्त नहीं कर सकते, पर श्रीशुकदेवजी महाराज शुद्ध थे, विषयों से मुक्त थे इसलिए परिक्षित को खोल सके।"

नोट—दृष्टान्त बिलकुल असम्भव है, यानी परिक्षित के लिए भी विमान नहीं आया, पर उपयोगी होने के कारण लिखा।

———

१९७-अमृत नदी

एक अँग्रेज़ ने लण्डन में यह सुना कि हिन्दुस्तान में एक अमृत नदी है, अतः उसने इस नदी के अमृत जल पान करने की अभिलाषा से हिन्दुस्तान को पयान किया। जिस समय वह लण्डन से कलकत्ता में आकर पहुँचा तो वहाँ के लोगों से पूछा कि—"क्यों भाइयो यहाँ पर अमृत नदी कौन सी है ?" लोगों ने कहा कि—'यहाँ अमृत नदी तो हम लोगों ने सुनी भी नहीं, पर गंगा नदी अवश्य है।' अँग्रेज़ ने समझा शायद गंगा नदी ही का नाम अमृत नदी हो, अतः उसने हबड़ा के पुल के नीचे जहाँ गंगा का महा गँदला जल था, चिल्लू में उठा पान किया और कहा कि—"यह अमृतनदी तो नहीं बल्कि इसे नरक नदी तो अवश्य कह सकते हैं" और उदासीन होकर लौट पड़ा और सोच रहा था कि मैं इतनी दूर से व्यर्थ आया। कुछ दूर चलने पर उसे एक पण्डित मिला। पण्डित ने साहब बहादुर को उदासीन देख पूछा—"साहब, आप उदासीन क्यों हैं ?" साहब ने कहा—"हिन्दुस्तानी लोग बड़े झूठे होते हैं।" पण्डित ने कहा—"कहिये तो कि हिन्दुस्तानी कैसे झूठे होते हैं।" उसने एक अखबार निकालकर दिखाया—"देखो इस में यह छपा है कि हिन्दुस्तान में एक अमृत नदी है, सो मैंने सर्वत्र पूछा पर कहीं पता न लगा और मैं लण्डन से यहाँ तक हैरान हुआ, व्यर्थ खर्चा उठाया।' पण्डित ने कहा कि—"आइये हम आपको अमृत नदी दिखलावें।" पण्डित ने साहब बहादुर को कानपुर ले जाकर उसी गंगा का जल पिलाया, तब साहब बहादुर ने कहा कि—"यह कुछ उससे अच्छा है।" तब पण्डित ने कहा कि—"आप कृपा कर थोड़ा और आगे बढ़िये।" जब साहब हरिद्वार पहुँचे तो पण्डित ने कहा कि—"हुज़ूर यहाँ का

तो जल पान कीजिये ।" साहब ने कहा कि—"यह तो बहुत ही अच्छा जल है ।" पण्डितजी ने साहब से प्रार्थना कर जब गंगोत्री पर ले जाकर जल पिलाया तो साहब ने कहा कि—"हाँ यह बेशक अमृत जल है और इसके पीने से यथार्थ में मनुष्य अमृत हो सकता है ।"

इसका दार्ष्टान्त यह है कि साहब बहादुर ने जो शिक्षारूप अमृत नदी सुनी थी, जब यहाँ आकर पूछा कि यहाँ शिक्षा में अमृत नदी कौन है, तो लोगों ने तंत्रों को बतलाया । तंत्रों को देख साहब ने बड़ा शोक प्रकाशित किया । पुनः पण्डित ने पुराणों को दिखाया तो साहब ने कहा कि इसमें भी वही तंत्र शिक्षा घुसी है । पुनः पण्डित ने स्मृतियों को दिखाया, तब साहब ने कहा हाँ ये कुछ अच्छी हैं, पर कुछ गँदलापन अवश्य है । पुनः पण्डितजी ने उपनिषद् दिखलाई तो साहब की आत्मा बहुत शान्त हुई और कहा यह बड़ा ही उत्तम जल है । पुनः पण्डित जी ने गंगोत्री अर्थात वेदोक्त दिखलाया तब तो साहब ने कहा कि हाँ यह बेशक अमृत नदी है और इसके पीने से मनुष्य अमृत हो सकता है ।

१७८—सनातन धर्म की गाड़ी ।

कुछ लोगों का झुण्ड सफर करते जा रहा था, पर मंजिले मक़सूद दूर होने के कारण लोगों ने सोचा कि यह मार्ग हम लोग बिना किसी तेज़ सवारी के तै न कर सकेंगे । पुनः सोचा कि आज कल सब सवारियों में अगर कोई तेज़ सवारी है तो रेल, अतः वह झुण्ड यह विचार स्टेशन पर पहुँचा और टिकट ले लेकर गाड़ी पर सवार हुआ, पर गाड़ी में एञ्जिन न

था और बहुत काल तक जब एञ्जिन न लगा तब कुछ लोग घबड़ाकर उतर पड़े और बाइसिकलों पर सवार हो चल दिये। जब कुछ काल और गाड़ी खड़ी रही और न चली तो लोगों ने सोचा कि हम सब गाड़ी में बैठनेवालों से तो वही अच्छे जो बाइसिकलों पर बैठ-बैठ चले गये, अतः यह सोच कुछ लोग गाड़ी से और उतरे और दो-दो घोड़ों की बग्घियों पर सवार हो-हो चल दिये। पर वह गाड़ी फिर भी न चली तो कुछ काल के बाद लोगों ने सोचा कि हम लोगों से तो वही अच्छे जो दो घोड़ों की बग्घियों पर चले गये। पुनः उस गाड़ी से कुछ लोगों का झुण्ड और उतरा और उतरकर तीन भैंसों की गाड़ी पर सवार हो हो और कोई-कोई गधों पर सवार हो हो चल दिये, पर जो लोग धैर्य्य धारण किये बैठे रहे कि जब टिकट बटा है और हम गाड़ी पर बैठे हैं तो कभी न कभी यह गाड़ी भी चलेगी। कुछ काल के पश्चात् एक ऐसे एञ्जिन ने कि जिसमें दो लाल २ शीशे सामने और एक हरा शीशा ऊपर लगा हुआ था बड़े ज़ोर से हाव-हाव करते हुए आकर एक ऐसी टक्कर गाड़ी में लगाई कि टक्कर लगते ही कुछ गिरोह डर कर उतर पड़ा कि कहीं गाड़ी लौट न जाय. बाक़ी और लोग बैठे रहे कुछ ही देर बाद वह गाड़ी भैंसे की गाड़ी और गधों की सवारीवालों को मिली। अब तो गाड़ी को आगे जाता देख भैंसों की गाड़ी तथा गदहे की सवारीवालों ने बड़ा ही पश्चाताप किया। पुनः थोड़ी ही देर बाद जो दो-दो घोड़ों की बग्घियों पर रवाना हुए थे, गाड़ी ने उन्हें भी पीछे किया, तब तो उन लोगों ने भी बड़ा ही पश्चाताप किया पुनः कुछ ही देर के बाद गाड़ी ने बाइसिकलवालों को भी पीछे किया तब तो बाइसिकलवाले भी पछताने लगे और सब के सब यह सोचने लगे कि अगर हम यह जानते कि यह गाड़ी सब से आगे निकल

जायगी तो हम इससे कभी न उतरते । पर अब पछताने से होता ही क्या है।

दृष्टान्त तो यह हुआ पर इसका दार्ष्टान्त यह है कि यह वैदिक धर्मरूपी गाड़ी जिसमें कि सम्पूर्ण संसार के मनुष्य मोक्षरूपी मंज़िले मक़सूद के जाने के लिए बैठे थे जिसके लिए अत्रि महाराज लिखते हैं कि—

वाल्हका पलवाश्चीना शूलीका यवनाशक ।
माष गोधूम महमादि श्वान वैश्वानरोचितः ॥

पर उस गाड़ी में एञ्जिन न होने के कारण (यानी महाभारत में सब विद्वानों के नाश हो जाने के कारण इस वैदिक धर्म की गाड़ी का घसीटनेवाला कोई एञ्जिन अर्थात् विद्वान न रहा था) प्रथम जो झुण्ड उतर बाइसिकल पर सवार हुआ वह वाममार्ग के बाद बौद्ध मत हुआ जो 'अहिंसा परमोधर्मः' की बाइसिकल पर सवार हो चल पड़ा था। पुनः जो दूसरा झुन्ड दो-दो घोड़ों की बग्घियों पर चला था वह मज़हब इसलाम दो घोड़ों की बग्घी यानी ख़ुदा और रसूल, इन दो को मानकर चल पड़े। पुनः तीसरा झुण्ड तीन भैंसों की गाड़ी तथा गधों की सवारीवाला ईसाई मत था, जिसमें तीन भैंसों की गाड़ी पिता, पुत्र, पवित्र आत्मा गदहे की सवारी आदि मानकर चलने लगे। पर कुछ काल के बाद उस वैदिक धर्म की गाड़ी में स्वामी दयानन्द बालब्रह्मचारी रूप एञ्जिन जिस के दोनों नेत्र सुर्ख और दिमाग़ विद्या से सब्ज़ यही एञ्जिन के तीन शीशे थे, हाव-हाव करना उनका संस्कृत भाषण था, उस एञ्जिन की ठोकर खण्डन मण्डन थी जिसमे कितने ही भयभीत हो कोई उन्हें अपना शत्रु समझ, कोई इसाई आदि समझ गाड़ी से उतर पड़े और जो हिम्मत किये बैठे रहे उन सबको मये उस गाड़ी के वह एञ्जिन लेकर

सब से आगे निकल गया। अब तो अपने-अपने पेट में सभी मतवादी चाहे ऊपर कुछ भी कहें पर इस गाड़ी में बैठने की इच्छा करते हैं, पर इस गाड़ी में यह भाव नहीं कि आगे निकलनेवालों को न बिठाले। यह एञ्जिन ऐसा है कि स्थान-स्थान पर खड़ा हो हो आगेवाले भाइयों को बिठालता जाता है और एक दिन आयेगा जब आप लोग संसार को इसी गाड़ी पर सवार देखेगें।

तसनीफ़ को समाज के फैलाओ हर तरफ़।
प्रकाश वेद पाक का पहुँचाओ हर तरफ़॥
संसार को दिखा दो कि किनके हो तुम सपूत।
सन्तान आर्यों के सपूतों के तुम हो पूत॥
दिखलादो धर्म-शक्ति को तुम में है जो स्वरूप।
तुमको न कोई कह सके फिर कलियुगी कपूत॥
इक इक नियम पै जब कि हज़ारों शहीद हों।
तब जानना कि आपके जीवन मुफ़ीद हों॥

१७९—मूर्खों के अस्त्र शस्त्र भी उन्हीं की मौत के हेतु होते हैं।

एक वैश्य बड़ा ही धनाढ्य था। उसने बहुत से बड़े-बड़े बेश कीमती हथियार मोल ले ले अपने घर में रख छोड़े थे। एक बार समय ऐसा आया कि सेटजी के घर में कई चोर घुस आये तब तो सेठानी ने कहा कि—"महाराज, आपके घर में चोर घुस आये।" सेटजी ने कहा—"घुस आने दो, कुछ परवा नहीं, हमारे

यहाँ बहुत से हथियार रक्खे हैं, हम उनका ठीक २ इन्तज़ाम कर देंगे।" जब चोर माल असबाब समेटने लगे तब सेठजी कहते हैं कि-"चल पाँच सौ वाली तलवार और एक हज़ार वाली बन्दूक, इन चोरों की ख़बर ले।" पर आप जानते हैं कि जड़ हथियार सेठ का यह हुकम कैसे सुन सकते थे, अतः चोर सब का सभी माल असबाब बाँध ले गये और सेठ पड़े पड़े ताकते ही रहे और पाँचसौ वाली हज़ारवाली करते रहे। अन्त में जब चोर चले गये तो कहा कि—"देखो तो इस तलवार में हमने पाँचसौ डाले पर इसने कुछ भी काम न दिया।" जब तलवार म्यान से निकाल सेठजी देखने लगे तो तलवार की धार कुछ सेठजी के हाथ में लग गई। सेठजी बड़े ही क्रोधित हुए और तलवार की धार ऊपर को कर उसको भूमि में रख एक लात ज़ोर से मारी और बोले—"ससुरी घर में ही घाव करना आवे है, बाहर न कुछ करतूत दिखाते बनी।"

शराफ़त को सरे आफ़त दग़ा को ख़ूब दुआ समझे।
पड़े इस अक्ल पर पत्थर अगर समझे तो क्या समझे॥

१८०—वर्त्तमान संन्यासियों की मण्डली।

एक सन्यासियों की मण्डली काशीजी पहुँची। वहाँ उनके महन्त ने अपने शिष्यों से कहा—"देखो बच्चा यहाँ अशुद्ध न बोलना, क्योंकि यह काशी है। यहां के पण्डित अक्खर को फोर डालते हैं।" यह बात चीत महन्तजी अपने शिष्यों से कर ही रहे थे कि इतने में एक काशीस्थ संन्यासियों की मण्डली भी आन पहुँची और काशी की मण्डली के महन्त तथा शिष्यगण बाहर वाली मण्डली से बोले-"दे दे मारौ महाराज, दे दे मारौ।"

दूसरी मंडली—"दे दे मारौ महाराज, दे दे मारौ, आइये।"

काशी की मंडली के महन्त बोले—"गीदड़ से आये महाराज?"

बाहर की मण्डली के महन्त—"श्री हगद्वारमूजी से आ रहे हैं।"

"जाओगे कहाँ को?"

"चुतरकोट को होते हुए गुदाभरी को जायँगे।"

"वहां क्या है महाराज?"

"वहाँ मैला है।"

'तो मैला में क्या होयगो?"

"भड़वारा होयगो।"

"कैसा भड़वारा होयगो महाराज!"

"ऐसा भड़वाड़ा होयगो कि एक २ मूत्तर के सामने दो दो पतुरियाँ पड़ जायँगी और फिर देन्दे भिष्टान, देन्दे भिष्टान, सेर २ भिष्टान्न तौ पड़ो रह जायगो।"

काशी की मण्डली-'अजी महाराज, आज भोजनों की क्या इच्छा है?"

बाहर की मण्डली के महन्त—"अजी महाराज, अपने राम तो संड ठहरे, कच्छु पावें कच्छुइ खाय लें, पर आजु तो अपने राम की दुर्गन्ध पान करके रहने की इच्छा है, क्योंकि अपने राम तो दोगधहारी ठहरे।"

"बाबाजी महराज कैसे बोलते हो?"

कहा—"जैसे हमारे गुरू ने गू खायो है वैसे ही बोलते हैं।"

कहिये जब संसार का उपकार करने वाली मण्डली का यह हाल है तो कैसे सुधार हो?

—:o:—

१८१–बुरे की टटोल

एक महात्मा के पास एक पुरुष धर्म-शिक्षा लेने गया। महात्मा ने कहा—"मैं तुम्हें धर्मशिक्षा दूँ, इससे पहले तुम हमको दुनिया में जो सबसे बुरी वस्तु हो वह ला दो।" यह महात्मा की आज्ञा मान बुरी वस्तु की खोज में चला और ढूंढते ढूंढते पाखाने के पास पहुँचा और सोचा कि इससे और बुरी वस्तु दुनिया में कौन सी होगी, अतः इसे ही ले चलूँ। जब यह पाखाना उठाने लगा तो पाखाना हटा और बोला कि—"हज़रत, मैं पहले उन लड्डू अमिरतियों के रूप में था कि जिनको मनुष्य की तो गिनती क्या बल्कि देवता भी तरसते थे, पर तुम मनुष्यों ने ही मुझको छूकर ऐसा बना दिया। सो महाराज, एक बार तो छूकर ऐसा बनाया, अब के जाने क्या बनाओगे।" उस पुरुष को वहीं ज्ञान प्राप्त हो गया और वह महात्मा के पास आकर हाथ जोड़ बोला—

बुरा जो खोजन मैं चला, बुरा न दीखा कोय।
जो दिल खोजा आपना, तो मो सम बुरा न कोय॥

नोट—इसमें मैले का बात करना शिक्षामात्र के लिये अलंकार है।

१८२—जब मनुष्य का चित्त किसी वस्तु में लग जाता है तो उसमें चाहे कितनी दुर्घटनायें पड़ें पर वह उनका ख्याल नहीं करता।

एक जार स्त्री का मन किसी पर पुरुष से लगा हुआ था और वह उसके मिलने को चली जा रही थी, मार्ग में एक मियाँ जी अपना रूमाल बिछाये हुए नमाज़ पढ़ रहे थे। स्त्री पर पुरुष के ध्यान में मियाँ के रूमाल को न देख उस रूमाल पर पैर रख कर चली गई। तब तो मियाँजी ने स्त्री से कहा कि—"ऐ औरत, तू देखती नहीं? क्या अन्धी है जो मेरे रूमाल पर लातें रख कर चली गई।" स्त्री ने कहा कि—

नर राँची मैं न लख्यो, तुम कस लख्यो सुजान?
पढ़ कुरान बौरा भये, नहिं जाने रहिमान॥

——॥○॥——

१८३—टालबाज़ी

(अच्छे कामों के लिऐ नित्य 'कल कर लेंगे' कहना।)

कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गमीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च।
एकः प्रमादी सकथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च॥

अर्थ—जब कि हिरन, हाथी, पतिंगा, भौंरा, मछली, ये पांचो एक एक विषय के ग्राही होते हुए इनमें फँस मौत को प्राप्त होते हैं तो भला मनुष्य जो कि पांचों यानी रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श के प्रेम में निशदिन इस कविवाक्य के अनुसार फँसा हो—

बन्धनानि खलु सन्ति बहूनि प्रेम रज्जुवत् बन्धनमन्यत् ।
दारु भेद निपुणोऽपि षडङ्घ्रिः पङ्कजे भवति कोशनिबद्धः ॥

अर्थ—बन्धन तो संसार में बहुत प्रकार के होते हैं, पर प्रेमरूपी रस्सी का बन्धन ही निराला है। देखो कड़ी से कड़ी बाँस की गांठ को काटनेवाला भौंरा कमल के फूल में बँधकर उसकी मुलायम पास को नहीं काट सकता और उसी में फँसा हुआ यह विचारता है कि—

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं भास्वान् देत्ति हसिस्यतिपद्मजालं । इत्थं विचिन्तयति कोशगतो द्विरेफे हा हन्त न्त नलिनी गज उज्जार ।

अर्थ—जब रात बीत जावेगी और प्रभात होगा तथा भुवन-भास्कर अपनी सहस्रों किरणों से उदय होंगे और कमल खिलेगा तब मैं फिर कल इस बन्धन से मुक्त होकर इधर उधर घूमूगा, अन्य फूलों का रस पान करूंगा, भौंरा ऐसा विचार कर ही रहा था कि आनयास एक हाथी उस ताल के तट पर आया और ताल में प्रवेश कर भौंरे को इस कमल के वृक्ष समेत खा गया और भौंरे के विचार मन के मन में ही रह गये।

इसका दार्ष्टान्त यों है कि यह जीवात्मारूपी भौंरा संसार रूपी ताल, शरीर रूपी कमल में खुशबू रूप पञ्चविषय, प्रेमरूप मायाजाल में पड़ा हुआ अच्छे-अच्छे उपदेश सुन-सुन यह मनोरथ किया करता है कि यह कल कर लूंगा यह परसों कर लूंगा, पर इसके यह विचार करते हुए ही अचानक कालरूपी हाथी आकर मए कमल के इकसोखा जाता है और इसके विचार मन के मन ही में रह जाते हैं। अतः—

काल करन्ते आज कर, आज करन्ते अब्ब ।
पल में परलै होयगी, बहुरि करोगे कब्ब ॥

१८४—मोक्ष सुख

राजा विक्रमादित्य के राजत्व काल में एक बहुत ही पढ़ा लिखा, सुयोग्य पण्डित, सदाचारी और संतोषी ब्राह्मण रहता था। एक दिन उसकी स्त्री ने कहा कि—"आप इतने भारी तो पण्डित हो, पर दीनता से इतना भारी क्लेश भोग रहे हो कि घर में भोजनों के लिये अन्न भी नहीं, ऐसा संतोष किस काम का? इस लिए कहीं बाहर जाकर कुछ धन इकट्ठा कीजिये जिससे यह कष्ट मिटे।" ब्राह्मण धन की चिन्ता में घर से निकल पड़ा और चलते-चलते एक वन में एक महात्मा के पास पहुंचा। महात्मा पूर्ण योगी और ब्रह्मज्ञानी थे, अतः उन्होंने इस ब्राह्मण को चिन्तित देखकर पूछा कि—"ब्रह्मदेव, आप कुछ चिन्तित से प्रतीत होते हो कहिये आपको क्या चिन्ता लग रही है?" ब्राह्मण ने कहा—"महाराज, मैं अपने घर का बहुत ही दीन हूं, इस लिए मुझे धन की चिन्ता लग रही है।" महात्मा ने पूछा कि—"भगवन्, आपको कितने धन की आवश्यकता है?" ब्राह्मण ने कहा—'जितना ही मिल जाय।" महात्मा ने कहा—"कुछ तो कहिये, लाख दो लाख करोड़ दो करोड़ वा चक्रवर्ती राज्य या क्या?" ब्राह्मण ने पुनः वही उत्तर दिया कि—"जितना मिल जाय।" तब तो महात्मा जी ने महाराज विक्रमादित्य जी को एक पत्र लिखा कि हमने आपको अमुक समय में इतनी योगक्रिया बतलाई थी, उसके बाद अब जो शेष है उसके लिये आप इसी समय अपना सारा राज्य इस ब्राह्मण को देकर चले

आइये, मैं बतला दूँगा। ब्राह्मण को यह पत्र दे महाराज विक्रमादित्य के पास भेजा। ब्राह्मण राजा के पास पहुँचा और पत्र हाथ में दिया। राजा पत्र पढ़ते ही इतना प्रसन्न हुआ कि उसके आनन्द की सीमा न रही और ब्राह्मण को राज्य देने के लिए तैय्यार हो गया। ब्राह्मण यह दृश्य देख महारानी मैत्रेयी की भाँति अर्थात् जिस समय महाराज याज्ञवल्क्य अपनी दो भार्यों मैत्रेयी और कात्यायनी को छोड़ वन को चलने लगे तो कहा कि देखो प्रिया मैत्रेयी, यह जो कुछ धन ऐश्वर्य है इसे तुम दोनों आधा-आधा बाँट लेना। तब तो महारानी मैत्रेयी ने कहा—

साहोवाच मैत्रेयी यन्नु म इयं भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णास्यात् स्यान्न्वहं तेनामृता हो नेति नेति सहोवाच याज्ञवल्क्यो यथैवोपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवित ँ स्यादमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्ते नेति ॥

अर्थ—महाराज, यदि समस्त पृथ्वी धन से परिपूर्ण हो और उस सबको आप मुझे दे देवें तो क्या मैं अमृत हो सकती हूँ? यह कई बार जब मैत्रेयीजी ने कहा, तो याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं कि भो मैत्रेयी, तू अमृत नहीं किन्तु जिस प्रकार अन्य धनिक अपना जीवन व्यतीत करते हैं वैसा ही तू भी करेगी, इससे अमृत की आशा मत कर।

तब मैत्रेयी ने कहा कि—

येनाहं नामृतास्यां किमहं तेन कुर्यात्।
यदेव भगवान् वेत्थ तदेव मे विब्रूहीति ॥

अर्थ-महाराज, जिस धन से मैं अमृत न हो सकूँगी उसे मैं ग्रहण करके ही क्या करूँ, सो आप जानते हैं। अतः मुझे वह उपदेश कीजिये जिस आनन्द के लिए आप सुन्दरी स्त्री, घर

बार, संपूर्ण ऐश्वर्य छोड़कर वन को जाते हैं और किंचित् भी आपके मुँह पर मलीनता नहीं है। इसी प्रकार उस ब्राह्मण के हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि देखो एक ये हैं जो इस राज्य के छोड़ने में इतने प्रसन्न हो रहे हैं और एक मैं हूँ जो इस राज्य को ग्रहण करता हूँ इससे यह ज्ञात होता है कि महात्मा जी के पास इस राज्य से भी कोई विशेष सुख है जिसके लिए राजा आनन्दित हो रहा है। यह सोच ब्राह्मण महाराज विक्रमादित्य से बोला कि महाराज, मैं एक बार फिर महात्माजी के पास हो आऊँ तब आकर राज्य ग्रहण करूँगा। राजा ने कहा कि जैसी आपकी इच्छा हो। ब्राह्मण पुनः महात्माजी के पास जाकर दोनों हाथ बाँध महात्माजी के चरणों में लोट गया और बोला—"भगवन्, मैं राजा के पास आपका पत्र लेकर गया, राजा तुरन्त ही राज्य छोड़ने और आपके पास आने को प्रस्तुत हो गया और उसके आनंद की सीमा न रही, इससे मुझे ज्ञात हुआ कि उस राज्य-सुख की अपेक्षा और कोई विशेष सुख आपके पास है, जिसके लिए राजा हर्षित हुआ, अतः आप दया करके मुझे उस सुख का उपाय बतलाइये।" महात्मा ने इसे प्रथम अधिकारी बना योगक्रिया सिखाना प्रारम्भ किया और सिखाते-सिखाते जब कुछ क्रिया शेष रही तो महात्माजी ने इस ब्राह्मण की परीक्षा ली। इसे एक ग्राम में मट्ठा लेने को भेजा। यह ग्वालिनियों के यहाँ जाकर मट्ठा पूछने लगा ग्वालिनियों ने कहा कुछ काल यहाँ बैठ जा, हमने अभी मट्ठा बिलोया नहीं, बिलो कर महात्माजी को मट्ठा देती हैं। यह ब्राह्मण योगी तो था ही और आप जानते हैं कि जब मनुष्य निठल्ला होता है तो जिस काम में उसका अभ्यास होता है या जैसा उसका स्वभाव होता है उसे ही वह करने लग जाता है, अतः ब्राह्मण ग्वालिनियों के घर से कुछ दूर पर जो एक पुरानी

दीवार थी उसके नीचे बैठ प्राणायाम करने लगा, किन्तु इसे स्वास चढ़ाने का तो अभ्यास था पर उतारने का न था, अतः ज्योंही इसने स्वास चढ़ाई तो इसकी समाधि लग गई और वर्षाऋतु होने के कारण दूसरे दिन इसके ऊपर वह दीवार कि जिसके नीचे यह बैठा था गिर पड़ी, पर परमात्मा की कृपा से इसके कोई चोट न आई किन्तु यह दीवार के अन्दर दब गया और स्वास निकलने का कोई छिद्र बना रहा जिससे यह तीन मास पर्यन्त वहीं समाधि में डटा रहा। जब दीवारवाला अपनी दीवार की मिट्टी समेटने के लिये दीवार की मिट्टी खोदने लगा तो एक बार फावड़े की चोट कुछ इसके सिर में लग गई, आप जानते ही हैं कि समाधि तीन चार दशाओं में खुल जाया करती है, यथा पानी के पड़ने, चोट के लगने आदि आदि. अतः चोट से जब इस ब्राह्मण की समाधि खुली तो यह बोल उठा कि "ला मट्ठा, ला मट्ठा।" खोदनेवालों ने समझा कि इसके भीतर कोई मनुष्य है इसलिए धीरे से जब ब्राह्मण को निकाला तो ब्राह्मण को होश आया और पूछने पर ज्ञात हुआ कि हम जब मट्ठा माँगने आये थे तब से तीन मास व्यतीत हो गये। वहाँ महात्मा ने तो जान ही लिया था कि जान पड़ता है कि मूर्ख ने कहीं समाधि लगा दी। जब तीन मास के पश्चात् यह महात्माजी के पास पहुँचा तो महात्मा जीने कहा—"कहिये तीन महीने तक मट्ठा ही माँगते रहे।" ब्राह्मण अत्यन्त संकुचित हो महात्मा के चरणों में गिर क्षमा माँग शेष क्रिया भी सीख जीवनमुक्त हो गया। सच है, असंख्यों चक्रवर्ती राज्यों का सुख मोक्ष सुख के कण के बराबर भी नहीं हो सकता। महात्मा कपिल ने लिखा है कि—

उत्कर्षादपि मोक्षस्य सर्वे उत्कर्षे श्रुतेः।

१८५–रईस और सईस

एक व्यक्ति ने एक से पूछा कि क्यों जी दुनिया में रईस किसको कहते हैं और सईस किसको कहते हैं? उसने कहा कि दोनों के कामों को जाँच कर जान लीजिये। क्या आप नहीं देखते हैं कि सईस प्रातःकाल उठते ही प्रथम घोड़े को थान के बाहर उसकी लीद या पेशाब कराने के ख्याल से निकालता है और आप उसके रात के थान को साफ कर पुनः खुरहरा ले घोड़े को खुजलाता है और खुजला कर कुछ थोड़ी घास डाल कर एक कूड़े में पानी तथा एक तौलिया ले उसे धोता पोंछता है। पश्चात् घोड़े को घास डाल खुरपा ले आप घास छीलने जाता है, वहाँ से आकर घोड़े को फिर कुछ घास डाल घास को झारता पीटता पुनः आप अपनी रोटी पानी बना खाकर चने ले घोड़े के लिए दाना दरकर उसे भिगो कर पुनः दूसरे समय फिर खुरहरा ले घोड़े को खुजलाता और यह भी देखा करता है कि घोड़ा कहीं दुबला तो नहीं हो गया आदि आदि, और रईस कल्पना कीजिये कि किसी रईस को किसी शहर को जाना है और रेलवे स्टेशन उसके ग्राम से दश या बारह मील है और वहाँ से उस शहर को गाड़ी दस बजे प्रातःकाल जाती है, रईस यहाँ प्रातःकाल उठ अपने नैत्तिक कार्यों से निवृत्त हो ठीक आठ बजे सईस को यह हुक्म देता है कि मैं अमुक स्टेसन को जाऊँगा इसलिए घोड़ा तैय्यार करो, साईस अपने मालिक की आज्ञा पाकर घोड़े को तैय्यार कर ले आता और कहता है कि महाराज घोड़ा तैय्यार है। रईस अपने कपड़े लत्ते पहिन ठीक नौ बजे चाबुक ले घोड़े पर सवार हो इस ख्याल को भुला कि चाबुक मारने से घोड़े के लगेगा या दौड़ने से घोड़ा थकेगा, अपने रेल के टाइम का पूरा ख्याल रखते हुए

सड़ासड़ चाबुक लगाता हुआ स्टेशन पर पहुंचता है चाहे घोड़ा मरे चाहे रहे। पुनः स्टेशन पर पहुँच घोड़े को छोड़ रेल पर सवार हो अपने नियत स्थान पर पहुँचता है।

इसका दार्ष्टान्त इस प्रकार है कि जो मनुष्य प्रथम तो आठ बजे तक पड़े पड़े अपशब्द किया करते हैं, फिर आठ नौ बजे उठ मकान रूपी थान से शरीर रूप घोड़े को निकाल पाखाने अर्थात् लीद कराने जाया करते हैं। पुनः पाखाने होकर मट्टी तथा दातौन रूप खुरहरा ले शरीर रूप घोड़े को खूब ही खुजलाते, पुनः कुल्ला दातौन कर प्रायः लोग कुछ खाकर पानी पीते हैं, वही प्रातःकाल की घास डालना है, पुनः खारा खुरपा ले घास छीलने जाते अर्थात् बहुत से मनुष्यों को कुल्ला दातौन पानी पीने के बाद यह पड़ती है कि आज काहे की दाल बनेगी, कौन सा शाक या तरकारी बनेगी, यह विचार कर मनमानी दाल तरकारी मँगा उसी के बीनने काटने में दुपहर तक लगे रहते हैं, यही घास छीलना है, पुनः कूँड़े में पानी और तौलिया ले घोड़े को धोना पोंछना दो-दो चार-चार करसे पानी साबुन झामा आदि ले घंटों कहीं पैर, कहीं मुख, कहीं साबुन लगाना आदि घोड़े को धोना पोछना है। पुनः दोपहर के भोजनरूप घास डा[illegible] पान पत्तों का लगाना, तमाखू मलना आदि चने ले दाने का दरन है। पुनः कुछ काल आराम कर दूसरे समय भंग बूटी आदि का छानना घोड़े को मसाला आदि दे पुनः वही धोना माँजना। सायंकाल से नौ बजे रात तक कहीं चौपड़, कहीं ताश, कहीं शतरञ्ज कहीं तबला कहीं भाँड़ों का तमाशा, कहीं वेश्याओं के नृत्य ये घोड़े का टहलाना रूप कर्म है। बस जिनके प्रातःकाल से सायंकाल तक ये कर्म हों, और धर्म कर्म परमेश्वर का भजन संध्या गायत्री कुछ न हो वही पूरे सईस हैं और जो इस वाक्य के अनुसार कि 'ब्राह्म मुहूर्ते बोध्येत' ४ बजे प्रातः के चाहे जितना

जाड़ा हो, पाला पड़ता हो आदि कष्टों के ख्याल को भुला उठ कर शौचादि क्रिया से निवृत्त हो अपने नियमों का चाबुक ले इस शरीर रूप घोड़े पर सवार हो शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा समाधान आदि करता हुआ उसे अपने मौतरूपी स्टेशन से जो वायुरूप गाड़ी जिसमें जीव सवार होकर मोक्षरूप नियत स्थान पर जायगा, ख्याल है कि आयु इतने दिन की है फलाँ समय तक इतना मार्ग तै करना अर्थात् इतने-इतने कर्म कर शरीररूप घोड़े के मरने टुरने सईसों की भाँति डोरा ले ले कभी अपनी बाहें नहीं नापता कि आज कितने दुबले हो गये और अब आज कितने दुबले हो गये या शीशा ले ले सूरत नहीं देखता किन्तु सांसारिक कठिनाइयों की कुछ भी परवा न करता हुआ इस शरीररूप घोड़े पर चढ़, इसके नियम रूप चाबुक लगाता हुआ, अत्यन्त तेजी से घोड़े को दौड़ाता हुआ, अपने कर्म धर्मरूप खुश्की के मार्ग को तै करके घोड़े को छोड़ रेल पर सवार हो नित्य स्थान पर पहुँचते हैं वही पूरे रईस हैं। जैसा कि कठोपनिषद् में भी कहा है कि—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेवतु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥

अर्थात्—इस शरीररूपी रथ पर आत्मारूपी रथी सवार है और मनरूपी पगही को लिये हुये बुद्धिरूप कोचवान इसे हाँक रहा है। तथा—

इन्द्रियाणि हयान्याहुर्विषयाꣳस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रिय मनो युक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥

अर्थ—मन को वश में करनेवाले विद्वान् इन्द्रियों को घोड़े और विषयों को मार्ग तथा इसके फल को आत्मा, मन और

शरीरयुक्त होकर भोगता है, इसीलिये तो कहा है कि —'यस्तु विज्ञानवान् भवति' यानी जो इन घोड़ों को ठीक-ठीक मार्ग पर चलाता है वह तो नियत स्थान पर पहुँच जाता है नहीं तो फिर घोड़े अपनी मनमानी कर रथ को मये सवार चकनाचूर कर देते हैं। इन रईसों सईसों का मुक़ाबला करते हुये ही मुझे यह कविवाक्य स्मरण आता है—

अग्निदाहे न मे दुःखं न दुःखं लोहताड़ने।
इदमेव महा दुःखं गुञ्जया सह तोलने॥

१८६—मोह

एक बार एक मदारी, जो बन्दरों को नचाया करते हैं, एक बन्दर को पकड़ने गया और जिस बाग़ में बहुत से बन्दर रहा करते थे वहाँ उसने एक गड्ढा खोदकर उसमें एक तंग मुँह का घड़ा गाड़ दिया जिसका मुँह ऊपर की ओर खुला था पुनः एक रोटी ले बन्दरों को खिलाते हुये तोड़-तोड़ कर उसमें डाल दी और आप वहाँ से हटकर आड़ में बैठ गया। बन्दरों ने यह देखा और एक बन्दर उतरकर घड़े में हाथ डाल रोटी के टुकड़ों को मूठा में भर हाथ निकालने लगा, पर घड़े का मुँह कम चौड़ा होने तथा मूठा बन्द होने के कारण बाहर न निकल सका। तब तो बन्दर बहुत ही खीझा और बड़े ज़ोर-ज़ोर से हाथ खींचता रहा तथा अपने ही हाथ को खींच-खींच काटता रहा पर हाथ तो तब निकले कि जब मूढ़ मूठे की रोटी छोड़ दे और हाथ पतला हो जाय, पर ऐसा न कर वह उसी रोटी के लालच से मदारी के हाथ पकड़ा जाकर जन्म भर नचाया गया।

इसका दार्ष्टान्त इस प्रकार है कि मनुष्यरूपी बन्दर संसार-

रूपी घड़े में पञ्च विषय वा पुत्र पौत्र रुपया पैसा रूप रोटी को पकड़ मूढ़ अपने सारे कर्म धर्मों को भुला देता है और ब्रह्मरूप मदारी के हाथ पकड़ा जाकर, बन्दर को तो मदारी एक ही जन्म नचाता है पर मनुष्यरूप बन्दरों को तो ब्रह्मरूप मदारी जन्म जन्मातर तक अनेक योनियों में नचाया करता है । किसी कवि ने सच कहा है—

यस्मिन् वस्तुनि ममता मम तापस्तत्र तत्रैव ।
यत्रैवाहमुदासे मुदा स्वभाव संतुष्टः ॥

जिस-जिस पदार्थ में मनुष्यों की ममता होती है वही-वही दुःखहै पर जिस जिससे उदासीनता है वही तोस्वाभाविक संतुष्टता है । अभिप्राय यह निकला कि ममता ही दुःखों की मूल है ।

१८७–शामिल बाजा

एक राजा को गाना सुनने का बहुत ही शौक़ था और उस के यहाँ बड़े-बड़े उत्तम गानेवाले रहा करते थे। उनमें से एक सामान्य चालाक पुरुष ने राजसभा में प्रविष्ट होने की इच्छा से राजा के यहाँ दरख्वास्त की कि हजूर हमारा शामिल बाजा भी सुना जाय। अतः वह एक समय पर बुलाकर गान-मण्डली में शामिल किये गये, परन्तु वह एक चारपाई का पावा लेकर पहुंचे। जब सब गवैये बाजा मिलाने लगे तो इनसे भी कहा गया कि आप भी अपना बाजा मिलाइये। तब तो इन्होंने कहा कि हमारा बाजा विना मिलाये ही बजा करता है। जब औरों ने अपने बाजों से गति बजाना शुरू की तो ये भी चारपाई के पावे में हाथ रगड़ता जाता और एं, वें, अहा हा आदि शब्द कहकर तानें तोड़ता जाता था। राजा ने उसका तान तोड़ना देख कहा—"आपका बाजा बहुत अच्छा बजता है।" तब तो

गानेवालोंने कहा कि-"हुजूर इनका बाजा अलग सुना जाय।" राजा साहब ने उसी समय इस शामिल बाजेवाले से कहा कि- "तुम अपना बाजा हमें अलग सुनाओ।" इसने कहा कि— "हुजूर, इसका तो नाम ही शामिल बाजा है, यह कभी अलग बज नहीं सकता।" तब गवैयों ने कहा कि—"हुजूर, यह खाट का पावा है, यह न अलग बजे न शामिल में, और बाजे बजा करते हैं और यह एँ वें किया करता है इसलिए हुजूर को मालूम पड़ता है कि यह अच्छा बजता है।" राजा ने यह जान उसे कान पकड़कर निकलवा दिया—

उघरे अन्त न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावण राहू॥

१८८—ईर्षा द्वेष

दो बनिये पास ही पास रहा करते थे और उन दोनों की पास ही आमने सामने दूकानें थीं। पर उनमें से एक का सौदा बहुत बिका करता था और दूसरे का कम। तब इस कम सौदा बिकनेवाले वैश्य ने यह युक्ति खेली कि अपने संपूर्ण बाँट काष्ठ के और सर्वसाधारण में जिस वज़न के बाँट प्रचलित थे उनसे वज़न में भी कुछ कम बनवाये और गाँव के गँवारों को बरगलाने लगा कि देखो वह तो ज़रा ज़रा से बाटों से सौदा देता है पर हम तुम्हें इतने बड़े पव्वा वा इतने बड़े अधसेरा वा इतने बड़े सेर से सौदा देंगे। इस प्रकार सभी ग्राहक इसके यहाँ सौदा लेने लगे। तब तो उस बनिये ने इसकी पुलिस में शिकायत की। जब पुलिस ने आकर उस काष्ठ के बाँटवाले बनिये के बाँट पकड़े तो यह बोला कि—"हुजूर, मेरे बाँटों की गंगा साक्षी है, अगर मेरे बाँट गंगा में डालने से डूब जाँय

तो मेरे बाँट बेशक कम समझे जायँ और अगर ये गंगा में डालने से न डूबें तो कम न समझे जायँ।" आख़िर पुलिस ने उस बनियेका चालान कर क़ानून के अनुसार उसे दंड दिलाया।

१८६—पण्डितों में परस्पर एक दूसरे की निन्दा करने का परिणाम

एक बार एक दो संस्कृतज्ञ पण्डित बड़े सुयोग्य विद्वान् एक स्थान पर पहुंचे और एक सेठजी के यहाँ उतरे। सेठजी ने दोनों को विद्वान् वेद-शास्त्र-सम्पन्न जानकर बड़े आदर सत्कार से लिया और उन दोनों विद्वानों को कुछ जल पान करा स्नान करने को कहारों से पानी भरवा दिया चौकियें डलवा दीं और पण्डितों से हाथ जोड़कर कहा कि—"महाराज, आप दोनों महाशय अब स्नान कीजिये।" सेठजी की प्रार्थना सुन एक ने दूसरे से कहा कि चलिये आप स्नान कीजिये और उसने उससे कहा कि चलिये आप स्नान कीजिये। पुनः उनमें से एक स्नान करने चौकी पर चला गया। तब सेठजी ने इस पण्डित से जो बैठा था उस पण्डित की निस्बत कि जो स्नान करने चला गया था पूछा—"महाराज, यह पण्डित जो स्नान करने गये हैं कैसे विद्वान हैं?" पण्डित ने कहा—"उसे क्या आता है, वह तो निरक्षर भट्टाचार्य बैल है।" सेठ चुप रह गया। पुनः जब वह स्नान करके आ गये और ये स्नान करने गये तो सेठजी ने इन पण्डित से उनकी निस्बत पूछा—"महाराज, यह पण्डित जो स्नान करने गये हैं कैसे विद्वान हैं?" इसने कहा—"वह तो बिलकुल मूर्ख गधा है।" आख़िर जब दोनों पण्डित स्नान करके आ गये और अपनी सन्ध्या अग्निहोत्र पूजा से निवृत्त हुए तो

सेठजी ने एक गट्ठा घास खूब ही हरी और एक डलिया भूसा अपने आदमियों के हाथ पंडित को भेजा और आदमियों से कह दिया कि पण्डितों को जाकर यह देना और कह देना कि सेठजी ने यह आप दोनों साहबों के खाने के लिये भेजा है। आदमियों ने वैसा ही किया कि भूसा और घास ले जाकर पण्डितों से कहा—"महाराज, यह सेठजी ने आप दोनों साहबों के खाने के लिए भेजा है।" दोनों पण्डित घास और भूसा देख तथा आदमियों की बातें सुन बड़े क्रोधित हुये और कहा—"ज़रा सेठजी को इधर भेज देना।" आदमियों ने सेठजी से जाकर कह दिया कि—"पण्डितों ने आपको बुलाया है।" सेठजी तुरन्त ही पण्डितों के पास पहुँचे। तब तो पण्डितों ने कहा कि—"सेठजी, आपने यह घास और भूसा हम लोगों के लिये क्यों भेजा है?" सेठजी ने कहा कि—"महाराज, आप उन्हें बैल कहते हैं और वह आपको गदहा कहते हैं, सो गदहे का चारा घास और बैल का चारा भूसा हमने भेज दिया।" पुनः दोनो पण्डित वहाँ से बिना खाये पिये कोरे कुलाँच कर गये।

१६०—काठ का साधू

एक बहुत ही मालदार वैश्य किसी गाँव में रहता था। उसे एक बार ऐसा समय आया कि दो तीन महीने को विदेश जाने की आवश्यकता हुई, अतः सेठजी ने एक बढ़ई को कुछ रुपया देकर एक काठ का साधू बनवा कर अपने दर्वाज़े अपने धन माल के रक्षार्थ बिठला दिया। वह साधू हाथ में पत्रा लिये था और यदि कोई इसे छू ले या वह किसी के छू जाय तो वह उसी के चिपट जाता था और पुनः जब तक उसका कान पकड़ कर

रटने से विद्या नहीं आती, जब गुरू कुञ्जी बतला देते हैं तो ताला की भाँति कपाट खुल जाते हैं। सुन, संस्कृत बोलने की युक्ति यह है कि जितने शब्द हैं उनके ऊपर विन्दु लगा देने से संस्कृत बन जाती है, यथा पुस्तकं, कलमं स्याहिं लोटं, धारिं, शाकं, दालं, भातं।' यह सुन बच्चा बड़ा ही प्रसन्न हुआ और दूसरे दिन वह बच्चा यह श्लोक बना कर ले गया कि-

बापं आजां नंमं स्कृत्यं पंरं पाजं तंथैंबं चं।
मयां शिंवंदंत्तं दांसेंनं गींतां टींकां कंरोंम्यंहं॥

और ये संस्कृत का अभिमानी बन कर चला आया पर याद रहे कि विना सत् विद्या के इस कवि वाक्य के अनुसार कि-

न विद्या विना सौख्यं नराणां जायते ध्रुवम्।
अतो धर्मार्थ मोक्षेभ्यो विद्याभ्यासं समाचरेत्॥

अन्यथा इस दुरदंगेपन से कभी सुख नहीं मिल सकता॥

१६३-दिल का चोर

एक बार एक रईस के लड़के ने पाखाना फिरते समय एक सुर्ख पका हुआ बेर अपने आगे पड़ा हुआ देख कर उठा कर खा लिया। बाद पाखाना फिरने के कुल्ल दन्दधावन कर अपने दर्वाज़े पर जहाँ एक वेश्या का नाच हो रहा था, उसमें आ बैठा। जब रण्डी नाचते-नाचते इसके सामने आई तो उसने ये तान शुरू की कि—

मैंतो जानि गइउँरे, मैंतो जानि गइउँरे।

यह सुन कर उस रईस के लड़के को सन्देह हुआ कि यह मेरे पाखाना फिरते हुए बेर खाने को जान गई। इस ख्याल में

आकर उसने यकायक अपनी अँगूठी उतार रण्डी को दे दी। पर रण्डी उसके बेर खाने आदि को नहीं जानती थी, किन्तु उसने साधारण स्वभाव ही से यह गाया था। जब रईस के लड़के ने अँगूठी उतार कर दी तो रण्डी ने समझा कि लालाजी को इस तरह की तानें अच्छी लगती हैं, अतः दुबारा रण्डी ने यह तान शुरू की कि—

मैं तो कह दूँगी, मैं तो कह दूँगी।

अब तो रईस के लड़के को ठीक निश्चय हो गया कि यह अवश्य जानती है, अतः अब की बार उस लड़के ने वस्त्र उतार कर दे दिये और रण्डी ने यह समझा कि लालाजी इस प्रकार की तानों से बड़े प्रसन्न होते हैं। अतः तीसरी बार रण्डी ने यह शुरू किया—

समय आ गया रे, अब मैं कहती हूँ।

तब तो इस रईस के लड़के ने देखा कि ये बदज़ात मानती ही नहीं, अतः तमककर इसने कहा—"क्या कहती है? कह दे। हगे बेर ही तो खाया है और क्या किया?"

१९४—सत् पुरुष

सत् पुरुष—वह मनुष्य है कि जो दूसरों का उपकार करे और कभी ज़बान पर न लावे।

गुणवान्—वह है जो सदा विद्या गुण के खोज और विचार में रहता है।

धैर्यवान्—वह है जो सुख, दुःख, धन, क्षीणता और वृद्धि में सामान्य रहता है।

रूपवान्—वह मनुष्य है जो विद्या और नम्रता, लज्जा, सत्य, शीलता और धर्म के सद्गुणों से अलंकृत हो।

बुद्धिमान्-वह है जो समय का रंग देखकर काम करता है।

विचारवान्—वह है जो अपने अवगुणों और दूसरे के गुणों को याद रखता है और कोई वचन बे समझे मुख से नहीं निकालता।

ज्ञानी—वह है जिसके मन में संसार के सुख दुःख से विकार उत्पन्न नहीं होता, तथा सत् असत का ज्ञाता हो।

सन्तुष्ट—वह है जो किसी आशा से बद्ध नहीं।

बलवान्—वह है जो इन्द्रियों के प्रबल वेग को रोके।

सबका प्रिय—वह है जो केवल अपना लाभ और स्वार्थ नहीं विचारता।

भाग्यवान्-वह है जो दूसरों की दशा देखकर अपनी सुधारे।

अभागी-वह है जिसकी दशा देखकर ज्ञानियों को भय हो।

१९५—जीवन और मौत

१—ईश्वर की उपासना जीवन	प्रकृति की उपासना मौत
२—विद्या जीवन	अविद्या मौत
३—ब्रह्मचर्य्य जीवन	दुराचार मौत
४—सतसङ्ग जीवन	कुसङ्ग मौत
५—पुरुषार्थ जीवन	आलस्य मौत
६—परोपकार जीवन	स्वार्थ मौत
७—अहिंसा जीवन	हिंसा मौत
८—सचाई जीवन	झूँठ मौत
९—सादगी जीवन	आरायश मौत

१०—पवित्रता जीवन	अपवित्रता मौत
११—स्वाध्याय जीवन	अनध्याय मौत
१२—अस्तेय जीवन	चोरी मौत
१३—त्याग जीवन	ख्वाहिस मौत
१४—यज्ञ जीवन	भ्रष्टता मौत
१५—वीरता जीवन	कायरता मौत
१६—धैर्य्य जीवन	अधैर्य्य मौत
१७—दृढ़ता जीवन	शिथिलता मौत
१८—साहस जीवन	असाहस मौत
१९—उत्साह जीवन	निरुत्साह मौत
२०—प्रिय वाक्य जीवन	कटु वाक्य मौत
२१—कीर्ति जीवन	अकीर्ति मौत
२२—एकता जीवन	फूट मौत
२३—शान्ति जीवन	अशान्ति मौत
२४—न्याय जीवन	पक्षपात मौत
२५—कर्त्तव्य जीवन	अकर्त्तव्य मौत

संसार में प्रत्येक मनुष्य मौत से डरता हुआ देखा जाता है अतः मौत से डरो और ज़िन्दगी की ख्वाहिश करो।

१९६—याद रखने योग्य १० बातें

१—ईश्वर के साथ नम्रता और उससे स्तुति प्रार्थना।

२—सर्व साधारण के साथ न्याय और शील।

३—इन्द्रियों के साथ दमन।

४—विरागियों के साथ सत्सङ्ग।

५—वृद्ध और बड़ों के साथ सेवा।

६—बराबरवालों से मित्रता छोटों के साथ प्रेम।

७—वैरियों के साथ सहनशीलता।
८—मित्रों के साथ सत्कार, शान्ति, शीलता और मोहब्बत।
९—मूर्खों के साथ चुप्पी।
१०—बुद्धिमानों के साथ मान और प्रतिष्ठा।

पाँच के—पाँच शत्रु।

१—विद्या का शत्रु	घमण्ड
२—दान की शत्रु	कृपणता
३—बुद्धि वा अक्ल की शत्रु	गुस्सा
४—सब्र का शत्रु	लालच
५—सच का शत्रु	झूँठ

१९७—खुदा का बेटा

एक पादरी से एक गाँववाले ने पूछा कि—"संसार को मोक्ष देनेवाले ईसामसीह कौन हैं और कहाँ रहते हैं?" पादरी साहब ने कहा कि—"वह परमेश्वर (खुदा) का बेटा है और परमेश्वर अभी जीते हैं वा मर गये?" पादरी साहब ने कहा—"भाई वह कभी मरता नहीं।" तो गाँव वाले ने कहा कि—"क्या आप बाप बेटे में फूट कराया चाहते हैं कि बाप के जीते जी हम से कहते हो कि मोक्ष बेटा देगा? हमारे यहां की तो चाल ऐसी नहीं है। इसलिये हम तो जब तक बाप जीता रहेगा उसी को मानेंगे और उसी से सब कुछ माँगेंगे। जब वह न रहेगा तब तो बेटा ही मालिक है।"

१९८—ब्रह्माजी का उपदेश

एक बार ब्रह्माजी के पास संसार के तीनों कोटि के पुरुष

यानी देवता, मनुष्य और राक्षस पहुँचे और हाथ जोड़ प्रथम देवताओं ने कहा कि—"महाराज, हमारे लिये कुछ उपदेश कीजिये।" ब्रह्माजी ने कहा कि "द्"। पुनः मनुष्यों ने कहा—"महाराज, हमें भी कुछ उपदेश कीजिये।" ब्रह्माजी ने उनसे भी यही कहा कि "द्"। पुनः राक्षसों ने भी कहा—"महाराज, हमें भी कुछ उपदेश कीजिये।" तो ब्रह्माजी ने उनके लिये भी वही 'द्' अक्षर कह दिया। पुनः ब्रह्मा ने तीनो को अपने पास बुलाकर पूछा कि—"तुम हमारे उपदेश को समझे ?" तो तीनो ने कहा कि—"हाँ महाराज, समझे।" देवताओं ने कहा कि—"महाराज हम 'द्' अक्षर से यह समझे कि तुम सब दमन करो।" मनुष्यों ने कहा कि "महाराज, हम 'द्' अक्षर से यह समझे कि तुम सब दान करो।" राक्षसों ने कहा कि "महाराज, हम 'द्' अक्षर से यह समझे कि तुम सब दया करो।' ब्रह्माजी ने यह सुन कर कहा कि "तुम ठीक समझे। अगर तुम सब इसका पालन करोगे तो संसार में कभी दुःखी न होगे।"

१९९—ज़रूरतों का बढ़ाना ही दुःख का कारण है

एक बार एक बादशाह से एक पुरुष जो बादशाह का सेवक और जिसका कि नाम दिलसुख था मिलने गया। उसने जब बादशाह से जाकर सलाम की तो बादशाह ने अपना मुख उस की ओर से फेर लिया। पुनः दिलसुख ने उस ओर जाकर सलाम की कि जिस ओर बादशाह ने मुख फेरा था। पर बादशाह ने पुनः दूसरी ओर मुख फेर लिया। तब तो दिलसुख बादशाह के पास से एकान्त अरण्य में जाकर तप करने लगा। दो तीन दिन के बाद बादशाह ने पूछा कि—"क्यों जी, आज दो तीन दिन से दिलसुख नहीं दिखलाई पड़ा।' तब सभा के

लोगों ने कहा कि—"महाराज, दिलसुख तो अमुक जङ्गल में जा तप करने लगा।" यह सुन राजा ने कहा कि—"यदि दिलसुख वन में चला गया तो उससे मिलने के लिये वहीं चलना चाहिये।" जब राजा साहब को दिलसुख ने आते देखा तो दिलसुख बैठे से लेट गया। तब तो राजा साहब ने पास जाकर दिलसुख से कहा कि—"दिलसुख! पैर फैलाये कब से?" बोला कि—"हाथ सिकोड़े जब से।"

२००—आँख में पट्टी

एक वेदान्ती साहब एक वन में जो एकान्त स्थान में बना था रहा करते थे और उन्होंने अपने एक चेले को यह समझा रक्खा था कि—बच्चा ससांर में कुछ नहीं है, यह तो सब भ्रम है।" एक दिन उस चेले ने जो पास ही एक बाज़ार लगती थी वहाँ कुछ लोगों की आवाज़ सुनी। शिष्य ने कहा कि—"महाराज, यह आवाज़ कहाँ से आती है?" तब गुरुजी ने कहा कि—"बेटा यहाँ बाज़ार लगती है।" तब तो शिष्य ने कहा कि—"गुरुजी, एक दिन हमें भी बाज़ार दिखला देते।" गुरू ने कहा—"बेटा वहाँ क्या है, क्या देखकर करोगे?" पर शिष्य ने जब दुबारा कहा और हठ किया तब लाचार हो गुरुजी चेले की आँखों में पट्टी बाँध कर बाज़ार ले गये और थोड़ी देर में घुमा कर वहीं स्थान पर लाकर बिठाल दिया और शिष्य से गुरुजी बोले कि—"क्यों बेटा, मैंने तुमसे नहीं कहा था कि बाज़ार में कुछ नही है।" पर शिष्य ने गुरुजी से एक दिन फिर कहा कि—"गुरुजी, एक दिन बाज़ार फिर दिखला दीजिये।" बहुत दिन प्रार्थना करने पर एक दिन गुरुजी शिष्य की आँखों में पट्टी बाँध फिर ले गये तो शिष्य को बाज़ार के अन्य लोगों का धक्का

लगने पर यह प्रतीत हुआ कि यहाँ तो कुछ मालूम देता है, गुरूजी तो योंही कहते हैं कि कहीं कुछ नहीं है । अतः शिष्य ने यह सोचकर कुछ-कुछ अपनी आँखों की पट्टी खोल दी और उसे ज्ञात हो गया कि गुरूजी का कथन झूठ है और उस दिन से वह गुरू के फन्दे से अलग हो गया ।

२०१—वाहजी खूब समझे

एक वैश्य जो कि बहुत ही धनाढ्य था, जब वह मरने लगा तो अपने बच्चे से जो कि हर एक प्रकार की बदमाशी में हरफ़न-मौला था कहा कि—"बेटा, तुम हमारी तीन बातों को ख़याल रखना, बाक़ी जो तुम्हारे जी में आवे सो करना । वह यह कि-

एक तो—साया साया में आना और साया साया में जाना ।

दूसरे—सदैव मीठा खाना ।

तीसरे—देकर कभी माँगना नहीं, तुम कभी दुःखी न होगे ।"

जब सेठजी मर गये तो बच्चा कई दिन तक घर से न निकला और अपने आदमियों को हुक्म दिया कि घर से लेकर और मेरी दूकान तक स्तम्भ गड़ा के उन पर टीन छवा दो । ऐसा ही हुआ और वह लड़का बस उसी टीन के नीचे नीचे दूकान को आने जाने लगा और उसी दिन से वह खीर हलुआ उड़ाने लगा और जिसको क़र्ज देता था उससे फिर मांगता न था। ऐसा करने से कुछ ही दिन में वह बच्चा बहुत कंगाल हो गया और दुखी होने लगा, तब तो उसने एक महात्माजी के पास जाकर कहा कि—"महाराज, मेरे पिता ने तीन शिक्षायें दी थीं कि—

१ साया साया आना, साया साया जाना । २ सदैव मीठा खाना । ३ देकर कभी माँगना नहीं ।

किन्तु जब से मैं इन्हें मानने लगा, मैं बड़ाही निर्धन हो गया और दुःखी होने लगा ।" तब तो उस महात्मा ने पूछा कि इन तीन शिक्षाओं से तुमने क्या समझा और क्या किया ? उसने जो कुछ किया था, महात्मा से निवेदन किया । महात्मा जी ने कहा—"खूब, तुमने यह क्या किया ? आपके पिता के कहने का यह मतलब नहीं था, बल्कि यह मतलब था कि—

(१) साया साया आना साया जाना—यानी प्रातः काल दूकान पर जाओ और शाम को आओ ।

(२) सदैव मीठा खाना-यानी गम खाना कभी लड़ना नहीं ।

(३) देकर कभी न माँगना—यानी हमेशा ज़ेवर गिरों रखना ताकि देकर न मांगना पड़े ।" बस जबसे वह बालक इस सत्य अभिप्राय पर चलने लगा कि बच्चा फिर वैसा ही धनाढ्य और सुखी हो गया ।

॥ ओ३म् शान्ति ॥

श्यामलाल वर्म्मा,

वैदिक आर्य्य पुस्तकालय,

बरेली ।

छप रहा है ! छप रहा है !! छप रहा है !!!

दृष्टान्त-सागर

तृतीय भाग



पाठक गण ! दृष्टान्त-सागर प्रथम भाग को जिस प्रकार अपनाकर आप लोगों ने मेरा उत्साह बढ़ाया, उसी प्रकार दृष्टान्त-सागर द्वितीय भाग को भी अपनाकर द्वितीय संस्करण का अवसर दिया। प्रथम भाग के पाँच संस्करण होने पर भी पाठकों की पाठ-पिपासा की तृप्ति नहीं हुई। यही इस ग्रंथ की उपयोगिता और सर्व-प्रियता का उज्ज्वल प्रमाण है। जिसका यह तृतीय भाग भी पाठकों के कर-कमलों में समर्पित है।

यदि पाठकों ने प्रथम व द्वितीय भाग की सदृश इस तृतीय भाग को भी अपनाया, तो शीघ्र ही चतुर्थ व पंचम भाग भी पाठकों के कर-कमलों में उपस्थित करूँगा।

विनीत—

श्यामलाल वर्मा अध्यक्ष,

वैदिक आर्य-पुस्तकालय बरेली।

सिर्फ टाइटिल—दयाल प्रिंटिंग वर्क्स, मिशन रोड, लखनऊ में छपा—१६२५